लोग हँसेंगे। वला से ! उसकी विरादरी मे क्या ऐसा होता नही ? ब्राह्मण, ठाकुर थोडे ही थी कि नाक कट जायगी। यह तो उन्ही ऊँची जातो मे होता है कि घर मे चाहे जो कुछ करो, वाहर परदा ढका रहे। वह तो ससार को दिखा-कर दूसरा घर कर सकती है। फिर वह रग्घू की दवैल वनकर क्यो रहे ?

भोला को मरे एक महीना गुजर चुका था। सध्या हो गई थी। पन्ना इसी चिन्ता मे पडी हुई थी कि सहसा उसे ख्याल आया, लडके घर मे नही हैं। यह वैलो के लौटने की वेला है, कही कोई लडका उसके नीचे न आ जाए। अव द्वार पर कौन है, जो उनकी देखभाल करेगा ? रग्घू को मेरे लडके फूटी आँखो नही भाते। कभी हँसकर नही वोलता। घर से वाहर निकली, तो देखा, रग्घू सामने झोपडे मे वैठा ऊख की गँडेरिया वना रहा है, लडके उसे घेरे खडे हैं और छोटी लडकी उसकी गर्दन मे हाथ डाले उसकी पीठ पर सवार होने की चेष्टा कर रही है। पन्ना को अपनी आँखो पर विश्वास न आया। आज तो यह नई वात है। शायद दुनिया को दिखाता है कि मैं अपने भाइयो को कितना चाहता हूँ और मन मे छुरी रखी हुई है। घात मिले तो जान ही ले ले ! काला साँप है, काला साँप ! कठोर स्वर मे वोली—तुम सबके सव वहाँ क्या करते हो ? घर मे आओ, साँझ की वेला है, गोरू आते होगे।

रग्घू ने विनीत नेत्रो से देखकर कहा—मैं तो हूँ ही काकी, डर किस वात का है ?

वडा लडका केदार वोला—काकी रग्घू दादा ने हमारे लिए दो गाडियाँ वना दी हैं। यह देख, एक पर हम और खुन्नू वैठेंगे, दूसरी पर लछमन और झुनियाँ। दादा दोनो गाड़ियाँ खीचेंगे।

यह कहकर वह एक कोने से दो छोटी-छोटी गाडियाँ निकाल लाया। चार-चार पहिए लगे थे। वैठने के लिए तख्ते और रोक के लिए दोनो तरफ वाजू थे।

पन्ना ने आश्चर्य से पूछा—ये गाडियाँ किसने वनाईं ?

केदार ने चिढकर कहा—रग्घू दादा ने वनाई है, और किसने। भगत के घर से वसूला और रुखानी माँग लाये और चटपट वना दी। खूव दौडती हैं काकी ! वैठ खुन्नू, मैं खीचूँ।

खुन्नू गाडी मे वैठ गया। केदार खीचने लगा। चर-चर का शोर हुआ, मानो गाडी भी इस खेल मे लडको के साथ शरीक है।

लछमन ने दूसरी गाडी मे वैठकर कहा—दादा, खीचो।

रग्घू ने झुनियाँ को भी गाडी मे विठा दिया और गाडी खीचता हुआ दौड़ा। तीनो लडके तालियाँ वजाने लगे। पन्ना चकित नेत्रो से यह दृश्य देख रही थी और सोच रही थी कि यह वही रग्घू है या कोई और।

थोड़ी देर के वाद दोनो गाडियाँ लौटी; लड़के घर मे जाकर इस यानयात्रा

के अनुभव बयान करने लगे। कितने खुश थे सब, मानो हवाई जहाज पर बैठ आये हो।

खुन्नू ने कहा—काकी, सब पेड दौड रहे थे।

लछमन—और बछियाँ कैसी भागी, सबकी सब दौडी!

केदार—काकी, रग्घू दादा दोनो गाडियाँ एक साथ खीच ले जाते हैं।

झुनिया सबमे छोटी थी। उसकी व्यजना-शक्ति उछल-कूद और नेत्रो तक परिमित थी—तालियाँ बजा-बजाकर नाच रही थी।

खुन्नू—अब हमारे घर गाय भी आयगी आ काकी! रग्घू दादा ने गिरधारी से कहा है कि हमे एक गाय ला दो। गिरधारी बोला, कल लाऊँगा।

केदार—तीन सेर दूध देती है काकी! खूब दूध पीएँगे।

इतने मे रग्घू भी अदर आ गया। पन्ना ने अवहेलना की दृष्टि से देखकर पूछा—क्यो रग्घू, तुमने गिरधारी से कोई गाय माँगी है?

रग्घू ने क्षमा-प्रार्थना के भाव से कहा—हाँ, माँगी तो है, कल लाएगा।

पन्ना—रुपये किसके घर से आयेंगे? यह भी सोचा है?

रग्घू—सब सोच लिया है काकी! मेरी यह मुहर नही है। इसके पच्चीस रुपये मिल रहे हैं, पाँच रुपये बछिया के मुजरा दे दूँगा! बस, गाय अपनी हो जायेगी।

पन्ना सन्नाटे मे आ गई। अब उसका अविश्वासी मन भी रग्घू के प्रेम और सज्जनता को अस्वीकार न कर सका। बोली—मुहर को क्यो बेचे देते हो? गाय की अभी कौन जल्दी है? हाथ मे पैसे हो जायँ, तो ले लेना। सूना-सूना गला अच्छा न लगेगा। इतने दिनो गाय नही रही, तो क्या लडके नही जिए?

रग्घू दार्शनिक भाव से बोला—बच्चो के खाने-पीने के यही दिन हैं काकी! इस उम्र मे न खाया, तो फिर क्या खायेंगे। मुहर पहनना मुझे अच्छा भी नही मालूम होता। लोग समझते होंगे कि बाप तो गया, इसे मुहर पहनने की सूझी है।

भोला महतो गाय की चिंता ही मे चल बसे। न रुपये आए और न गाय मिली। मजबूर थे। रग्घू ने यह समस्या कितनी सुगमता से हल कर दी। आज जीवन मे पहली बार पन्ना को रग्घू पर विश्वास आया, बोली—जब गहना ही बेचना है, तो अपनी मुहर क्यो बेचोगे? मेरी हँसुली ले लेना।

रग्घू—नही काकी! वह तुम्हारे गले मे बहुत अच्छी लगती है। मर्दो को क्या, मुहर पहने या न पहने।

पन्ना—चल, मैं बूढी हुई। अब हँसुली पहनकर क्या करना है। तू अभी लड़का है, तेरा गला अच्छा न लगेगा।

रग्घू मुस्कराकर बोला—तुम अभी से कैसे बूढ़ी हो गईं? गाँव मे है कौन

तुम्हारे बराबर ?

रग्घू की सरल आलोचना ने पन्ना को लज्जित कर दिया। उसके रूखे-मुरझाए मुख पर प्रसन्नता की लाली दौड़ गई।

2

पाच साल गुजर गए। रग्घू का-सा मेहनती, ईमानदार, बात का धनी दूसरा किसान गाँव मे न था। पन्ना की इच्छा के बिना कोई काम न करता। उसकी उम्र अब 23 साल की हो गई थी। पन्ना बार-बार कहती, भइया, बहू को विदा करा लाओ। कब तक नैहर मे पडी रहेगी? सब लोग मुझी को बदनाम करते है कि यही बहू को नही आने देती, मगर रग्घू टाल देता था। कहता कि अभी जल्दी क्या है। उसे अपनी स्त्री के रग-ढंग का कुछ परिचय दूसरो से मिल चुका था। ऐसी औरत को घर मे लाकर वह अपनी शाति मे बाधा नही डालना चाहता था।

आखिर एक दिन पन्ना ने जिद करके कहा—तो तुम न लाओगे?

'कह दिया कि अभी कोई जल्दी नही।'

'तुम्हारे लिए जल्दी न होगी, मेरे लिए तो जल्दी है। मैं आज आदमी भेजती हू।'

'पछताओगी काकी, उसका मिजाज अच्छा नही है।'

'तुम्हारी बला से। जब मैं उससे बोलूंगी ही नही, तो क्या हवा से लडेगी? रोटियाँ तो बना लेगी। मुझसे भीतर-बाहर का सारा काम नही होता, मैं आज बुलाए लेती हूँ।'

'बुलाना चाहती हो, बुला लो, मगर फिर यह न कहना कि यह मेहरिया को ठीक नही करता, उसका गुलाम हो गया।'

'न कहूँगी, जाकर दो साडियाँ और मिठाई ले आ!'

तीसरे दिन मुलिया मैके से आ गई। दरवाजे पर नगाड़े बजे, शहनाइयों की मधुर ध्वनि आकाश मे गूंजने लगी। मुँह-दिखावे की रस्म अदा हुई। वह इस मरुभूमि मे निर्मल जलधारा थी। गेहुँआ रंग था, बडी-बडी नोकीली पलकें, कपोलो पर हल्की सुर्खी, आँखो मे प्रबल आकर्षण। रग्घू उसे देखते ही मंत्रमुग्ध हो गया।

प्रातःकाल पानी का घडा लेकर चलती, तब उसका गेहुँआ रग प्रभात की सुनहरी किरणो से कुन्दन हो जाता, मानो उषा अपनी सारी सुगंध, सारा विकास और उन्माद लिये मुस्कराती चली जाती हो।

3

मुलिया मैके से ही जली-भुनी आयी थी। मेरा शौहर छाती फाड़कर काम करे, और पन्ना रानी बनी बैठी रहे, उसके लड़के रईसजादे बने घूमे। मुलिया से यह बरदाश्त न होगा। वह किसी की गुलामी न करेगी। अपने लड़के तो अपने होते ही नही, भाई किसके होते हैं? जब तक पर नही निकलते हैं, रग्घू को घेरे हुए हैं। ज्यों ही जरा सयाने हुए, पर झाड़कर निकल जायेंगे, बात भी न पूछेंगे।

एक दिन उसने रग्घू से कहा—तुम्हे इस तरह गुलामी करनी हो, तो करो, मुझसे न होगी।

रग्घू—तो फिर क्या करूं, तू ही बता? लड़के तो अभी घर का काम करने लायक भी नहीं हैं।

मुलिया—लड़के रावत के हैं, कुछ तुम्हारे नही हैं। यही पन्ना है, जो तुम्हें दाने-दाने को तरसाती थी। सब सुन चुकी हूँ। मैं लौंडी बनकर न रहूँगी। रुपये-पैसे का मुझे कुछ हिसाब नही मिलता। न जाने तुम क्या लाते हो और वह क्या करती है। तुम समझते हो, रुपये घर ही मे तो हैं, मगर देख लेना तुम्हे जो जो एक फूटी कौड़ी भी मिले।

रग्घू—रुपये-पैसे तेरे हाथ मे देने लगूं तो दुनिया क्या कहेगी, यह तो सोच।

मुलिया—दुनिया जो चाहे कहे। दुनिया के हाथो बिकी नही हूँ। देख लेना, भाड़ लीपकर हाथ काला ही रहेगा। फिर तुम अपने भाइयो के लिए मरो, मैं क्यो मरूँ?

रग्घू ने कुछ जवाब न दिया। उसे जिस बात का भय था, वह इतनी जल्द सिर आ पड़ी। अब अगर उसने बहुत तत्थो-थभो किया, तो साल-छ महीने और काम चलेगा। बस, आगे यह डोगा चलता नजर नही आता। बकरे की माँ कब तक खैर मनाएगी?

एक दिन पन्ना ने महुए का सुखावन डाला। बरसात शुरू हो गई थी। बखार मे अनाज गीला हो रहा था। मुलिया से बोली—बहू, जरा देखती रहना, मैं तालाब से नहा आऊँ।

मुखिया ने लापरवाही से कहा—मुझे नींद आ रही है, तुम बैठकर देखो। एक दिन न नहाओगी तो क्या होगा?

पन्ना ने साड़ी उठाकर रख दी, नहाने न गयी। मुलिया का वार खाली गया।

कई दिन के बाद एक शाम को पन्ना धान रोपकर लौटी, अँधेरा हो ग-

था। दिन-भर की भूखी थी। आशा थी, बहू ने रोटी बना रखी होगी; मगर देखा तो यहाँ चूल्हा ठंडा पडा हुआ था, और बच्चे मारे भूख के तडप रहे थे। मुलिया से आहिस्ते से पूछा—आज चूल्हा नही जला ?

केदार ने कहा—आज दोपहर को भी चूल्हा नही जला काकी ! भाभी ने कुछ बनाया ही नही।

पन्ना—तो तुम लोगो ने खाया क्या ?

केदार—कुछ नही, रात की रोटिया थी, खुन्नू और लछमन ने खायी। मैंने सत्तू खा लिया।

पन्ना—और बहू ?

केदार—वह पडी सो रही है, कुछ नही खाया।

पन्ना ने उसी वक्त चूल्हा जलाया और खाना बनाने बैठ गई। आटा गूंधती थी और रोती थी। क्या नसीब है ? दिन-भर खेत मे जली, घर आयी तो चूल्हे के सामने जलना पडा।

केदार का चौदहवा साल था। भाभी के रंग-ढग देखकर सारी स्थिति समझ रहा था। बोला—काकी, भाभी अब तुम्हारे साथ रहना नही चाहती।

पन्ना ने चौंककर पूछा—क्या कुछ कहती थी ?

केदार—कहती कुछ नही थी, मगर है उसके मन मे यही बात। फिर तुम क्यो नही उसे छोड देती ? जैसे चाहे रहे, हमारा भी भगवान् है।

पन्ना ने दाँतो से जीभ दबाकर कहा—चुप, मेरे सामने ऐसी बात भूलकर भी न कहना। रग्घू तुम्हारा भाई नही, तुम्हारा बाप है। मुलिया से कभी बोलोगे तो समझ लेना, जहर खा लूंगी।

4

दशहरे का त्यौहार आया। इस गाँव से कोस-भर पर एक पुरवे मे मेला लगता था। गाँव के सब लडके मेला देखने चले। पन्ना भी लडको के साथ चलने को तैयार हुई, मगर पैसे कहाँ से आएँ ? कुजी तो मुलिया के पास थी।

रग्घू ने आकर मुलिया से कहा—लड़के मेले जा रहे हैं, सबो को दो-दो पैसे दे दे।

मुलिया ने त्योरियाँ चढाकर कहा—पैसे घर मे नही हैं।

रग्घू—अभी तो तेलहन बिका था, क्या इतनी जल्दी रुपये उठ गए ?

मुलिया—हाँ, उठ गए।

रग्घू—कहाँ उठ गए ? जरा सुनूं, आज त्यौहार के दिन लडके मेला देखने न जायेंगे ?

मुलिया—अपनी काकी से कहो, पैसे निकालें, गाडकर क्या करेंगी ?

खूंटी पर कुजी लटक रही थी। रग्घू ने कुजी उतारी और चाहा कि सदूक खोले कि मुलिया ने उसका हाथ पकड लिया और बोली—कुंजी मुझे दे दो, नही तो ठीक न होगा। खाने-पहनने को भी चाहिए, कागज-किताब को भी चाहिए, उस पर मेला देखने को भी चाहिए। हमारी कमाई इसलिए नही है कि दूसरे खाएँ और मूंछो पर ताव दें।

पन्ना ने रग्घू से कहा—भइया, पैसे क्या होंगे। लडके मेला देखने न जायेंगे।

रग्घू ने झिडककर कहा—मेला देखने क्यो न जायेंगे ? सारा गांव जा रहा है। हमारे ही लडके न जायेंगे ?

यह कहकर रग्घू ने अपना हाथ छुडा लिया और पैसे निकालकर लडको को दे दिये; मगर कुंजी जब मुलिया को देने लगा, तब उसने उसे आँगन मे फेंक दिया और मुंह लपेटकर लेट गई। लडके मेला देखने न गये।

इसके बाद दो दिन गुजर गए। मुलिया ने कुछ नही खाया और पन्ना भी भूखी रही। रग्घू कभी इसे मनाता, कभी उसे, पर न यह उठती, न वह। आखिर रग्घू ने हैरान होकर मुलिया से पूछा—कुछ मुँह से तो कह, चाहती क्या है ?

मुलिया ने धरती को सम्बोधित करके कहा—मैं कुछ नही चाहती, मुझे मेरे घर पहुंचा दो।

रग्घू—अच्छा उठ, बना खा। पहुँचा दूंगा।

मुलिया ने रग्घू की ओर आँखें उठाईं। रग्घू उसकी सूरत देखकर डर गया। वह माधुर्य, वह मोहकता, वह लावण्य गायब हो गया था। दाँत निकल आए थे, आँखे फट गई थी और नथुने फडक रहे थे। अगारे की-सी लाल आँखो से देखकर बोली—अच्छा, तो काकी ने यह सलाह दी है, यह मंत्र पढाया है ? तो यहाँ ऐसी कच्ची नही हूँ। तुम दोनो की छाती पर मूंग दलूंगी। हो किस फेर मे ?

रग्घू—अच्छा, तो मूंग ही दल लेना। कुछ खा-पी लेगी, तभी तो मूंग दल सकेगी।

मुलिया—अब तो तभी मुंह मे पानी डालूंगी, जब घर अलग हो जायेगा। बहुत झेल चुकी, अब नही झेला जाता।

रग्घू सन्नाटे मे आ गया। एक दिन तक उसके मुह से आवाज ही न निकली। अलग होने की उसने स्वप्न मे भी कल्पना न की थी। उसने गाँव मे दो-चार परिवारो को अलग होते देखा था। वह खूब जानता था, रोटी के साथ लोगो के हृदय भी अलग हो जाते हैं। अपने हमेशा के लिए गैर हो जाते हैं। फिर उनमे वही नाता रह जाता है, जो गाँव के और आदमियो मे। रग्घू ने मन मे ठान लिया था कि इस विपत्ति को घर मे न आने दूगा, मगर होनहार

के सामने उसकी एक न चली । आह ! मेरे मुँह मे कालिख लगेगी, दुनिया यही कहेगी कि वाप के मर जाने पर दस साल भी एक मे निवाह न हो सका । फिर किससे अलग हो जाऊँ ? जिनको गोद मे खिलाया, जिनको वच्चो की तरह पाला, जिनके लिए तरह-तरह के कष्ट झेले, उन्ही से अलग हो जाऊँ। अपने प्यारो को घर से निकाल वाहर करूँ ? उसका गला फँस गया । काँपते हुए स्वर मे बोला—तू क्या चाहती है कि मैं अपने भाइयो से अलग हो जाऊँ ? भला साच तो, कही मुँह दिखाने लायक रहूँगा ?

मुलिया—तो मेरा इन लोगो के साथ निवाह होगा ।

रग्घू—तो तू अलग हो जा । मुझे अपने साथ क्यो घसीटती है ?

मुलिया—तो मुझे क्या तुम्हारे घर मे मिठाई मिलती है ? मेरे लिए क्या ससार मे जगह नही है ?

रग्घू—तेरी जैसी मर्जी, जहाँ चाहे रह । मैं अपने घर वालो से अलग नही हो सकता । जिस दिन इस घर मे दो चूल्हे जलेंगे, उस दिन मेरे कलेजे के दो टुकडे हो जायेंगे । मैं यह चोट नही सह सकता । तुझे जो तकलीफ हो, वह मैं दूर कर सकता हूँ । माल-असवाव की मालकिन तू है ही, अनाज-पानी तेरे ही हाथ है, अव रह क्या गया है ? अगर कुछ काम-धधा करना नही चाहती, मत कर । भगवान् ने मुझे समाई दी होती, तो मैं तुझे तिनका तक उठाने न देता । तेरे यह सुकुमार हाथ-पाँव मेहनत-मजूरी करने के लिए वनाए ही नही गए है, मगर क्या करूँ अपना कुछ वस ही नही है । फिर भी तेरा जी कोई काम करने को न चाहे, मत कर, मगर मुझसे अलग होने को न कह, तेरे पैरो पड़ता हूँ ।

मुलिया ने सिर मे अंचल खिसकाया और जरा समीप आकर वोली—मैं काम करने से नही डरती, न वैठे-वैठे खाना चाहती हूँ, मगर मुझसे किसी की धौंस नही सही जाती । तुम्हारी ही काकी घर का काम-काज करती है, तो अपने लिए करती हैं, अपने वाल-वच्चो के लिए करती हैं, मुझ पर कुछ एहसान नही करती, फिर मुझ पर धौस क्यो जमाती हैं ? उन्हे अपने वच्चे प्यारे होंगे, मुझे तो तुम्हारा आसरा है । मैं अपनी आँखो से यह नही देख सकती कि सारा घर तो चैन करे, जरा-जरा से वच्चे तो दूध पीएँ, और जिसके वल-वूते पर गृहस्थी वनी हुई है, वह मट्ठे को तरसे । कोई उसका पूछने वाला न हो । जरा अपना मुँह तो देखो, कैसी सूरत निकल आई है । औरो के तो चार वरस मे अपने पट्ठे तैयार हो जायेंगे । तुम तो दस साल मे खाट पर पड जाओगे । वैठ जाओ, खड़े क्यो हो ? क्या मारकर भागोगे ? मैं तुम्हे जवरदस्ती न वाँध लूँगी, या मालकिन का हुक्म नही है ? सच कहूँ, तुम वडे कठ-कलेजी हो । मैं जानती, ऐसे निर्मोहिए से पाला पड़ेगा, तो इस घर मे भूल से न आती । आती भी तो मन न लगाती,

मगर अब तो मन तुमसे लग गया। घर भी जाऊँ, तो मन यहाँ ही रहेगा। और तुम जो हो, मेरी बात नही पूछते।

मुलिया की ये रसीली बातें रग्घू पर कोई असर न डाल सकी। वह उसी रुखाई से बोला—मुलिया, मुझसे यह न होगा। अलग होने का ध्यान करते ही मेरा मन जाने कैसा हो जाता है। यह चोट मुझसे न सही जायेगी।

मुलिया ने परिहास करके कहा—तो चूडियाँ पहनकर अन्दर बैठो न! लाओ मैं मूँछें लगा लूँ। मैं तो समझती थी कि तुममे भी कुछ कल-बल है। अब देखती हूँ, तो निरे मिट्टी के लौदे हो।

पन्ना दालान मे खडी दोनो की बातचीत सुन रही थी। अब उससे न रहा गया। सामने आकर रग्घू से बोली—जब वह अलग होने पर तुली हुई है, फिर तुम क्यो उसे जबरदस्ती मिलाए रखना चाहते हो? तुम उसे लेकर रहो, हमारे भगवान् मालिक है। जब महतो मर गए थे और कही पत्तो की भी छाँह न थी, जब उस वक्त भगवान् ने निबाह दिया, तो अब क्या डर? अब तो भगवान् की दया से तीनो लडके सयाने हो गए हैं। अब कोई चिन्ता नही।

रग्घू ने आसू-भरी आँखो से पन्ना को देखकर कहा—काकी, तू भी पागल हो गई है क्या? जानती नही, दो रोटियाँ होते ही दो मन हो जाते है।

पन्ना—जब वह मानती ही नही, तब तुम क्या करोगे? भगवान् की यही मरजी होगी, तो कोई क्या करेगा? परालब्ध मे जितने दिन एक साथ रहना लिखा था, उतने दिन रहे। अब उसकी यही मरजी है तो यही सही। तुमने मेरे बाल-बच्चो के लिए जो कुछ किया, वह भूल नही सकती। तुमने इनके सिर हाथ न रखा होता, तो आज इनकी न जाने क्या गति होती, न जाने किसके द्वार पर ठोकरें खाते होते, न जाने कहाँ-कहाँ भीख माँगते फिरते। तुम्हारा जस मरते दम तक गाऊँगी। अगर मेरी खाल तुम्हारे जूते बनाने के काम आए, तो खुशी से दे दूँ। चाहे तुमसे अलग हो जाऊँ, पर जिस घडी पुकारोगे, कुत्ते की तरह दौडी आऊँगी। यह भूलकर भी न सोचना कि तुमसे अलग होकर मैं तुम्हारा बुरा चेतूँगी। जिस दिन तुम्हारा अनभल मेरे मन मे आएगा, उसी दिन विष खाकर मर जाऊँगी। भगवान् करे तुम दूधो नहाओ, पूतो फलो। मरते दम तक यही असीस मेरे रोएँ-रोएँ से निकलती रहेगी। और अगर लडके भी अपने बाप के हैं, तो मरते दम तक तुम्हारा पोस मानेंगे।

यह कहकर पन्ना रोती हुई वहाँ से चली गई। रग्घू वही मूर्ति की तरह बैठा रहा। आसमान की ओर टकटकी लगी थी और आंखो से आँसू बह रहे थे।

5

पन्ना की वातें सुनकर मुलिया समझ गई कि अपने पौ वारह हैं। चटपट उठी, घर मे झाडू लगाई, चूल्हा जलाया और कुएँ से पानी लाने चली। उसकी टेक पूरी हो गई थी।

गाँव मे स्त्रियो के दो दल होते हैं—एक वहुओ का, दूसरा सासो का। वहुएँ सलाह और सहानुभूति के लिए अपने दल मे जाती हैं, सासें अपने मे। दोनो की पचायतें अलग होती है। मुलिया को कुएँ पर दो-तीन वहुएँ मिल गईं। एक ने पूछा—आज तो तुम्हारी वुढिया वहुत रो-धो रही थी।

मुलिया ने विजय के गर्व से कहा—इतने दिनो से घर की मालकिन वनी हुई है, राज-पाट छोडते किसे अच्छा लगता है? वहन, मैं उनका वुरा नही चाहती, लेकिन एक आदमी की कमाई मे कहाँ तक वरकत होगी। मेरे भी तो यही खाने-पीने, पहनने-ओढने के दिन है। अभी उनके पीछे मरो, फिर वाल-वच्चे हो जायें उनके पीछे मरो। सारी जिन्दगी रोते ही कट जाय।

एक वहू—वुढिया यही चाहती है कि यह सव जन्म भर लौंडी वनी रहे। मोटा-झोटा खायें और पड़ी रहें।

दूसरी वहु—किस भरोसे पर कोई मरे? अपने लडके तो वात नही पूछते पराए लडको का क्या भरोसा? कल इनके हाथ-पैर हो जायेंगे, फिर कौन पूछता है! अपनी-अपनी मेहरियो का मुँह देखेंगे। पहले ही से फटकार देना अच्छा है, फिर तो कोई कलक न होगा।

मुलिया पानी लेकर गई, खाना वनाया और रग्घू से वोली—जाओ, नहा आओ, रोटी तैयार है।

रग्घू ने मानो सुना ही नही। सिर पर हाथ रखकर द्वार की तरफ ताकता रहा।

मुलिया—क्या कहती हूँ, कुछ सुनाई देता है? रोटी तैयार है, जाओ नहा आओ।

रग्घू—सुन तो रहा हूँ, क्या वहरा हूँ? रोटी तैयार है तो जाकर खा ले। मुझे भूख नही है।

मुलिया ने फिर नही कहा। जाकर चूल्हा वुझा दिया, रोटियाँ उठाकर छीके पर रख दी और मुँह ढाँककर लेट रही।

जरा देर मे पन्ना आकर वोली—खाना तो तैयार है, नहा-धोकर खा लो! वहू भी भूखी होगी।

रग्घू ने झुझलाकर कहा—काकी, तू घर मे रहने देगी कि मुँह मे कालिख लगाकर कही निकल जाऊँ? खाना तो खाना ही है, आज न खाऊँगा. कल

खाऊँगा लेकिन अभी मुझसे न खाया जायेगा। केदार क्या अभी मदरसे से नही आया ?

पन्ना—अभी तो नही आया, आता ही होगा।

पन्ना समझ गई कि जव तक वह खाना वनाकर लडको को न खिलाएगी और खुद न खायेगी, रग्घू न खायेगा। इतना ही नही, उसे रग्घू से लडाई करनी पडेगी, उसे जली-कटी सुनानी पडेगी। उसे यह दिखाना पडेगा कि मैं ही उससे अलग होना चाहती हूँ, नही तो वह इसी चिन्ता मे घुल-घुलकर प्राण दे देगा। यह सोचकर उसने अलग चूल्हा जलाया और खाना वनाने लगी। इतने मे केदार और खुन्नू मदरसे से आ गए। पन्ना ने कहा—आओ वेटा, खा लो, रोटी तैयार है।

केदार ने पूछा—भइया को भी वुला लूँ न ?

पन्ना—तुम आकर खा लो। उनकी रोटी वहू ने अलग वनाई है।

खुन्नू—जाकर भइया से पूछ न आऊँ ?

पन्ना—जव उनका जी चाहेगा, खाएँगे। तू वैठकर खा, तुझे इन वातो से क्या मतलव ? जिसका जी चाहेगा खायेगा, जिसका जी न चाहेगा, न खायेगा। जव वह और उसकी वीवी अलग रहने पर तुले हैं, तो कौन मनाए ?

केदार—तो क्यो अम्माजी, क्या हम अलग घर मे रहेगे ?

पन्ना—उनका जी चाहे, एक घर मे रहें, जी चाहे आँगन मे दीवार डाल ले।

खुन्नू ने दरवाजे पर आकर झाँका, सामने फूस की झोपडी थी, वही खाट पर पडा रग्घू नारियल पी रहा था।

खुन्नू—भइया तो अभी नारियल लिए वैठे है।

पन्ना—जव जी चाहेगा, खायेगे।

केदार—भइया ने भाभी को डाँटा नही ?

मुलिया अपनी कोठरी मे पडी सुन रही थी। वाहर आकर वोली—भइया ने तो नही डाँटा, अब तुम आकर डाँटो।

केदार के चेहरे का रग उड गया। फिर जवान न खोली। तीनो लडको ने खाना खाया और वाहर निकले। लू चलने लगी थी। आम के वाग मे गाँव के लडके-लडकियाँ हवा से गिरे हुए आम चुन रहे थे। केदार ने कहा—आज हम भी आम चुनने चलें, खूव आम गिर रहे है।

खुन्नू—दादा जो वैठे हैं ?

लछमन—मैं न जाऊँगा, दादा घुडकेंगे।

केदार—वह तो अव अलग हो गए।

लछमन—तो अव हमको कोई मारेगा, तव भी दादा न वोलेंगे ?

केदार—वाह, तब क्यों न बोलेंगे ?

रग्घू ने तीनों लड़कों को दरवाजे पर खड़े देखा, पर कुछ बोला नहीं। पहले तो वह घर के बाहर निकलते ही उन्हें डांट बैठता था, पर आज वह मूर्ति के समान निश्चल बैठा रहा। अब लड़कों को कुछ साहस हुआ। कुछ दूर और आगे बढ़े। रग्घू अब भी न बोला, कैसे बोले ? वह सोच रहा था, काकी ने लड़कों को खिला-पिला दिया, मुझसे पूछा तक नहीं। क्या उसकी आँखों पर भी परदा पड़ गया है, अगर मैंने लड़कों को पुकारा और वह न आये तो ? मैं उनको मार-पीट तो न सकूँगा। लू में सब मारे-मारे फिरेंगे। कहीं बीमार न पड़ जायें। उसका दिल मसोकर रह जाता था, लेकिन मुँह से कुछ कह न सकता था। लड़कों ने देखा कि यह बिलकुल नहीं बोलते, तो निर्भय होकर चल पड़े।

सहसा मुलिया ने आकर कहा—अब तो उठोगे कि अब भी नहीं ? जिनके नाम पर फाका कर रहे हो, उन्होंने मजे से लड़कों को खिलाया और आप खाया, अब आराम से सो रही हैं। 'मोर पिया बात न पूछें, मोर सुहागिन नाव।' एक बार भी तो मुँह से न फूटा कि चलो भइया, खा लो।

रग्घू को इस समय मर्मान्तक पीड़ा हो रही थी। मुलिया के इन कठोर शब्दों ने घाव पर नमक छिड़क दिया। दुःखित नेत्रों से देखकर बोला—तेरी जो मर्जी थी, वही तो हुआ। अब जा, ढोल बजा !

मुलिया—नहीं, तुम्हारे लिए थाली परोसे बैठी है।

रग्घू—मुझे चिढ़ा मत। तेरे पीछे मैं भी बदनाम हो रहा हूँ। जब तू किसी की होकर नहीं रहना चाहती, तो दूसरे को क्या गरज है, जो मेरी खुशामद करे ? जाकर काकी से पूछ, लड़के आम चुनने गए है, उन्हें पकड़ लाऊँ ?

मुलिया अँगूठा दिखाकर बोली—यह जाता है। तुम्हें सौ बार गरज हो, जाकर पूछो।

इतने मे पन्ना भी भीतर से निकल आयी। रग्घू ने पूछा—लड़के बगीचे में चले गए काकी, लू चल रही है।

पन्ना—अब उनका कौन पुछत्तर है ? बगीचे मे जायें, पेड़ पर चढ़े, पानी में डूबें। मैं अकेली क्या करूँ ?

रग्घू—जाकर पकड़ लाऊँ !

पन्ना—जब तुम्हें अपने मन से नहीं जाना है, तो फिर मैं जाने को क्यों कहूँ ? तुम्हें रोकना होता, तो रोक न देते ? तुम्हारे सामने ही तो गए होंगे।

पन्ना की बात पूरी भी न हुई थी कि रग्घू ने नारियल कोने मे रख दिया और बाग की तरफ चला।

6

रग्घू लडको को लेकर बाग से लौटा, तो देखा मुलिया अभी तक झोपडे मे खडी है! बोला—तू जाकर खा क्यो नही लेती ? मुझे तो इस वेला भूख नही है।

मुलिया ऐंठकर बोली—हां, भूख क्यो लगेगी! भाइयो ने खाया, वह तुम्हारे पेट मे पहुँच ही गया होगा।

रग्घू ने दाँत पीसकर कहा—मुझे जला मत मुलिया, नही अच्छा न होगा। खाना कही भागा नही जाता। एक वेला न खाऊँगा, तो मर न जाऊँगा! क्या तू समझती है, घर मे आज कोई छोटी बात हो गई है? तूने घर मे चूल्हा नही जलाया, मेरे कलेजे मे आग लगाई है। मुझे घमड था कि और चाहे कुछ हो जाये, पर मेरे घर मे फूट का रोग न आने पायेगा, पर तूने मेरा घमंड चूर कर दिया। परालव्ध की बात है।

मुलिया तिनककर बोली—सारा मोह-छोह तुम्ही को है कि और किसी को है? मैं तो किसी को तुम्हारी तरह विसूरते नही देखती।

रग्घू ने ठडी साँस खीचकर कहा—मुलिया, घाव पर नोन न छिडक। तेरे ही कारन मेरी पीठ मे धूल लग रही है। मुझे इस गृहस्थी का मोह न होगा, तो किसे होगा? मैंने ही तो इसे मर-मर जोडा। जिनको गोद मे खेलाया, वही अव मेरे पट्टीदार होंगे। जिन बच्चो को मैं डाँटता था, उन्हें आज कडी आँखो से भी नही देख सकता। मैं उनके भले के लिए भी कोई वात करूँ, तो दुनिया यही कहेगी कि यह अपने भाइयो को लूटे लेता है। जा मुझे छोड दे, अभी मुझसे कुछ न खाया जायेगा।

मुलिया—मैं कसम रखा दूंगी, नही चुपके से चले चलो।

रग्घू—देख, अव भी कुछ नही विगड़ा है। अपना हठ छोड दे।

मुलिया—हमारा ही लहू पिए, जो खाने न उठे।

रग्घू ने कानो पर हाथ रखकर कहा—यह तूने क्या किया मुलिया? मैं तो उठ ही रहा था। चल खा लूँ। नहाने-धोने कौन जाये, लेकिन इतनी कहे देता हूँ कि चाहे चार की जगह छ रोटियाँ खा जाऊँ, चाहे तू मुझे घी के मटके ही मे डुवा दे; पर यह दाग मेरे दिल से न मिटेगा।

मुलिया—दाग-साग सव मिट जायेगा। पहले सवको ऐसा ही लगता है। देखते नही हो, उधर कैसी चैन की वंसी वज रही है। वह तो मना ही रही थी कि किसी तरह यह सव अलग हो जाये। अव वह पहले की-सी चाँदी तो नहीं है कि जो कुछ घर मे आवे, सव गायव! अव क्यो हमारे साथ रहने लगी?

रग्घू ने आहत स्वर मे कहा—इसी वात का तो मुझे गम है। काकी से

मुझे ऐसी आशा न थी।

रग्घू खाने बैठा, तो कौर विष के घूंट-सा लगता था। जान पडता था, रोटियाँ भूसी की हैं। दाल पानी-सी लगती थी। पानी कठ के नीचे न उतरता था, दूध की तरफ देखा तक नही। दो-चार ग्रास खाकर उठ आया, जैसे किसी प्रियजन के श्राद्ध का भोजन हो।

रात का भोजन भी उसने इसी तरह किया। भोजन क्या किया, कसम पूरी की। रात-दिन उसका चित्त उद्विग्न रहा। एक अज्ञात शका उसके मन पर छाई हुई थी, जैसे भोला महतो द्वार पर बैठा रो रहा हो। वह कई वार चौककर उठा। ऐसा जान पडा, भोला उसकी ओर तिरस्कार की आँखो से देख रहा है।

वह दोनो जून भोजन करता था, पर जैसे शत्रु के घर। भोला की शोक-मग्न मूर्ति आँखो से न उतरती थी। रात को उसे नीद न आती। वह गाँव में निकलता, तो इस तरह मुँह चुराए, सिर झुकाए मानो गो-हत्या की हो।

7

पाँच साल गुजर गए। रग्घू अव दो लडकों का वाप था। आँगन मे दीवार खिच गई थी, खेतो मे मेडे डाल दी गई थी और वैल-वछिए वाध लिये गए थे। केदार की उम्र अव सोलह साल की हो गई थी। उसने पढ़ना छोड दिया था और खेती का काम करता था। खुन्नू गाय चराता था। केवल लछमन अव तक मदरसे जाता था। पन्ना और मुलिया दोनो एक दूसरे की सूरत से जलती थी। मुलिया के दोनो लड़के वहुधा पन्ना ही के पास रहते। वही उन्हे उवटन मलती, वही काजल लगाती, वही गोद मे लिए फिरती, मगर मुलिया के मुह से अनुग्रह का एक शब्द भी न निकलता। न पन्ना ही इसकी इच्छुक थी। वह जो कुछ करती, निर्व्याज भाव से करती थी। उसके दो-दो लडके अव कमाऊ हो गए थे। लडकी खाना पका लेती थी। वह खुद ऊपर का काम-काज कर लेती! इसके विरुद्ध रग्घू अपने घर का अकेला था, वह भी दुर्वल, अशक्त और जवानी मे वूढा। अभी आयु तीस वर्ष से अधिक न थी, लेकिन वाल खिचडी हो गए थे, कमर भी झुक चली थी। खाँसी ने जीर्ण कर रखा था। देखकर दया आती थी। और खेती पसीने की वस्तु है। खेती की जैसी सेवा होनी चाहिए, वह उससे न हो पाती। फिर अच्छी फसल कहाँ से आती? कुछ ऋण भी हो गया था। वह चिंता और भी मारे डालती थी। चाहिए तो यह था कि अव उसे कुछ आराम मिलता। इतने दिनो के निरन्तर परिश्रम के वाद सिर का वोझ कुछ हल्का होता, लेकिन मुलिया की स्वार्थपरता और अदूरदर्शिता ने लहराती हुई खेती उजाड़ दी। अगर सव एक साथ रहते, तो वह अव तक पेन्शन पा जाता,

मजे मे द्वार पर वैठा हुआ नारियल पीता। भाई काम करता, वह सलाह देता। महतो वना फिरता। कही किसी के झगडे चुकाता, कही साधु-सतो की सेवा करता, वह अवसर हाथ से निकल गया। अव तो चिताभार दिन-दिन वढता जाता था।

आखिर उसे धीमी-धीमा ज्वर रहने लगा। हृदय-शूल, चिता कडा, परिश्रम और अभाव का यही पुरस्कार है। पहले कुछ परवाह न की। समझा आप ही आप अच्छा हो जायेगा, मगर कमजोरी वढने लगी, तो दवा की फिक्र हुई। जिसने जो वता दिया, खा लिया। डाक्टरो और वैद्यो के पास जाने की सामर्थ्य कहाँ ? और सामर्थ्य भी होती, तो रुपये खर्च कर देने के सिवा और नतीजा ही क्या था ? जीर्ण ज्वर की औषधि आराम और पुष्टिकारक भोजन है। न वह वसत-मालती का सेवन कर सकता था और न आराम से वैठकर वलवर्धक भोजन कर सकता था। कमजोरी वढती ही गई।

पन्ना को अवसर मिलता, तो वह आकर उसे तसल्ली देती, लेकिन उसके लडके अव रग्घू से वात भी न करते थे। दवा-दारू तो क्या करते, उसका और मजाक उडाते। भैया समझते थे कि हम लोगो से अलग होकर सोने की ईट रख लेंगे। भाभी भी समझती थी, सोने से लद जाऊँगी। अव देखें कौन पूछता है ? सिसक-सिसककर न मरें तो कह देना। वहुत 'हाय ! हाय !' भी अच्छी नही होती। आदमी उतना काम करे, जितना हो सके। यह नही कि रुपये के लिए जान ही दे दे।

पन्ना कहती—रग्घू वेचारे का कौन दोप है ?

केदार कहता—चल, मैं खूव समझता हूँ। भैया की जगह मैं होता, तो डडे से वात करता। मजाल थी कि औरत यो जिद करती। यह सव भैया की चाल थी। सव सधी-वधी वात थी।

आखिर एक दिन रग्घू का टिमटिमाता हुआ जीवन-दीपक वुझ गया। मौत ने सारी चिन्ताओ का अत कर दिया।

अत समय उसने केदार को वुलाया था, पर केदार को ऊख मे पानी देना था। डरा, कही दवा के लिए न भेज दे। वहाना वता दिया।

8

मुलिया का जीवन अंधकारमय हो गया। जिस भूमि पर उसने मनसूवो की दीवार खडी की थी, वह नीचे से खिसक गई थी। जिस खूँटे के वल पर वह उछल रही थी, वह उखड गया था। गाँववालो ने कहना शुरू किया, ईश्वर ने कैसा तत्काल दंड दिया। वेचारी मारे लाज के अपने दोनो वच्चो को लिए रोया करती। गाँव मे किसी को मुह दिखाने का साहस न होता। प्रत्येक प्राणी उससे

यह कहता हुआ मालूम होता था—'मारे घमण्ड के धरती पर पाव न रखती थी, आखिर सजा मिल गई कि नही !' अब इस घर मैं कैसे निर्वाह होगा ? वह किसके सहारे रहेगी ? किसके बल पर खेती होगी ? बेचारा रग्घू बीमार था, दुर्बल था, पर जब तक जिंदा रहा, अपना काम करता रहा। मारे कमजोरी के कभी-कभी सिर पकडकर बैठ जाता और जरा दम लेकर फिर हाथ चलाने लगता था। सारी खेती तहस-नहस हो रही थी, उसे कौन सँभालेगा ? अनाज की डाँठें खलिहान मे पडी थी, ऊख अलग सूख रही थी। वह अकेली क्या-क्या करेगी ? फिर सिंचाई अकेले आदमी का तो काम नही। तीन-तीन मजदूरो को कहाँ से लाये ! गाँव मे मजदूर थे ही कितने। आदमियो के लिए खीचा-तानी हो रही थी। क्या करे, क्या न करे।

इस तरह तेरह दिन बीत गए। क्रिया-कर्म से छुट्टी मिली। दूसरे ही दिन सवेरे मुलिया ने दोनो बालको को गोद मे उठाया और अनाज माँडने चली। खलिहान मे पहुँचकर उसने एक को तो पेड के नीचे घास के नर्म बिस्तर पर सुला दिया और दूसरे को वही बैठाकर अनाज माँडने लगी। बैलो को हाँकती थी और रोती थी। क्या इसीलिए भगवान् ने उसको जन्म दिया था ? देखते-देखते क्या से क्या हो गया ? इन्ही दिनो पिछले साल भी अनाज माँडा गया था। वह रग्घू के लिए लोटे मे शरबत और मटर की घुँघनी लेकर आई थी। आज कोई उसके आगे है न पीछे ! लेकिन किसी की लौडी तो नही हूँ ! उसे अलग होने का अब भी पछतावा न था।

एकाएक छोटे बच्चे का रोना सुनकर उसने उधर ताका, तो बडा लडका उसे चुमकारकर कह रहा था—बैया तुप रहो, तुप रहो। धीरे-धीरे उसके मुँह पर हाथ फेरता था और चुप करने के लिए विकल था। जब किसी तरह न चुप हुआ, तो वह खुद उसके पास लेट गया और उसे छाती से लगाकर प्यार करने लगा; मगर जब यह प्रयत्न भी सफल न हुआ, तो वह रोने लगा।

उसी समय पन्ना दौडी आयी और छोटे बालक को गोद मे उठाकर प्यार करती हुई बोली—लडको को मुझे क्यो न दे आयी बहू ? हाय ! हाय ! बेचारा धरती पर पड़ा लोट रहा है। जब मै मर जाऊँ तो जो चाहे करना अभी तो जीती हूँ। अलग हो जाने से बच्चे तो नही अलग हो गए।

मुलिया ने कहा—तुम्हे भी तो छुट्टी नही थी अम्माँ, क्या करती।

पन्ना—तो तुझे यहाँ आने की ऐसी क्या जल्दी थी ? डाँठ माँड न जाती। तीन-तीन लडके तो है, और किस दिन काम आयेगे ? केदार तो कल ही माँडने को कह रहा था, पर मैंने कहा, पहले ऊख मे पानी दे लो, फिर अनाज माँड़ना। मँडाई तो दस दिन बाद भी हो सकती है, ऊख की सिंचाई न हुई तो सूख जायेगी। कल से पानी चढा हुआ है, परसो तक खेत पुर जायेगा। तब मँडाई

हो जायेगी। तुझे विश्वास न आएगा, जब से भैया मरे हैं, केदार को वडी चिंता हो गई है। दिन मे सौ-सौ बार पूछता है, भाभी बहुत रोती तो नही है? देख, लडके भूखे तो नही हैं। कोई लडका रोता है, तो दौडा आता है, देख अम्माँ क्या हुआ, वच्चा क्यो रोता है? कल रोकर बोला—अम्माँ, मैं जानता कि भैया इतनी जल्दी चले जायेंगे, तो उनकी कुछ सेवा कर लेना। कहा जगाए-जगाए उठता था, अव देखती हो, पहर रात से उठकर काम मे लग जाता है। खुन्नू कल जरा-सा बोला, पहले हम अपनी ऊख मे पानी दे लेंगे, तव भैया की ऊख मे देगे। इस पर केदार ने ऐसा डाँटा कि खुन्नू के मुँह से फिर वात न निकली। बोला, कैसी तुम्हारी और कैसी हमारी ऊख? भैया ने जिला न लिया होता, तो आज या तो मर गए होते या कही भीख माँगते होते। आज तुम बडे ऊखवाले बने हो! यह उन्ही का पुन-परताप है कि आज भले आदमी बने बैठे हो। परसों रोटी खाने को बुलाने गई, तो मडैया मे बैठा रो रहा था। पूछा, क्यो रोता है? तो बोला, अम्माँ, भैया इसी 'अलग्योझे' के दुख से मर गए, नही अभी उनकी उमिर ही क्या थी! यह उस वक्त न सूझा, नही उनसे क्यो बिगाड करते?

यह कहकर पन्ना ने मुलिया की ओर सकेतपूर्ण दृष्टि से देखकर कहा—तुम्हें वह अलग न रहने देगा वहू, कहता है, भैया हमारे लिए मर गए तो हम भी उनके वाल-वच्चो के लिए मर जाएँगे।

मुलिया की आँखो से आँसू जारी थे। पन्ना की बातो मे आज सच्ची वेदना, सच्ची सान्त्वना, सच्ची सचिन्ता भरी हुई थी। मुलिया का मन कभी उसकी ओर इतना आकर्षित न हुआ था। जिनसे उसे व्यंग्य और प्रतिकार का भय था, वे इतने दयालु, इतने शुभेच्छु हो गए थे।

आज पहली वार उसे अपनी स्वार्थपरता पर लज्जा आई। पहली वार आत्मा ने अलग्योझे पर धिक्कारा।

9

इस घटना को हुए पाँच साल गुजर गए। पन्ना आज बूढी हो गई है। केदार घर का मालिक है। मुलिया घर की मालकिन है। खुन्नू और लछमन के विवाह हो चुके हैं, मगर केदार अभी तक क्वाँरा है। कहता है—मैं विवाह न करूँगा। कई जगहो से वातचीत हुई, कई सगाइयाँ आयी, पर उसने हामी न भरी—पन्ना ने कम्पे लगाए, जाल फैलाए, पर वह न फँसा। कहता—औरतो से कौन सुख? मेहरिया घर मे आई और आदमी का मिजाज वदला। फिर जो कुछ है, वह मेहरिया है। माँ-वाप, भाई-बन्धु सब पराए हैं। जब भैया जैसे आदमी का मिजाज वदल गया, तो फिर दूसरो की क्या गिनती? दो लड़के

भगवान् के दिये हैं और क्या चाहिए। बिना ब्याह किए दो बेटे मिल गए, इससे बढकर और क्या होगा! जिसे अपना समझो, वह अपना है, जिसे गैर समझो, वह गैर है।

एक दिन पन्ना ने कहा—तेरा वश कैसे चलेगा?

केदार—मेरा वश तो चल रहा है। दोनो लडको को अपना ही समझता हूँ।

पन्ना—समझने ही पर है, तो तू मुलिया को भी अपनी मेहरिया समझता होगा?

केदार ने झेंपते हुए कहा—तुम तो गाली देती हो अम्माँ!

पन्ना—गाली कैसी, तेरी भाभी ही तो है!

केदार—मेरे जैसे लट्ठ-गँवार को वह क्यो पूछने लगी!

पन्ना—तू करने को कह, तो मैं उससे पूछू?

केदार—नही मेरी अम्माँ, कही रोने-गाने न लगे।

पन्ना—तेरा मन हो, तो मैं बातो-बातो मे उसके मन की थाह लूँ!

केदार—मैं नही जानता, जो चाहे कर।

पन्ना केदार के मन की बात समझ गई। लडके का दिल मुलिया पर आया हुआ है; पर सकोच और भय के मारे कुछ नही कहता।

उसी दिन उसने मुलिया से कहा—क्या करूँ बहू, मन की लालसा मन मे ही रह जाती है। केदार का घर भी बस जाता, तो मैं निश्चिन्त हो जाती।

मुलिया—वह तो करने को ही नही कहते।

पन्ना—कहता है ऐसी अगर मिले जो घर मे मेल से रहे, तो कर लूँ।

मुलिया—ऐसी औरत कहाँ मिलेगी? कही ढूंढो।

पन्ना—मैंने तो ढूढ लिया है।

मुलिया—सच। किस गाँव की है?

पन्ना—अभी न बताऊँगी मुदा यह जानती हूँ की उसने केदार की सगाई हो जाय, तो घर बन जाय और केदार की जिन्दगी भी सुफल हो जाय न। जाने लडकी मानेगी कि नही।

मुलिया—मानेगी क्यो नही अम्माँ, ऐसा सुन्दर, कमाऊ सुशील वर और कहाँ मिला जाता है? उस जनम का कोई साधू-महात्मा है, नही तो लडाई-झगडे के डर से कौन बिन ब्यहा रहता है कहाँ रहती है, मैं जाकर उसे मना लाऊँ।

पन्ना—तू चाहे, तो उसे मना ले। तेरे ही ऊपर है।

मुलिया—मैं आज ही चली जाऊँगी अम्माँ! उसके पैरो पडकर मना लाऊँगी।

पन्ना—बता दू! वह तू ही है!

मुलिया लजाकर बोली—तुम तो अम्माँजी गाली देती हो।

पन्ना—गाली कैसी, देवर ही तो है!

मुलिया—मुझ जैसी बुढिया को वह क्यो पूछेंगे?

पन्ना—वह तुझी पर दाँत लगाए बैठा है। तेरे सिवा कोई और उसे भाती ही नही। डर के मारे कहता नही, पर उसके मन की वात मैं जानती हूँ।

वैधव्य के शोक से मुरझाया हुआ मुलिया का पीत वदन कमल की भाँति अरुण हो उठा। दस वर्षो मे जो कुछ खोया था, वह इसी एक क्षण मे मानो व्याज के साथ मिल गया। वही लावण्य, वही विकास, वही आकर्षण, वही लोच।

ईदगाह

रमजान के पूरे तीस रोजो के वाद ईद आयी है। कितना मनोहर, कितना सुहावना प्रभात है। वृक्षो पर कुछ अजीव हरियाली है, खेतो मे कुछ अजीब रौनक है, आसमान पर कुछ अजीव लालिमा है। आज का सूर्य देखो, कितना प्यारा, कितना शीतल है, मानो ससार को ईद की वधाई दे रहा है। गाँव मे कितनी हलचल है। ईदगाह जाने की तैयारियाँ हो रही हैं। किसी के कुरते मे वटन नही है, पडोस के घर से सुई-तागा लेने दौडा जा रहा है। किसी के जूते कडे हो गये हैं, उनमे तेल डालने के लिए तेली के घर भागा जाता है। जल्दी-जल्दी वैलो को सानी-पानी दे दें। ईदगाह से लौटते-लौटते दोपहर हो जायगा। तीन कोस का पैदल रास्ता, फिर सैकडो आदमियो से मिलना-भेंटना, दोपहर के पहले लौटना असम्भव है। लडके सवसे ज्यादा प्रसन्न हैं। किसी ने एक रोजा रखा है, वह भी दोपहर तक, किसी ने वह भी नही; लेकिन ईदगाह जाने की खुशी उनके हिस्से की चीज है। रोजे वड़े-बूढ़ो के लिए होंगे। इनके लिए तो ईद है। रोज ईद का नाम रटते थे, आज वह आ गई। अव जल्दी पडी है कि लोग ईदगाह क्यो नही चलते। इन्हे गृहस्थी की चिंताओ से क्या प्रयोजन ! सेवैयो के लिए दूध और शक्कर घर मे है या नही, इनकी वला से, ये तो सेवैयाँ खायेंगे। वह क्या जानें कि अव्वाजान क्यो वदहवास चौधरी कायमअली के घर दौड़े जा रहे है। उन्हे क्या खवर कि चौधरी आज आखें वदल लें, तो यह सारी ईद मुहर्रम हो जाए। उनकी अपनी जेवो में तो कुवेर का धन भरा हुआ है। वार-वार जेव से अपना खजाना निकालकर गिनते हैं और खुश होकर फिर रख लेते हैं। महमूद गिनता है, एक-दो, दस-वारह ! उसके पास वारह पैसे है। मोहसिन के पास एक दो तीन आठ नौ पद्रह पैसे है। इन्ही अनगिनती पैसो मे अनगिनती चीजें लायेंगे—खिलौने, मिठाइयाँ, विगुल, गेंद और जाने क्या-क्या।

और सवसे ज्यादा प्रसन्न है हामिद। वह चार-पाँच साल का गरीव सूरत, दुवला-पतला लड़का, जिसका वाप गत वर्ष हैजे की भेंट हो गया और माँ न जाने क्यो पीली होती-होती एक दिन मर गई। किसी को पता न चला क्या

बीमारी है। कहती तो कौन सुनने वाला था? दिल पर जो कुछ बीतती थी, वह दिल मे ही सहती थी और जब न सहा गया, तो ससार से विदा हो गई। अब हामिद अपनी बूढी दादी अमीना की गोद मे सोता है और उतना ही प्रसन्न है। उसके अब्बाजान रुपये कमाने गये हैं। बहुत-सी थैलियाँ लेकर आयेंगे। अम्मीजान अल्लाह मियाँ के घर से उसके लिए बडी अच्छी-अच्छी चीजें लाने गई है। आशा तो बडी चीज है, और फिर बच्चो की आशा! उनकी कल्पना तो राई का पर्वत बना लेती है। हामिद के पाँव मे जूते नही हैं, सिर पर एक पुरानी-धुरानी टोपी है, जिसका गोटा काला पड गया है, फिर भी वह प्रसन्न है। जब उनके अब्बाजान थैलियाँ और अम्मीजान नियामतें लेकर आएँगी, तो वह दिल के अरमान निकाल लेगा। तब देखेगा, मोहसिन, नूरे और सम्मी कहाँ से उतने पैसे निकालेंगे।

अभागिन अमीना अपनी कोठरी मे बैठी रो रही है। आज ईद का दिन और उसके घर मे दाना नही! आज आबिद होता, तो क्या इसी तरह ईद आती और चली जाती! इस अन्धकार और निराशा मे वह डूबी जा रही है। किसने बुलाया था इस निगोडी ईद को? इस घर मे उसका काम नही, लेकिन हामिद! उसे किसी के मरने-जीने से क्या मतलब? उसके अन्दर प्रकाश है, बाहर आशा। विपत्ति अपना सारा दलबल लेकर आये, हामिद की आनद भरी चितवन उसका विध्वस कर देगी।

हामिद भीतर जाकर दादी से कहता है—तुम डरना नही अम्माँ, मैं सबसे पहले आऊँगा। बिलकुल न डरना।

अमीना का दिल कचोट रहा है। गाँव के बच्चे अपने-अपने बाप के साथ जा रहे हैं। हामिद का बाप अमीना के सिवा और कौन है! उसे कैसे अकेले मेले जाने दे? उस भीड़-भाड मे बच्चा कहीं खो जाए तो क्या हो? नही, अमीना उसे यो न जाने देगी। नन्ही सी जान! तीन कोस चलेगा कैसे? पैर मे छाले पड जायेंगे। जूते भी तो नही हैं। वह थोडी-थोडी दूर पर उसे गोद ले लेगी, लेकिन यहाँ सेवैंयाँ कौन पकाएगा? पैसे होते तो लौटते-लौटते सब सामग्री जमा करके चटपट बना लेती। यहाँ तो घटो चीजें जमा करते लगेंगे। माँगे ही का तो भरोसा ठहरा। उस दिन फहीमन के कपड़े सिले थे। आठ आने पैसे मिले थे। उस अठन्नी को ईमान की तरह बचाती चली आती थी इसी ईद के लिए, लेकिन कल ग्वालन सिर पर सवार हो गई तो क्या करती! हामिद के लिए कुछ नही है, तो दो पैसे का दूध तो चाहिए ही। अब तो कुल दो आने पैसे बच रहे हैं। तीन पैसे हामिद की जेब मे, पाँच अमीना के बटुवे मे। यही तो बिसात है और ईद का त्योहार, अल्लाह ही बेडा पार लगाए। धोबन और नाइन और मेहतरानी और चुडिहारिन सभी तो आयेंगी। सभी को सेवैंयाँ चाहिएं और थोडा किसी को

आँखो नही लगता । किस-किससे मुँह चुराएगी ? और मुँह क्यो चुराए ? साल-भर का त्योहार है । जिन्दगी खैरियत से रहे, उनकी तकदीर भी तो उसी के साथ है । बच्चे खुदा सलामत रखे, ये दिन भी कट जायेंगे ।

गाँव से मेला चला । और बच्चो के साथ हामिद भी जा रहा था । कभी सबके सब दौडकर आगे निकल जाते । फिर किसी पेड के नीचे खडे होकर साथ वालो का इन्तजार करते । यह लोग क्यो इतना धीरे-धीरे चल रहे है ! हामिद के पैरो मे तो जैसे पर लग गए है । वह कभी थक सकता है ? शहर का दामन आ गया । सडक के दोनो ओर अमीरो के बगीचे हैं । पक्की चार-दीवारी बनी हुई है । पेडो मे आम और लीचियाँ लगी हुई हैं । कभी-कभी कोई लडका ककडी उठाकर आम पर निशाना लगाता है । माली अन्दर से गाली देता हुआ निकलता है । लडके वहाँ से एक फर्लांग पर है, खूब हँस रहे है । माली को कैसा उल्लू बनाया है ।

बडी-बडी इमारतें आने लगी । यह अदालत है, यह कालेज है, यह क्लब घर है ! इतने बडे कालेज मे कितने लडके पढते होगे ? सब लडके नही हैं जी ! बडे-बडे आदमी हैं, सच । उनकी बडी-बडी मूछे हैं । इतने बडे हो गए, अभी तक पढने जाते हैं । न जाने कब तक पढेंगे और क्या करेंगे इतना पढकर ! हामिद के मदरसे मे दो-तीन बडे-बडे लडके है, बिलकुल तीन कौडी के । रोज मार खाते हैं, काम से जी चुराने वाले । इस जगह भी उसी तरह के लोग होगे और क्या । क्लब-घर मे जादू होता है । सुना है, यहाँ मुर्दे की खोपडियाँ दौडती है । और बडे-बडे तमाशे होते है, पर किसी को अदर नही जाने देते । और यहाँ शाम को साहब लोग खेलते है । बडे-बडे आदमी खेलते हैं, मूछो दाढीवाले । और मेमे भी खेलती है, सच ! हमारी अम्माँ को वह दे दो, क्या नाम है, बैट, तो उसे पकड ही न सकें । घुमाते ही लुढक जायँ ।

महमूद ने कहा—हमारी अम्मीजान का तो हाथ काँपने लगे, अल्ला कसम ।

मोहसिन बोला—चलो, मनो आटा पीस डालती है । जरा-सा बैट पकड लेंगी, तो हाथ कापने लगेगे । सैकड़ो घडे पानी रोज निकालती हैं । पाच घडे तो तेरी भैंस पी जाती है । किसी मेम को एक घडा पानी भरना पडे, तो आँखो तक अँधेरी आ जाए ।

महमूद—लेकिन दौडती तो नही, उछल-कूद तो नही सकती ।

मोहसिन—हाँ, उछल-कूद नही सकती, लेकिन उस दिन मेरी गाय खुल गई थी और चौधरी के खेत मे जा पडी, अम्मा इतनी तेज दौडी कि मैं उन्हे न पा सका, सच ।

आगे चले । हलवाइयो की दुकानें शुरू हुई । आज खूब सजी हुई थी । इतनी मिठाइयाँ कौन खाता है ? देखो न, एक-एक दूकान पर मनो होगी । सुना

है, रात को जिन्नात आकर खरीद ले जाते हैं। अब्बा कहते थे कि आधी रात को एक आदमी हर दूकान पर जाता है और जितना माल बचा होता है वह तुलवा लेता है और सचमुच के रुपये देता है, बिलकुल ऐसे ही रुपये।

हामिद को यकीन न आया—ऐसे रुपये जिन्नात को कहाँ से मिल जायँगे ?

मोहसिन ने कहा—जिन्नात को रुपये की क्या कमी ? जिस खजाने में चाहें चले जायें। लोहे के दरवाजे तक उन्हें नहीं रोक सकते जनाब, आप हैं किस फेर में ! हीरे-जवाहरात तक उनके पास रहते हैं। जिससे खुश हो गए, उसे टोकरों जवाहरात दे दिए। अभी यहीं बैठे हैं, पाँच मिनट में कलकत्ता पहुँच जायँ।

हामिद ने फिर पूछा—जिन्नात बहुत बडे-बडे होते हैं ?

मोहसिन—एक-एक सिर आसमान के बराबर होता है जी ! जमीन पर खड़ा हो जाए, तो उसका सिर आसमान से जा लगे, मगर चाहे तो एक लोटे में घुस जाए।

हामिद—लोग उन्हें कैसे खुश करते होंगे ? कोई मुझे वह मंतर बता दे, तो एक जिन्न को खुश कर लूं।

मोहसिन—अब यह तो मैं नहीं जानता, लेकिन चौधरी साहब के काबू में बहुत से जिन्नात हैं। कोई चीज चोरी जाए, चौधरी साहब उसका पता लगा देंगे और चोर का नाम भी बता देंगे। जुमराती का बछवा उस दिन खो गया था। तीन दिन हैरान हुए, कहीं न मिला तब झख मारकर चौधरी के पास गये। चौधरी ने तुरन्त बता दिया, मवेशीखाने में है और वहीं मिला। जिन्नात आकर उन्हें सारे जहान की खबरें दे जाते हैं।

अब उसकी समझ में आ गया कि चौधरी के पास क्यों इतना धन है, और क्यों उनका इतना सम्मान है।

आगे चले। यह पुलिस लाइन है। यहीं सब कानिसटिबिल कवायद करते हैं। रैटन ! फाय फो ! रात को बेचारे घूम घूमकर पहरा देते हैं, नहीं चोरियाँ हो जाएँ। मोहसिन ने प्रतिवाद किया—यह कानिसटिबिल पहरा देते हैं ! तभी तुम बहुत जानते हो। अजी हजरत, यही चोरी कराते हैं। शहर के जितने चोर-डाकू हैं, सब इनसे मिले रहते हैं। रात को ये लोग चोरों से तो कहते हैं, चोरी करो और आप दूसरे मुहल्ले में जाकर 'जागते रहो ! जागते रहो ! पुकारते हैं। जभी इन लोगों के पास इतने रुपये आते हैं। मेरे मामूँ एक थाने में कानिसटिबिल हैं। बीस रुपया महीना पाते हैं, लेकिन पचास रुपये घर भेजते हैं। अल्ला कसम ! मैंने एक बार पूछा था कि मामूँ, आप इतने रुपये कहाँ से पाते हैं ? हँसकर कहने लगे—बेटा, अल्लाह देता है। फिर आप ही बोले—हम लोग चाहें तो एक दिन में लाखों मार लाएँ। हम तो इतना ही लेते हैं, जिसमें अपनी बदनामी न हो और नौकरी न चली जाए।

हामिद ने पूछा—यह लोग चोरी करवाते हैं, तो कोई इन्हें पकड़ता नही ?

मोहसिन उसकी नादानी पर दया दिखाकर बोला—अरे पागल, इन्हे कौन पकड़ेगा ? पकडनेवाले तो यह लोग खुद हैं, लेकिन अल्लाह इन्हें सजा भी खूब देता है। हराम का माल हराम मे जाता है। थोडे ही दिन हुए, मामूँ के घर मे आग लग गई। सारी लेई-पूजी जल गई। एक बरतन तक न बचा। कई दिन पेड के नीचे सोए, अल्ला कसम पेड के नीचे! फिर न जाने, कहाँ से एक सौ कर्ज लाए तो बरतन-भाड़े आए।

हामिद--एक सौ तो पचास से ज्यादा होते हैं ?

'कहाँ पचास कहाँ एक सौ। पचास एक थैली भर होता है। सौ तो दो थैलियो मे भी न आएँ।'

अब बस्ती घनी होने लगी। ईदगाह जाने वालो की टोलियाँ नजर आने लगी। एक से एक भडकीले वस्त्र पहने हुए। कोई इक्के-ताँगे पर सवार, कोई मोटर पर, सभी इत्र मे बसे, सभी के दिलो मे उमग। ग्रामीणो का यह छोटा-सा दल अपनी विपन्नता से बेखबर, सतोष और धैर्य मे मगन चला जा रहा था। बच्चो के लिए नगर की सभी चीजें अनोखी थी। जिस चीज की ओर ताकते, ताकते ही रह जाते और पीछे से बराबर हार्न की आवाज होने पर भी न चेतते। हामिद तो मोटर के नीचे जाते-जाते बचा।

सहसा ईदगाह नजर आया। ऊपर इमली के घने वृक्षो की छाया है। नीचे पक्का फर्श है, जिस पर जाजिम बिछा हुआ है। और रोजेदारो की पंक्तियाँ एक के पीछे एक न जाने कहाँ तक चली गई हैं, पक्की जगत के नीचे तक, जहाँ जाजिम भी नही है। नए आनेवाले पीछे की कतार मे खडे हो जाते हैं। आगे जगह नही है। यहा कोई धन और पद नही देखता। इस्लाम की निगाह मे सब बराबर हैं। इन ग्रामीणो ने भी वजू किया और पिछली पक्ति मे खडे हो गए। कितना सुन्दर सचालन है, कितनी सुन्दर व्यवस्था ! लाखो सिर एक साथ सिजदे मे झुक जाते हैं, फिर सबके सब एक साथ खडे हो जाते हैं, एक साथ झुकते हैं, और एक साथ घुटनो के बल बैठ जाते है। कई बार यही क्रिया होती है, जैसे बिजली की लाखो बत्तियाँ एक साथ प्रदीप्त हो और एक साथ बुझ जाएँ, और यही क्रम चलता रहे। कितना अपूर्व दृश्य था, जिसकी सामूहिक क्रियाएँ, विस्तार और अनतता हृदय की श्रद्धा, गर्व और आत्मानद से भर देती थी, मानो भ्रातृत्व का एक सूत्र इन समस्त आत्माओ को एक लड़ी मे पिरोए हुए है।

2

नमाज खत्म हो गई है। लोग आपस मे गले मिल रहे हैं। तब मिठाई और

खिलौने की दूकान पर धावा होता है। ग्रामीणो का यह दल इस विषय मे बालको से कम उत्साही नही है। यह देखो हिंडोला है। एक पैसा देकर चढ जाओ। कभी आसमान पर जाते हुए मालूम होगे, कभी जमीन पर गिरते हुए। यह चर्खी है, लकडी के हाथी, घोडे, ऊँट छडो से लटके हुए हैं। एक पैसा देकर बैठ जाओ और पच्चीस चक्करों का मजा लो। महमूद और मोहसिन और नूरे और सम्मी इन घोडो और ऊँटो पर बैठते हैं। हामिद दूर खडा है। तीन ही पैसे तो उसके पास हैं। अपने कोष का एक तिहाई जरा-सा चक्कर खाने के लिए नही दे सकता।

सब चर्खियो से उतरते है। अब खिलौने लेंगे। इधर दूकानो की कतार लगी हुई है। तरह-तरह के खिलौने हैं—सिपाही और गुजरिया, राजा और वकील, भिश्ती और धोबिन और साधु। वाह! कितने सुन्दर खिलौने हैं। अब बोलना ही चाहते हैं। महमूद सिपाही लेता है, खाकी वर्दी और लाल पगडीवाला कधे पर बदूक रखे हुए, मालूम होता है, अभी कवायद किए चला आ रहा है। मोहसिन को भिश्ती पसद आया। कमर झुकी हुई है, ऊपर मशक रखे हुए है। मशक का मुँह एक हाथ से पकडे हुए है। कितना प्रसन्न है! शायद कोई गीत गा रहा है। बस, मशक से पानी उडेलना ही चाहता है। नूरे को वकील से प्रेम है। कैसी विद्वत्ता है उसके मुख पर! काला चोगा, नीचे सफेद अचकन, अचकन के सामने की जेब मे घड़ी, सुनहरी जजीर, एक हाथ मे कानून का पोथा लिए हुए। मालूम होता है, अभी किसी अदालत से जिरह या बहस किए चले आ रहे हैं। यह सब दो-दो पैसे के खिलौने हैं। हामिद के पास कुल तीन पैसे हैं, इतने महंगे खिलौने वह कैसे ले? खिलौना कही हाथ से छूट पडे, तो चूर-चूर हो जाए। जरा पानी पडे, तो सारा रग घुल जाए। ऐसे खिलौने लेकर वह क्या करेगा किस काम के!

मोहसिन कहता है—मेरा भिश्ती रोज पानी दे जाएगा साँझ-सवेरे।

महमूद—और मेरा सिपाही घर का पहरा देगा। कोई चोर आएगा, तो फौरन बदूक फैर कर देगा।

नूरे—मेरा वकील खूब मुकदमा लडेगा।

सम्मी—और मेरी धोबिन रोज कपडे धोएगी।

हामिद खिलौनो की निंदा करता है—मिट्टी ही के तो हैं, गिरें तो चकनाचूर हो जाएँ, लेकिन ललचाई हुई आँखो से खिलौनो को देख रहा है और चाहता है कि जरा देर के लिए उन्हें हाथ मे ले सकता। उसके हाथ अनायास ही लपकते हैं, लेकिन लडके इतने त्यागी नही होते हैं, विशेपकर जब अभी नया शौक है। हामिद ललचाता रह जाता है।

खिलौने के बाद मिठाइयां आती हैं। किसी ने रेवड़ियाँ ली हैं, किसी ने

गुलावजामुन, किसी ने सोहन हलवा। मजे से खा रहे हैं। हामिद विरादरी से पृथक् है। अभागे के पास तीन पैसे हैं। क्यो नही कुछ लेकर खाता? ललचाई आँखो से सवकी ओर देखता है।

मोहसिन कहता है—हामिद, रेवडी ले जा, कितनी खुशवूदार है!

हामिद को सदेह हुआ, यह केवल क्रूर विनोद है। मोहसिन इतना उदार नही है, लेकिन यह जानकर भी वह उसके पास जाता है। मोहसिन दोने से एक रेवडी निकालकर हामिद की ओर वढाता है। हामिद हाथ फैलाता है। मोहसिन रेवडी अपने मुँह मे रख लेता है। महमूद, नूरे और सम्मी खूव तालिया वजा-वजाकर हँसते है। हामिद खिसिया जाता है।

मोहसिन—अच्छा, अवकी जरूर देंगे हामिद, अल्ला कसम, ले जा।

हामिद—रखे रहो। क्या मेरे पास पैसे नही हैं?

सम्मी—तीन ही पैसे तो हैं। तीन पैसे मे क्या-क्या लोगे?

महमूद—हमसे गुलावजामुन ले जाओ हामिद। मोहसिन वदमाश है।

हामिद—मिठाई कौन वडी नेमत है। किताव मे इसकी कितनी वुराइयाँ लिखी हैं।

मोहसिन—लेकिन दिल मे कह रहे होगे कि मिले तो खा ले। अपने पैसे क्यो नही निकालते?

महमूद—हम समझते हैं, इसकी चालाकी। जव हमारे सारे पैसे खर्च हो जायेंगे, तो हमे ललचा-ललचाकर खाएगा।

मिठाइयो के वाद कुछ दूकानें लोहे की चीजो की, कुछ गिलट और कुछ नकली गहनो की। लड़को के लिए यहाँ कोई आकर्षण न था। वे सव आगे वढ जाते है। हामिद लोहे की दूकान पर रुक जाता है। कई चिमटे रखे हुए थे। उसे खयाल आया, दादी के पास चिमटा नही है। तवे से रोटियाँ उतारती है, तो हाथ जल जाता है। अगर वह चिमटा ले जाकर दादी को दे दे, तो वह कितना प्रसन्न होगी! फिर उनकी उँगलियाँ कभी न जलेंगी। घर मे एक काम की चीज हो जाएगी। खिलौने से क्या फायदा? व्यर्थ मे पैसे खराव होते है। जरा देर ही तो खुशी होती है। फिर तो खिलौने को कोई आँख उठाकर नही देखता। यह तो घर पहुँचते-पहुँचते टूट-फूट बराबर हो जायेंगे। चिमटा कितने काम की चीज है। रोटियाँ तवे से उतार लो, चूल्हे मे सेंक लो। कोई आग माँगने आये, तो चटपट चूल्हे से आग निकालकर उसे दे दो। अम्माँ वेचारी को कहाँ फुरसत है कि वाजार आयें, और इतने पैसे ही कहाँ मिलते है? रोज हाथ जला लेती हैं।

हामिद के साथी आगे वढ गए हैं। सवील पर सवके सव शर्वत पी रहे हैं। देखो, सव कितने लालची हैं! इतनी मिठाइयाँ ली, मुझे किसी ने एक भी न दी। उस पर कहते हैं, मेरे साथ खेलो। मेरा यह काम करो। अव अगर किसी

ने कोई काम करने को कहा, तो पूछूंगा। खाएँ मिठाइयाँ, आप मुंह सडेगा, फोडे-फुन्सियाँ निकलेगी, आप ही जवान चटोरा हो जाएगी। तव घर से पैसे चुरायेंगे और मार खायेंगे। किताव मे झूठी वातें थोडे ही लिखी हैं। मेरी जवान क्यो खराव होगी? अम्माँ चिमटा देखते ही दौडकर मेरे हाथ से ले लेंगी और कहेंगी—मेरा वच्चा अम्माँ के लिए चिमटा लाया है। हजारो दुआएँ देंगी। फिर पडोस की औरतो को दिखायेंगी। सारे गाँव मे चरचा होने लगेगी, हामिद चिमटा लाया है। कितना अच्छा लडका है। इन लोगो के खिलौने पर कौन इन्हे दुआएँ देगा? वडो की दुआएं सीधे अल्लाह के दरवार मे पहुँचती हैं, और तुरत सुनी जाती हैं। मेरे पास पैसे नही हैं। तभी तो मोहसिन और महमूद यो मिजाज दिखाते है। मैं भी इनसे मिजाज दिखाऊंगा। खेलें खिलौने और खायें मिठाइयाँ। मैं नही खेलता खिलौने, किसी का मिजाज क्यो सहूँ? मैं गरीव सही, किसी से कुछ माँगने तो नही जाता। आखिर अव्वाजान कभी न कभी आयेंगे। अम्मा भी आयेंगी ही। फिर इन लोगो से पूछूगा, कितने खिलौने लोगे? एक-एक को टोकरियो खिलौने दूँ और दिखा दूं कि दोस्तो के साथ इस तरह सलूक किया जाता है। यह नही कि एक पैसे की रेवडियाँ ली, तो चिढा-चिढाकर खाने लगे। सवके सव हँसेंगे कि हामिद ने चिमटा लिया है। हँसें! मेरी वला से! उसने दूकानदार से पूछा—यह चिमटा कितने का है?

दूकानदार ने उसकी ओर देखा और कोई आदमी साथ न देखकर कहा—तुम्हारे काम का नही है जी!

'विकाऊ है कि नही?'

'विकाऊ क्यो नही है? और यहाँ क्यो लाद लाए हैं?'

'तो वताते क्यो नही, कै पैसे का है?'

'छः पैसे लगेंगे।'

हामिद का दिल वैठ गया।

'ठीक-ठीक वताओ!'

'ठीक-ठीक पाँच पैसे लगेंगे, लेना हो हो लो, नही चलते वनो।'

हामिद ने कलेजा मजवूत करके कहा—तीन पैसे लोगे?

यह कहता हुआ वह आगे वढ गया कि दूकानदार की घुडकियाँ न सुने। लेकिन दूकानदार ने घुडकियाँ नही दी। वुलाकर चिमटा दे दिया। हामिद ने उसे इस तरह कधे पर रखा, मानो वदूक है और शान से अकडता हुआ सगियो के पास आया। जरा सुनें, सवके सव-क्या-क्या आलोचनाएँ करते हैं।

मोहसिन ने हँसकर कहा—यह चिमटा क्यो लाया पगले, इसे क्या करेगा?'

हामिद ने चिमटे को जमीन पर पटककर कहा—जरा अपना भिश्ती जमीन पर गिरा दो। सारी पसलियाँ चूर-चूर हो जाएँ वचा की।

महमूद बोला—तो यह चिमटा कोई खिलौना है ?

हामिद—खिलौना क्यो नही है ! अभी कन्धे पर रखा, वदूक हो गई। हाथ में ले लिया, फकीरो का चिमटा हो गया। चाहूँ तो इससे मजीरे का काम ले सकता हूँ। एक चिमटा जमा दूँ, तो तुम लोगो के सारे खिलौनो की जान निकल जाए। तुम्हारे खिलौने कितना ही जोर लगाएँ, मेरे चिमटे का वाल भी वाका नही कर सकते। मेरा वहादुर शेर है—चिमटा।

सम्मी ने खंजरी ली थी। प्रभावित होकर वोला—मेरी खजरी से वदलोगे ? दो आने की है।

हामिद ने खंजरी की ओर उपेक्षा से देखा—मेरा चिमटा चाहे तो तुम्हारी खंजरी का पेट फाड डाले। वस, एक चमडे की झिल्ली लगा दी, ढव-ढव वोलने लगी। जरा-सा पानी लग जाए तो खतम हो जाए। मेरा वहादुर चिमटा आग मे, पानी मे, आँधी मे, तूफान मे वरावर डटा खडा रहेगा।

चिमटे ने सभी को मोहित कर लिया, लेकिन अव पैसे किससे पास धरे है ? फिर मेले से दूर निकल आए हैं नौ कव के वज गए, धूप तेज हो रही है। घर पहुचने की जल्दी हो रही है। वाप से जिद भी करें, तो चिमटा नही मिल सकता। हामिद है वडा चालाक। इसीलिए वदमाश ने अपने पैसे वचा रखे थे।

अव वालको के दो दल हो गए हैं। मोहसिन, महमूद, सम्मी और नूरे एक तरफ हैं, हामिद अकेला दूसरी तरफ। शास्त्रार्थ हो रहा है। सम्मी तो विधर्मी हो गया ! दूसरे पक्ष से जा मिला, लेकिन मोहसिन, महमूद और नूरे भी, हामिद से एक-एक, दो-दो साल वडे होने पर भी हामिद के आघातो से आतकित हो उठे हैं। उसके पास न्याय का वल है और नीति की शक्ति। एक ओर मिट्टी है, दूसरी ओर लोहा जो इस वक्त अपने को फौलाद कह रहा है। वह अजेय है, घातक है। अगर कोई शेर आ जाए, मियाँ भिश्ती के छक्के छूट जाएँ, मियाँ सिपाही मिट्टी की वंदूक छाडकर भागें, वकील साहव की नानी मर जाए, चुगे मे मुँह छिपाकर जमीन पर लेट जायें। मगर यह चिमटा, यह वहादुर, यह रुस्तमे-हिंद लपककर शेर की गरदन पर सवार हो जायेगा और उसकी आँखें निकाल लेगा।

मोहसिन ने एडी-चोटी का जोर लगाकर कहा—अच्छा, पानी तो नही भर सकता।

हामिद ने चिमटे को सीधा खडा करके कहा—भिश्ती को एक डाँट वताएगा, तो दौडा हुआ पानी लाकर उसके द्वार पर छिडकने लगेगा।

मोहसिन परास्त हो गया, पर महमूद ने कुमुक पहुँचाई—अगर वचा पकड जाएँ, तो अदालत मे वँधे-वँधे फिरेंगे। तव तो वकील साहव के पैरो पडेगे।

हामिद इस प्रवल तर्क का जवाब न दे सका। उसने पूछा—हमे पकडने

कौन आएगा ?

नूरे ने अकडकर कहा—यह सिपाही वंदूकवाला ।

हामिद ने मुँह चिढाकर कहा—यह वेचारे हम वहादुर रुस्तमे-हिंद को पकडेंगे ! अच्छा लाओ, अभी जरा कुश्ती हो जाए । इसकी सूरत देखकर दूर से भागेंगे । पकडेंगे क्या वेचारे !

मोहसिन को एक नई चोट सूझ गई—तुम्हारे चिमटे का मुँह रोज आग मे जलेगा ।

उसने समझा था कि हामिद लाजवाव हो जाएगा, लेकिन यह वात न हुई । हामिद ने तुरत जवाव दिया—आग मे वहादुर कूदते हैं जनाव, तुम्हारे यह वकील, सिपाही और भिश्ती लेडियो की तरह घर मे घुस जायेंगे । आग मे वह काम है, जो यह रुस्तमे-हिन्द ही कर सकता है ।

महमूद ने एक जोर लगाया—वकील साहव कुरसी-मेज पर वैठेंगे, तुम्हारा चिमटा तो वावरचीखाने मे पडा रहेगा ।

इस तर्क ने सम्मी और नूरे को भी सजीव कर दिया ! कितने ठिकाने की वात कही है पट्ठे ने । चिमटा वावरचीखाने मे पडा रहने के सिवा और क्या कर सकता है ?

हामिद को कोई पकडता हुआ जवाव न सूझा, तो उसने धाधली शुरू की—मेरा चिमटा वावरचीखाने मे नही रहेगा । वकील साहव कुर्सी पर वैठेंगे, तो जाकर उन्हे जमीन पर पटक देगा और उनका कानून उनके पेट मे डाल देगा ।

वात कुछ वनी नही । खाली गाली-गलौज थी, लेकिन कानून को पेट मे डालने वाली वात छा गई । ऐसी छा गई कि तीनो सूरमा मुँह ताकते रह गए, मानो कोई धेलचा कंकौआ किसी गंडेवाले कंकौए को काट गया हो । कानून मुँह से वाहर निकलनेवाली चीज है । उसको पेट के अन्दर डाल दिया जाना, वेतुकी-सी वात होने पर भी कुछ नयापन रखती है । हामिद ने मैदान मार लिया । उसका चिमटा रुस्तमे-हिन्द है । अव इसमे मोहसिन, महमूद, नूरे, सम्मी किसी को भी आपत्ति नही हो सकती ।

विजेता को हारनेवालो से जो सत्कार मिलना स्वाभाविक है, वह हामिद को भी मिला । औरो ने तीन-तीन चार-चार आने पैसे खर्च किए, पर कोई काम की चीज न ले सके । हामिद ने तीन पैसे मे रग जमा लिया । सच ही तो है, खिलौने का क्या भरोसा ? टूट-फूट जायेंगे । हामिद का चिमटा तो वना रहेगा वरसो !

सधि की शर्तें तय होने लगी । मोहसिन ने कहा—जरा अपना चिमटा दो, हम भी देखें । तुम हमारा भिश्ती लेकर देखो ।

महमूद और नूरे ने भी अपने-अपने खिलौने पेश किए ।

हामिद को इन शर्तों के मानने मे कोई आपत्ति न थी। चिमटा वारी-वारी से सवके हाथ मे गया, और उनके खिलोने वारी-वारी से हामिद के हाथ मे आए। कितने खूवसूरत खिलौने हैं!

हामिद ने हारनेवालो के आसू पोछे – मैं तुम्हे चिढा रहा था, सच! यह चिमटा भला, इन खिलौनो की क्या वरावरी करेगा, मालूम होता है, अव वोले अव वोले।

लेकिन मोहसिन की पार्टी को इस दिलासे से सतोप नही होता। चिमटे का सिक्का खूव वैठ गया है। चिपका हुआ टिकट अव पानी से नही छूट रहा है।

मोहसिन—लेकिन इन खिलौनो के लिए कोई हमे दुआ तो न देगा?

महमूद—दुआ को लिए फिरते हो। उलटे मार न पडे। अम्माँ जरूर कहेगी कि मेले मे यही मिट्टी के खिलौने मिले?

हामिद को स्वीकार करना पडा कि खिलौनो को देखकर किसी की मा इतनी खुश न होगी, जितनी दादी चिमटे को देखकर होगी। तीन पैसो ही मे तो उसे सव-कुछ करना था और उन पैसो के इस उपयोग पर पछतावे की विलकुल जरूरत न थी। फिर अव तो चिमटा रुस्तमे-हिन्द है और सभी खिलौनो का वादशाह!

रास्ते मे महमूद को भूख लगी। उसके वाप ने केले खाने को दिये। महमूद ने केवल हामिद को साझी वनाया। उसके अन्य मित्र मुँह ताकते रह गए। यह उस चिमटे का प्रसाद था।

3

ग्यारह वजे गाँव मे हलचल मच गई। मेलेवाले आ गए। मोहसिन की छोटी वहन ने दौडकर भिश्ती उसके हाथ से छीन लिया और मारे खुशी के जो उछली, तो मियाँ भिश्ती नीचे आ रहे और सुरलोक सिधारे। इस पर भाई-वहन मे मार-पीट हुई। दोनो खूव रोए। उसकी अम्माँ यह शोर सुनकर विगडी और दोनो को ऊपर से दो-दो चाँटे और लगाए।

मियाँ नूरे वकील का अत उनके प्रतिष्ठानुकूल इससे ज्यादा गौरमवय हुआ। वकील जमीन पर या ताक पर तो नही वैठ सकता। उसकी मर्यादा का विचार तो करना ही होगा। दीवार मे दो खूँटियाँ गाडी हुईं। उन पर लकडी का एक पटरा रखा गया। पटरे पर कागज का कालीन विछाया गया। वकील साहव राजा भोज की भाँति सिहासन पर विराजे। नूरे ने उन्हें पखा झलना शुरू किया। अदालतो खस की टट्टियाँ और विजली के पखे रहते हैं। क्या यहाँ मामूली पखा भी न हो! कानून की गर्मी दिमाग पर चढ जाएगी कि नही?

बाँस का पखा आया और नूरे हवा करने लगे। मालूम नही, पंखे की हवा से या पखे की चोट से वकील साहव स्वर्गलोक से मृत्युलोक मे आ रहे और उनका माटी का चोला माटी मे मिल गया ! फिर वडे जोर-शोर से मातम हुआ और वकील साहव की अस्थि घूरे पर डाल दी गई।

अव रहा महमूद का सिपाही। उसे चटपट गाव का पहरा देने का चार्ज मिल गया, लेकिन पुलिस का सिपाही कोई साधारण व्यक्ति तो नही, जो अपने पैरो चले। वह पालकी पर चलेगा। एक टोकरी आई, उसमे कुछ लाल रग के फटे-पुराने चिथडे विछाए गए, जिसमे सिपाही साहव आराम से लेटे। नूरे ने यह टोकरी उठाई और अपने द्वार का चक्कर लगाने लगे। उनके दोनो छोटे भाई सिपाही की तरह 'छोनेवाले, जागते लहो' पुकारते चलते हैं। मगर रात तो अँधेरी होनी चाहिए, महमूद को ठोकर लग जाती है। टोकरी उसके हाथ से छूटकर गिर पडती है और मिआँ सिपाही वन्दूक लिये जमीन पर आ जाते है और उनकी एक टाँग मे विकार आ जाता है।

महमूद को आज ज्ञात हुआ कि वह अच्छा डाक्टर हैं। उसको ऐसा मरहम मिल गया है, जिससे वह टूटी टाग को आनन-फानन जोड सकता है। केवल गूलर का दूध चाहिए। गूलर का दूध आता है। टाँग जोड दी जाती है, लेकिन सिपाही को ज्यो ही खडा किया जाता है, टाँग जवाव दे देती है। शल्य-क्रिया असफल हुई, तव उसकी दूसरी टाँग भी तोड दी जाती है। अव कम से कम एक जगह आराम से वैठ तो सकता है। एक टाँग से तो न चल सकता था, न वैठ सकता था। अव वह सिपाही सन्यासी हो गया है। अपनी जगह पर वैठा-वैठा पहरा देता है। कभी-कभी देवता भी वन जाता है। उसके सिर का झालरदार साफा खुरच दिया गया है। अव उसका जितना रूपातर चाहो, कर सकते हो। कभी कभी तो उससे वाट का काम भी लिया जाता है।

अव मियाँ हामिद का हाल सुनिए। अमीना उसकी आवाज सुनते ही दौडी और उसे गोद मे उठाकर प्यार करने लगी। सहसा उसके हाथ मे चिमटा देखकर वह चौकी।

'यह चिमटा कहाँ था ?'

'मैंने मोल लिया है।'

'कै पैसे मे ?'

'तीन पैसे दिये।'

अमीना ने छाती पीट ली। यह कैसा वेसमझ लडका है कि दोपहर हुआ, कुछ खाया न पिया। लाया क्या, चिमटा ! 'सारे मेले मे तुझे और कोई चीज न मिली, जो यह लोहे का चिमटा उठा लाया ?'

हामिद ने अपराधी-भाव से कहा—तुम्हारी उँगलियाँ तवे से जल जाती थीं,

इसीलिए मैंने इसे लिया।

बुढिया का क्रोध तुरन्त स्नेह मे बदल गया, और स्नेह भी वह नही, जो प्रगल्भ होता है और अपनी सारी कसक शब्दो मे बिखेर देता है। यह मूक स्नेह था, खूब ठोस, रस और स्वाद से भरा हुआ। बच्चे मे कितना त्याग, कितना सद्भाव और कितना विवेक है! दूसरे को खिलौने लेते और मिठाई खाते देखकर इसका मन कितना ललचाया होगा? इतना जब्त इससे हुआ कैसे? वहाँ भी इसे अपनी बुढिया दादी की याद बनी रही। अमीना का मन गद्गद हो गया।

और, अब एक बडी विचित्र बात हुई है। हामिद के इस चिमटे से भी विचित्र। बच्चे हामिद ने बूढे हामिद का पार्ट खेला था। बुढिया अमीना बालिका अमीना बन गई। वह रोने लगी। दामन फैलाकर हामिद को दुआएँ देती जाती थी और आँसू की बडी-बडी बूंदे गिराती जाती थी। हामिद इसका रहस्य क्या समझता!

माँ

आज वन्दी छूटकर घर आ रहा है। करुणा ने एक दिन पहले ही घर लीत-पोत रखा था। इन तीन वर्षों मे उसने कठिन तपस्या करके जो दस-पाँच रुपये जमा कर रखे थे, वह सव पति के सत्कार और स्वागत की तैयारियो मे खर्च कर दिए। पति के लिए धोतियो का नया जोडा लाई थी, नए कुरते वनवाए थे, बच्चे के लिए नएकोट और टोपी की आयोजना की थी। वार-बार वच्चे को गले लगाती और प्रसन्न होती। अगर इस वच्चे ने सूर्य की भाँति उदय होकर उसके अँधेरे जीवन को प्रदीप्त न कर दिया होता, तो कदाचित् ठोकरों ने उसके जीवन का अन्त कर दिया होता। पति के कारावास-दण्ड के तीन ही महीने वाद इस वालक का जन्म हुआ। उसीका मुँह देख-देखकर करुणा ने यह तीन साल काट दिए थे। वह सोचती—जव मैं वालक को उनके सामने ले जाऊगी, तो वह कितने प्रसन्न होगे! उसे देखवर पहले तो चकित हो जायँगे, फिर गोद मे उठा लेंगे और कहेगे—करुण, तुमने यह रत्न देकर मुझे निहाल कर दिया। कैद के सारे कष्ट वालक की तोतली वातो मे भूल जायगे, उसकी एक सरल, पवित्र, मोहक दृष्टि हृदय की सारी व्यथाओ को धो डालेगी। इस कल्पना का आनन्द लेकर वह फूली न समाती थी।

वह सोच रही थी—आदित्य के साथ वहुत से आदमी होगे। जिस समय वह द्वार पर पहुचेंगे, 'जय-जयजकार' की ध्वनि से आकाश गूँज उठेगा। वह कितना स्वर्गीय दृश्य होगा। उन आदमियो के वैठने के लिए करुणा ने एक फटा-सा टाट विछा दिया था, कुछ पान वना लिए थे और वार-वार आशामय नेत्रो से द्वार की ओर ताकती थी। पति की वह सुदृढ, उदार, तेज-पूर्ण मुद्रा वार-वार आँखो मे फिर जाती थी। उनकी वे वातें वारवार याद आती थी, जो चलते समय उनके मुख से निकली थी, उनका वह धैर्य, वह आत्मवल, जो पुलिस के प्रहारो के सामने भी अटल रहा था, वह मुस्कराहट जो उस समय भी उनके अधरो पर खेल रही थी, वह आत्माभिमान, जो उस समय भी उनके मुख से टपक रहा था, क्या करुणा के हृदय से कभी विस्मृत

हो सकता था ? उसका स्मरण आते ही करुणा के निस्तेज मुख पर आत्मगौरव की लालिमा छा गई। यही वह अवलम्ब था, जिसने इन तीन वर्षों की घोर यातनाओ मे भी उसके हृदय को आश्वासन दिया था। कितनी ही राते फाको से गुजरी, बहुधा घर मे दीपक जलने की नौबत भी न आती थी, पर दीनता के आँसू कभी उसकी आखो से न गिरे। आज उन सारी विपत्तियो का अन्त हो जायेगा। पति के प्रगाढ आलिगन मे वह सब कुछ हँसकर झेल लेगी। वह अनंत निधि पाकर फिर उसे कोई अभिलाषा न रहेगी।

गगन-पथ का चिरगामी पार्थिक लपका हुआ विश्राम की ओर चला जाता था, जहाँ सध्या ने सुनहरा फर्श सजाया था और उज्ज्वल पुष्पो की सेज बिछा रखी थी। उसी समय करुणा को एक आदमी लाठी टेकता आता दिखाई दिया, मानो किसी जीर्ण मनुष्य की वेदना-ध्वनि हो। पग-पग पर रुककर खाँसने लगता था। उसका सिर झुका हुआ था, करुणा उसका चेहरा न देख सकती थी, लेकिन चाल-ढाल से कोई बूढा आदमी मालूम होता था, पर एक क्षण मे जब वह समीप आ गया, तो करुणा उसे पहचान गई। वह उसका प्यारा पति ही था; किन्तु शोक ! उसकी सूरत कितनी बदल गई थी। वह जवानी, वह तेज, वह चपलता, वह सुगठन, सब प्रस्थान कर चुका था। केवल हड्डियो का एक ढाँचा रह गया था। न कोई संगी, न साथी, न यार, न दोस्त ! करुणा उसे पहचानते ही बाहर निकल आयी; पर आलिगन की कामना हृदय मे दबाकर रह गई। सारे मनसूबे धूल मे मिल गए। सारा मनोल्लास आँसुओ के प्रभाव मे बह गया, विलीन हो गया।

आदित्य ने घर मे कदम रखते ही मुस्कराकर करुणा को देखा। पर उस मुस्कान मे वेदना का एक ससार भरा हुआ था। करुणा ऐसी शिथिल हो गई, मानो हृदय का स्पदन रुक गया हो। वह फटी हुई आँखो से स्वामी की ओर टकटकी बाँधे खडी थी, मानो उसे अपनी आँखो पर अब भी विश्वास न आता हो। स्वागत या दु.ख का एक शब्द भी उसके मुँह से न निकला। बालक भी उसकी गोद मे बैठा हुआ सहमी आँखो से इस ककाल को देख रहा था और माता की गोद मे चिपटा जाता था !

आखिर उसने कातर स्वर मे कहा—यह तुम्हारी क्या दशा है ? बिलकुल पहचाने नही जाते !

आदित्य ने उसकी चिन्ता को शाँत करने के लिए मुस्कराने की चेष्टा करके कहा—कुछ नही, जरा, दुबला हो गया हूँ। तुम्हारे हाथो का भोजन पाकर फिर स्वस्थ हो जाऊँगा।

करुणा—छी ! सूखकर काँटा हो गए। क्या वहाँ भरपेट भोजन भी नही मिलता ! तुम तो कहते थे, राजनैतिक आदमियो के साथ बडा अच्छा व्यवहार

किया जाता है, और वह तुम्हारे साथी क्या हो गए, जो तुम्हें आठो पहर घेरे रहते थे और तुम्हारे पसीने की जगह खून वहाने को तैयार रहते थे ?

आदित्य की त्योरियो पर वल पड गए । वोले—वह वडा ही कटु अनुभव है करुणा ! मुझे न मालूम था कि मेरे कैद होते ही लोग मेरी ओर मे यो आँखें फेर लेंगे, कोई वात भी न पूछेगा । राष्ट्र के नाम पर मिटनेवालो का यही पुरस्कार है, यह मुझे न मालूम था । जनता अपने सेवको को वहुत जल्द भूल जाती है, यह तो मैं जानता था, लेकिन अपने सयोहगी और सहायक इतने वेवफा होते है, इसका मुझे यह पहला ही अनुभव हुआ । लेकिन मुझे किसी मे शिकायत नही । सेवा स्वय अपना पुरस्कार है । मेरी भूल थी कि मैं इसके लिए यश और नाम चाहता था ।

करुणा—तो क्या वहाँ भोजन भी न मिलता था ?

आदित्य—यह न पूछो करुणा, वडी करुण कथा है । वस, यही गनीमत समझो कि जीता लौट आया । तुम्हारे दर्शन वदे थे, नही कष्ट तो ऐसे-ऐसे उठाए कि अव तक मुझे प्रस्थान कर जाना चाहिए था । मैं जरा लेटूंगा । खडा नही रह जाता । दिन-भर मे इतनी दूर आया हूँ ।

करुणा—चलकर कुछ खा लो, तो आराम से लेटो । (वालक को गोद में उठाकर) वावूजी हैं वेटा, तुम्हारे वावूजी । इनकी गोद मे जाओ, तुम्हे प्यार करेंगे ।

आदित्य ने आँसू-भरी आँखो से वालक को देखा, और उनका एक-एक रोम उनका तिरस्कार करने लगा । अपनी जीर्ण दशा पर उन्हे कभी इतना दुःख न हुआ था। ईश्वर की असीम दया से यदि उनकी दशा सँभल जाती, तो वह फिर कभी राष्ट्रीय आन्दोलन के समीप न जाते । इस फूल से वच्चे को यो ससार मे लाकर दरिद्रता की आग मे झोकने का उन्हे क्या अधिकार था ? वह अव लक्ष्मी की उपासना करेंगे और अपना क्षुद्र जीवन वच्चे के लालन-पालन के लिए अर्पित कर देंगे। उन्हे इस समय ऐसा ज्ञात हुआ कि वालक उन्हे उपेक्षा की दृष्टि से देख रहा है, मानो कह रहा है—'मेरे साथ आपने कौन-सा कर्त्तव्य-पालन किया ?' उनकी सारी कामना, सारा प्यार वालक को हृदय से लगा लेने के लिए अधीर हो उठा, पर हाथ फैल न सके । हाथो मे शक्ति ही न थी ।

करुणा वालक को लिए हुए उठी और थाली में कुछ भोजन निकालकर लाई । आदित्य ने क्षुधापूर्ण नेत्रो से थाली की ओर देखा, मानो आज वहुत दिनो के वाद कोई खाने की चीज सामने आई है । जानता था कि कई दिनो के उपवास के वाद और आरोग्य की इस गई-गुजरी दशा मे उसे जवान को कावू मे रखना चाहिए, पर सव्र न कर सका, थाली पर टूट पडा और देखते-देखते थाली साफ कर दी । करुणा सशंक हो गई । उसने दोवारा किसी चीज के लिए

न पूछा। थाली उठाकर चली गई, पर उसका दिल कह रहा था—इतना तो यह कभी न खाते थे।

करुणा बच्चे को कुछ खिला रही थी कि एकाएक कानो मे आवाज आई—करुणा !

करुणा ने आकर पूछा—क्या तुमने मुझे पुकारा है ?

आदित्य का चेहरा पीला पड गया था और सास जोर-जोर से चल रही थी। हाथो के सहारे वही टाट पर लेट गए थे। करुणा उनकी यह हालत देख कर घवडा गई। बोली—जाकर किसी वैद्य को बुला लाऊँ ?

आदित्य ने हाथ के इशारे से उसे मना करके कहा— व्यर्थ है करुणा ! अब तुमसे छिपाना व्यर्थ है, मुझे तपेदिक हो गया है। कई बार मरते-मरते बच गया हूँ। तुम लोगो के दर्शन वदे थे, इसलिए प्राण न निकलते थे। देखो प्रिये, रोओ मत।

करुणा ने सिसकियो को दबाते हुए कहा—मैं वैद्य को लेकर अभी आती हूँ।

आदित्य ने फिर सिर हिलाया—नहीं करुणा केवल मेरे पास बैठी रहो। अब किसी से कोई आशा नही है। डाक्टरो ने जवाब दे दिया है। मुझे तो यह आश्चर्य है कि यहाँ पहुच कैसे गया। न जाने कौन दैवी शक्ति मुझे वहाँ से खीच लाई। कदाचित् यह इस बुझते हुए दीपक की अन्तिम झलक थी। आह ! मैंने तुम्हारे साथ बडा अन्याय किया। इसका मुझे हमेशा दुख रहेगा ! मैं तुम्हे कोई आराम न दे सका। तुम्हारे लिए कुछ न कर सका। केवल सोहाग का दाग लगाकर और एक बालक के पालन का भार छोडकर चला जा रहा हूँ। आह !

करुणा ने हृदय को दृढ करके कहा—तुम्हे कही दर्द तो नही है ? आग बना लाऊँ। कुछ बताते क्यो नही ?

आदित्य न करवट बदलकर कहा—कुछ करने की जरूरत नही प्रिये ! कहीं दर्द नही। बस, ऐसा मालूम हो रहा है कि दिल बैठा जाता है, जैसे पानी मे डूबा जाता हूँ। जीवन की लीला समाप्त हो रही है। दीपक को बुझते हुए देख रहा हूँ। कह नही सकता, कब आवाज बन्द हो जाए। जो कुछ कहना है, वह कह डालना चाहता हूँ, क्यो वह लालसा ले जाऊँ। मेरे एक प्रश्न का जवाब दोगी, पूछू ?

करुणा के मन की सारी दुर्बलता, सारा शोक, सारी वेदना मानो लुप्त हो गई और उनकी जगह उस आत्मबल का उदय हुआ, जो मृत्यु पर हँसता है और विपत्ति के साँपो से खेलता है। रत्नजटित मखमली म्यान मे जैसे तेज तलवार छिपी रहती है, जल के कोमल प्रवाह मे जैसे असीम शक्ति छिपी रहती है, वैसे ही रमणी के कोमल हृदय साहस और धैर्य को अपनी गोद मे छिपाए रहता

है। क्रोध जैसे तलवार को बाहर खीच लेता है, विज्ञान जैसे जल-शक्ति का उद्घाटन कर लेता है, वैसे ही प्रेम रमणी के साहस और धैर्य को प्रदीप्त कर देता है।

करुणा ने पति के सिर पर हाथ रखते हुए कहा—पूछो क्यो नही प्यारे!

आदित्य ने करुणा के हाथो के कोमल स्पर्श का अनुभव करते हुए कहा—तुम्हारे विचार मे मेरा जीवन कैसा था? बधाई के योग्य? देखो, तुमने मुझसे कभी परदा नही रखा। इस समय भी स्पष्ट कहना। तुम्हारे विचार मे मुझे अपने जीवन पर हँसना चाहिए या रोना चाहिए?

करुणा ने उल्लास के साथ कहा—यह प्रश्न क्यो करते हो प्रियतम? क्या मैंने तुम्हारी उपेक्षा कभी की है? तुम्हारा जीवन देवताओ का-सा जीवन था, निःस्वार्थ, निर्लिप्त और आदर्श। विघ्न-बाधाओ से तग आकर मैंने तुम्हें कितनी ही बार ससार की ओर खीचने की चेष्टा की है, पर उस समय भी मैं मन मे जानती थी कि मैं तुम्हे ऊँचे आसन से गिरा रही हूँ। अगर तुम माया-मोह मे फँसे होते, तो कदाचित् मेरे मन को अधिक सतोष होता, लेकिन मेरी आत्मा को वह गर्व और उल्लास न होता, जो इस समय हो रहा है। मैं अगर किसी को बडे-से-बडा आशीर्वाद दे सकती हूँ, तो वह यही होगा कि उसका जीवन तुम्हारे जैसा हो।

यह कहते-कहते करुणा का आभाहीन मुखमडल ज्योतिर्मय हो गया, मानो उनकी आत्मा दिव्य हो गई हो। आदित्य ने सगर्व नेत्रो से करुणा को देखकर कहा—बस, अब मुझे सन्तोष हो गया करुणा, इस बच्चे की ओर मुझे कोई शका नही है। मैं उसे इससे अधिक कुशल हाथो मे नही छोड सकता। मुझे विश्वास है कि जीवन का यह ऊँचा और पवित्र आदर्श सदैव तुम्हारे सामने रहेगा। अब मैं मरने को तैयार हूँ।

2

सात वर्ष बीत गए।

बालक प्रकाश अब दस साल का रूपवान, बलिष्ठ, प्रसन्नमुख कुमार था, बल का तेज, साहसी और मनस्वी। भय तो उसे छू भी नही गया था। करुणा का संतप्त हृदय उसे देखकर शीतल हो जाता। संसार करुणा को अभागिनी और दीन समझे। वह कोई भाग्य का रोना नही रोती। उसने उन आभूषणो को बेच डाला, जो पति के जीवन मे उसे प्राणो से प्रिय थे, और उस धन से कुछ गायें और भैंसें मोल ले ली। वह कृषक की बेटी थी, और गो-पालन उसके लिए कोई नया व्यवसाय न था। इसी को उसने अपनी जीविका का साधन बनाया।

विशुद्ध दूध कहाँ मयस्सर होता है ? सब दूध हाथो-हाथ बिक जाता। करुणा को पहर रात से पहर रात तक काम मे लगा रहना पड़ता, पर वह प्रसन्न थी। उसके मुख पर निराशा या दीनता की छाया नही, संकल्प और साहस का तेज है। उसके एक-एक अंग से आत्म-गौरव की ज्योति सी निकल रही है, आँखो मे एक दिव्य प्रकाश है, गंभीर, अथाह और असीम। सारी वेदनाएँ—वैधव्य का शोक और विधि का निर्मम प्रहार—सब उस प्रकाश की गहराई मे विलीन हो गया है।

प्रकाश पर वह जान देती है। उसका आनंद, उसकी अभिलाषा, उसका संसार, उसका स्वर्ग, सब प्रकाश पर न्योछावर है, पर यह मजाल नही कि प्रकाश कोई-शरारत करे और करुणा आँखे बन्द कर ले। नही वह उसके चरित्र की बड़ी कठोरता से देख-भाल करती है। वह प्रकाश की माँ नही, माँ—बाप दोनों है। उसके पुत्र स्नेह मे माता की ममता के साथ पिता की कठोरता भी मिली हुई है। पति के अन्तिम शब्द अभी तक उसके कानो मे गूँज रहे है। वह आत्मोल्लास, जो उनके चेहरे पर झलकने लगा था, वह गर्वमय लाली, जो उनकी आँखो मे छा गई थी, अभी तक उसकी आँखो मे फिर रही है। निरंतर-पति-चिन्तन ने आदित्य को उसकी आँखो मे प्रत्यक्ष कर दिया है। वह सदैव उसकी उपस्थिति का अनुभव किया करती है। उसे ऐसा जान पड़ता कि आदित्य की आत्मा सदैव उसकी रक्षा करती रहती है। उसकी यही हार्दिक अभिलाषा है कि प्रकाश जवान होकर पिता का पदगामी हो।

संध्या हो गई थी। एक भिखारिन द्वार पर आकर भीख माँगने लगी। करुणा उस समय गउओ को पानी दे रही थी। प्रकाश बाहर खेल रहा था। बालक ही तो ठहरा ! शरारत सूझी। घर मे गया और कटोरे मे थोड़ा-सा भूसा लेकर बाहर निकला। भिखारिन ने अपनी झोला फैला दी। प्रकाश ने भूसा उसकी झोली मे डाल दिया और जोर-जोर से तालियाँ बजाता हुआ भागा।

भिखारिन ने अग्निमय नेत्रो से देखकर कहा—वाह रे लाडले ! मुझसे हँसी करने चला है ! यही माँ-बाप ने सिखाया है ! तब तो खूब कुल का नाम जगाओगे !

करुणा उसकी बोली सुनकर निकल आयी और पूछा—क्या है माता ? किसे कह रही हो ?

भिखारिन ने प्रकाश की तरफ इशारा करके कहा—वह तुम्हारा लड़का है न। देखो, कटोरे मे भूसा भरकर मेरी झोली मे डाल गया है। चुटकी-भर आटा था, वह भी मिट्टी मे मिल गया। कोई इस तरह दुखियो को सताता है ? सबके दिन एक-से नही रहते ! आदमी को घमंड न करना चाहिए।

करुणा ने कठोर स्वर मे पुकारा—प्रकाश !

प्रकाश लज्जित न हुआ। अभिमान से सिर उठाए हुए आया और बोला—यह हमारे घर भीख क्यो माँगने आयी है ? कुछ काम क्यो नही करती ?

करुणा ने उसे समझाने की चेष्टा करके कहा—शर्म तो नही आती, उलटे और आँख दिखाते हो।

प्रकाश—शर्म क्यो आए ? यह क्यो रोज भीख माँगने आती है ? हमारे यहाँ क्या कोई चीज मुफ्त आती है !

करुणा—तुम्हे कुछ न देना था तो सीधे से कह देते, जाओ। तुमने यह शरारत क्यो की ?

प्रकाश—उस की आदत कैसे छूटती ?

करुणा ने बिगड़कर कहा—तुम अब पिटोगे मेरे हाथो।

प्रकाश—पिटूँगा क्यो, आप जबरदस्ती पीटेंगी ? दूसरे मुल्को मे अगर कोई भीख माँगे, तो कैद कर लिया जाय। यह नही कि उल्टे भिखमगो को और शह दिया जाय।

करुणा—जो अपंग है, वह कैसे काम करे ?

प्रकाश—तो जाकर डूब मरे, जिन्दा क्यो रहती है !

करुणा निरुत्तर हो गई। बुढिया को तो उसने दाल-आटा देकर विदा किया, किन्तु प्रकाश का कुतर्क उसके हृदय मे फोडे के समान टीसता रहा। इसने यह धृष्टता, यह अविनय कहाँ सीखी ? रात को भी उसे बार-बार यही खयाल सताता रहा।

आधी रात के समीप एकाएक प्रकाश की नीद टूटी। लालटेन जल रही है और करुणा बैठी रो रही है। उठ बैठा और बोला—अम्माँ, अभी तुम सोई नही ?

करुणा ने मुह फेरकर कहा—नीद नही आई। तुम कैसे जग गए ? प्यास तो नही लगी है ?

प्रकाश—नही अम्माँ, न जाने क्यो आँख खुल गई—मुझसे आज बडा अपराध हुआ अम्माँ—

करुणा ने उसके मुख की ओर स्नेह के नेत्रो से देखा।

प्रकाश—मैंने आज बुढिया के साथ बडी नटखटी की। मुझे क्षमा करो। फिर कभी ऐसी शरारत न करूँगा।

यह कहकर रोने लगा। करुणा ने स्नेहार्द्र होकर उसे गले से लगा लिया और उसके कपोलो का चुम्बन करके बोली—बेटा, मुझे खुश करने के लिए यह कह रहे हो या तुम्हारे मन मे सचमुच पछतावा हो रहा है ?

प्रकाश ने सिसकते हुए कहा—नही अम्माँ, मुझे दिल से अफसोस हो रहा है। अबकी वह बुढिया आएगी, तो मैं उसे बहुत से पैसे दूँगा।

करुणा का हृदय मतवाला हो गया। ऐसा जान पड़ा, आदित्य सामने खड़े बच्चे कोआशीर्वाद दे रहे है और कह रहे हैं, करुणा क्षोभ मत कर, प्रकाश अपने पिता का नाम रोशन करेगा। तेरी सम्पूर्ण कामनाएँ पूरी हो जायँगी।

3

लेकिन प्रकाश के कर्म और वचन मे मेल न था और दिनो के साथ उसके चरित्र का यह अग प्रत्यक्ष होता जाता था। जहीन था ही, विश्वविद्यालय से उसे वजीफे मिलते थे, करुणा भी उसकी यथेष्ट सहायता करती थी, फिर भी उसका खर्च पूरा न पडता था। वह मितव्ययिता और सरल जीवन पर विद्वत्ता से भरे हुए व्याख्यान दे सकता था, पर उसका रहन-सहन फैशन के अधभक्तो से जौ भर घट कर न था। प्रदर्शन की धुन उसे हमेशा सवार रहती थी। उसके मन और बुद्धि मे निरतर द्वन्द्व होता रहता था। मन जाति की ओर था, बुद्धि अपनी ओर। बुद्धि मन को दवाए रहती थी। उसके सामने मन की एक न चलती थी। जाति-सेवा ऊसर की खेती है, वहाँ वडे-से-वडा उपहार जो मिल सकता है, वह है गौरव और यश, पर वह भी स्थायी नही, इतना अस्थिर कि क्षण मे जीवन भर की कमाई पर पानी फिर सकता है। अतएव उसका अन्त करण अनिवार्य वेग के साथ विलासमय जीवन की ओर झुकता था। यहाँ तक कि धीरे-धीरे उसे त्याग और निग्रह घृणा होने लगी। वह दुरवस्था और दरिद्रता को हेय समझता था। उसके हृदय न था, भाव न थे, केवल मस्तिष्क था। मस्तिष्क मे दर्द कहाँ ? दया कहां, ? वहाँ तो तर्क है, हौसला है, मनसूबे हैं।

सिन्ध मे बाढ आई। हजारो आदमी तबाह हो गए। विद्यालय ने वहाँ एक सेवासमिति भेजी। प्रकाश के मन मे द्वन्द्व होने लगा—जाऊँ ? या न जाऊँ ? इतने दिनो अगर वह परीक्षा की तैयारी करे, तो प्रथम श्रेणी मे पास हो। चलते समय उसने बीमारी का वहाना कर दिया। करुणा ने लिखा, तुम सिन्ध न गये, इसका मुझे दुख है। तुम वोमार रहते हुए भी वहां जा सकते थे। समिति मे चिकित्सक भी तो थे ! प्रकाश ने पत्र का उत्तर न दिया।

उडीसा मे अकाल पडा। प्रजा मक्खियो की तरह मरने लगी। काग्रेस ने पीडितो के लिए एक मिशन तैयार किया। उन्ही दिनो विद्यालय ने इतिहास के छात्रो को ऐतिहासिक खोज के लिए लका भेजने का निश्चय किया। करुणा ने प्रकाश को लिखा—तुम उड़ीसा जाओ। किन्तु प्रकाश लका जाने को लालायित था। वह कई दिन इसी दुविधा मे रहा। अंत को सीलोन ने उडीसा पर विजय पाई। करुणा ने अवकी उसे कुछ न लिखा। चुपचाप रोती रही।

सीलोन से लौटकर प्रकाश छुट्टियो मे घर गया। करुणा उससे खिची-खिची

रही। प्रकाश मन मे लज्जित हुआ और सकल्प किया कि अवकी कोई अवमर आया, तो अम्मा को अवश्य प्रसन्न करूगा। यह निश्चय करके वह विद्यालय लौटा। लेकिन यहाँ आते ही फिर परीक्षा की फिक्र सवार हो गई। यहाँ तक कि परीक्षा के दिन आ गए, मगर इम्तहान से फुरसत पाकर भी प्रकाश घर न गया। विद्यालय के एक अध्यापक काश्मीर सैर करने जा रहे थे। प्रकाश उन्ही के साथ काश्मीर चल खडा हुआ। जव परीक्षा-फल निकला और प्रकाश प्रथम आया, तव उसे घर की याद आई! उसने तुरन्त करुणा को पत्र लिखा और अपने आने की सूचना दी। माता को प्रसन्न करने के लिए उसने दो-चार शब्द जाति-सेवा के विषय मे भी लिखे—अव मैं आपकी आज्ञा का पालन करने को तैयार हू। मैंने शिक्षा-सम्वन्धी कार्य करने का निश्चय किया है। इसी विचार से मैंने वह विशिष्ट स्थान प्राप्त किया है। हमारे नेता भी तो विद्यालयो के आचार्यो ही का सम्मान करते हैं। अभी तक इन उपाधियो के मोह से वे मुक्त नही हुए है। यह उपाधि लेकर वास्तव मे मैंने अपने सेवा-मार्ग से एक वाधा हटा दी है। हमारे नेता भी योग्यता, सदुत्साह, लगन का उतना सम्मान नही करते, जितना उपाधियो का! अव सव मेरी इज्जत करेंगे और जिम्मेदारी का काम सौंपेंगे, जो पहले मागे भी न मिलता।

करुणा की आस फिर वधी।

4

विद्यालय खुलते ही प्रकाश के नाम रजिस्ट्रार का पत्र पहुचा। उन्होंने प्रकाश को इगलैंड जाकर विद्याभ्यास करने के लिए सरकारी वजीफे की मजूरी की सूचना दी थी। प्रकाश पत्र हाथ मे लिये हर्ष के उन्माद मे जाकर माँ से वोला—अम्माँ, मुझे इगलैंड जाकर पढने के लिए सरकारी वजीफा मिल गया।

करुणा ने उदासीन भाव से पूछा—तो तुम्हारा क्या इरादा है?

प्रकाश—मेरा इरादा? ऐसा अवसर पाकर भला कौन छोडता है!

करुणा—तुम तो स्वयंसेवको मे भरती होने जा रहे थे?

प्रकाश—तो आप समझती हैं, स्वयसेवक वन जाना ही जाति-सेवा है? मैं इंगलैंड से आकर भी तो सेवा-कार्य कर सकता हू, और अम्माँ, सच पूछो, तो एक मैजिस्ट्रेट अपने देश का जितना उपकार कर सकता है, उतना एक हजार स्वयंसेवक मिलकर भी नही कर सकते। मैं तो सिविल सर्विस की परीक्षा मे वैठूगा, और मुझे विश्वास है कि सफल हो जाऊगा।

करुणा ने चकित होकर पूछा—तो क्या तुम मैजिस्ट्रेट हो जाओगे?

प्रकाश—सेवा-भाव रखने वाला एक मैजिस्ट्रेट कांग्रेस के एक हजार सभा-

पतियो से ज्यादा उपकार कर सकता है। अखबारो मे उसकी लम्बी-लम्बी तारीफें न छपेगी, उसकी वक्तृताओ पर तालिया न बजेंगी, जनता उसके जुलूस की गाडी न खीचेगी, और न विद्यालयो के छात्र उसको अभिनंदन-पत्र देगे, पर सच्ची सेवा मैजिस्ट्रेट ही कर सकता है।

करुणा ने आपत्ति के भाव से कहा—लेकिन यही मैजिस्ट्रेट तो जाति के सेवको को सजाएं देते है, उन पर गोलियाँ चलाते हैं ?

प्रकाश—अगर मैजिस्ट्रेट के हृदय मे परोपकार का भाव है, तो वह नरमी से वही काम करता है, जो दूसरे गोलियां चलाकर भी नही कर सकते।

करुणा—मैं यह नही मानूगी। सरकार अपने नौकरो को इतनी स्वाधीनता नही देती। वह एक नीति बना देती है, और हरएक सरकारी नौकर को उसका पालन करना पडता है। सरकार की पहली नीति यह है कि वह दिन-दिन अधिक सगठित और दृढ हो। इसके लिए स्वाधीनता के भावो का दमन करना जरूरी है, अगर कोई मैजिस्ट्रेट इस नीति के विरुद्ध काम करता है, तो वह मैजिस्ट्रेट न रहेगा। वह हिन्दुस्तानी मैजिस्ट्रेट था, जिसने तुम्हारे बाबूजी को जरा-सी बात पर तीन साल की सजा दे दी। इसी सजा ने उनके प्राण लिये बेटा, मेरी इतनी बात मानो। सरकारी पदो पर न गिरो। मुझे यह मजूर है कि तुम मोटा खा-कर और मोटा पहनकर देश की कुछ सेवा करो, इसके बदले कि तुम हाकिम बन जाओ और शान से जीवन बिताओ। यह समझ लो कि जिस दिन तुम हाकिम की कुर्सी पर बैठोगे, उस दिन से तुम्हारा दिमाग हाकिमो का-सा हो जायेगा। तुम यही चाहोगे कि अफसरो मे तुम्हारी नेकनामी और तरक्की हो। एक गँवारू मिसाल लो। लडकी जब तक मैके मे क्वारी रहती है, वह अपने को उसी घर का समझती है, लेकिन जिस दिन ससुराल चली जाती है, वह अपने घर को दूसरो का घर समझने लगती है। मा-बाप, भाई-बद सब वही रहते है, लेकिन वह घर अपना नही रहता। यही दुनिया का दस्तूर है।

प्रकाश ने खीझकर कहा—तो क्या आप यही चाहती हैं कि मैं जिन्दगी-भर चारो तरफ ठोकरें खाता फिरू ?

करुणा कठोर नेत्रो से देखकर बोली—अगर ठोकर खाकर आत्मा स्वाधीन रह सकती है, तो मैं कहूगी, ठोकर खाना अच्छा है।

प्रकाश ने निश्चयात्मक भाव से पूछा—तो आपकी यही इच्छा है ?

करुणा ने उसी स्वर मे उत्तर दिया—हाँ, मेरी यही इच्छा है।

प्रकाश ने कुछ जवाब न दिया। उठकर बाहर चला गया और तुरन्त रजि-स्टार को इनकारी-पत्र लिख भेजा, मगर उसी क्षण से मानो उसके सिर पर विपत्ति ने आसन जमा लिया। विरक्त और विमन अपने कमरे मे पडा रहता, न कही घूमने जाता, न किसी से मिलता। मुँह लटकाए भीतर आता और फिर

वाहर चला जाता, यहां तक कि एक महीना गुजर गया। न चेहरे पर लाली रही, न वह ओज, आखें अनाथो के मुख की भाति याचना मे भरी हुई, ओठ हंसना भूल गए, मानो उस इनकारी पत्र के साथ उसकी सारी सजीवता, सारी चपलता, सारी सरलता विदा हो गई। करुणा उसके मनोभाव समझती थी और उसके शोक को भुलाने की चेष्टा करती थी, पर रूठे देवता प्रसन्न न होते थे।

आखिर एक दिन उसने प्रकाश से कहा—वेटा, अगर तुमने विलायत जाने की ठान ही ली है, तो चले जाओ। मैं मना न करूगी। मुझे खेद है कि मैंने तुम्हे रोका। अगर मैं जानती कि तुम्हे इतना आघात पहुचेगा, तो कभी न रोकती। मैंने तो केवल इस विचार से रोका था कि तुम्हें जाति-सेवा मे मग्न देखकर तुम्हारे वावूजी की आत्मा प्रसन्न होगी। उन्होंने चलते समय यही वसीयत की थी।

प्रकाश ने रुखाई से जवाव दिया—अव क्या जाऊगा! इनकारी-खत लिख चुका। मरे लिए कोई अव तक वैठा थोडे ही होगा। कोई दूसरा लडका चुन लिया गया होगा और फिर करना ही क्या है। जव आपकी मर्जी है कि गाव-गाँव की खाक छानता फिरू, तो वही सही।

करुणा का गर्व चूर-चूर हो गया। इस अनुमति से उसने वाधा का काम लेना चाहा था, पर सफल न हुई। वोली—अभी कोई न चुना गया होगा। लिख दो, मैं जाने को तैयार हू।

प्रकाश ने झुँझलाकर कहा—अव कुछ नही हो सकता। लोग हसी उडाएँगे। मैंने तय कर लिया है कि जीवन को आपकी इच्छा के अनुकूल वनाऊगा।

करुणा—तुमने अगर शुद्ध मन से यह इरादा किया होता, तो यो न रहते। तुम मुझसे सत्याग्रह कर रहे हो, अगर मन को दवाकर, मुझे अपनी राह का काटा समझकर तुमने मेरी इच्छा पूरी भी की, तो क्या। मै तो जव जानती कि तुम्हारे मन मे आप-ही-आप सेवा का भाव उत्पन्न होता। तुम आज ही रजिस्ट्रार साहव को पत्र लिख दो।

प्रकाश—अव मैं नही लिख सकता।

'तो इसी शोक मे तने वैठे रहोगे?'

'लाचारी है।'

करुणा ने और कुछ न नहा। जरा देर मे प्रकाश ने देखा कि वह कही जा रही है, मगर वह कुछ वोला नही। करुणा के लिए वाहर आना-जाना कोई असाधारण वात न थी, लेकिन जव सध्या हो गई और करुणा न आयी, तो प्रकाश को चिन्ता होने लगी। अम्मा कहा गयी? यह प्रश्न वार-वार उसके मन मे उठने लगा।

प्रकाश सारी रात द्वार पर वैठा रहा। भाति-भाति की शकाए मन मे उठने

लगी। उसे अब याद आया, चलभे समय करुणा कितनी उदास थी, उसकी आँखें कितनी लाल थी। यह बाते प्रकाश को उस समय क्यो न नजर आई ? वह क्या स्वार्थ मे अधा हो गया था ?

हा, अब प्रकाश को याद आया—माता ने साफ-सुथरे कपडे पहने थे। उनके हाथ मे छतरी भी थी। तो क्या वह कही बहुत दूर गयी है ? किससे पूछे ? अनिष्ट के भय से प्रकाश रोने लगा।

श्रावण की अधेरी भयानक रात थी। आकाश मे श्याम मेघमालाए, भीषण स्वप्न की भाँति छाई हुई थी। प्रकाश रह-रहकर आकाश की ओर देखता था, मानो करुणा उन्ही मेघमालाओ मे छिपी बैठी है। उसने निश्चय किया, सवेरा होते ही मा को खोजने चलूँगा और अगर...

किसी ने द्वार खटखटाया। प्रकाश ने दौडकर खोला, तो देखा करुणा खडी है। उसका मुख-मडल इतना खोया हुआ, इतना करुण था, जैसे आज ही उसका सोहाग उठ गया है, जैसे ससार मे अब उसके लिए कुछ नही रहा, जैसे वह नदी के किनारे खडी अपनी लदी हुई नाव को डूबती देख रही है और कुछ कर नही सकती।

प्रकाश ने अधीर होकर पूछा—अम्मा, कही चली गई थी ? बहुत देर लगाई ?

करुणा ने भूमि की ओर ताकते हुए जवाब दिया—एक काम से गई थी। देर हो गई।

यह कहते हुए उसने प्रकाश के सामने एक बन्द लिफाफा फेंक दिया। प्रकाश ने उत्सुक होकर लिफाफा उठा लिया। ऊपर ही विद्यालय की मुहर थी। तुरन्त ही लिफाफा खोलकर पढा। हलकी सी लालिमा चेहरे पर दौड गयी। पूछा—यह तुम्हे कहा मिल गया अम्मा ?

करुणा—तुम्हारे रजिस्ट्रार के पास से लाई हूं।

'क्या तुम वहाँ चली गई थी ?'

'और क्या करती।'

'कल तो गाडी का समय न था ?'

'मोटर ले ली थी।'

प्रकाश एक क्षण तक मौन खडा रहा, फिर कुंठित स्वर मे बोला—जब तुम्हारी इच्छा नही है तो मुझे क्यो भेज रही हो ?

करुणा ने विरक्त भाव से कहा—इसलिए कि तुम्हारी जाने की इच्छा है। तुम्हारा यह मलिन वेश नही देखा जाता। अपने जीवन के बीस वर्ष तुम्हारी हितकामना पर अर्पित कर दिए, अब तुम्हारी महत्वाकाक्षा की हत्या नही कर सकती। तुम्हारी यात्रा सफल हो, यही हमारी हार्दिक अभिलाषा है।

करुणा का कंठ रुंध गया और कुछ न कह सकी ।

5

प्रकाश उसी दिन से यात्रा की तैयारियाँ करने लगा । करुणा के पास जो कुछ था, वह सब खर्च हो गया । कुछ ऋण भी लेना पड़ा । नये सूट बने, सूट-केस लिए गए । प्रकाश अपनी धुन मे मस्त था । कभी किसी चीज की फरमाइश लेकर आता, कभी किसी चीज की ।

करुणा इस एक सप्ताह मे इतनी दुर्बल हो गयी है, उसके बालो पर कितनी सफेदी आ गई है, चेहरे पर कितनी झुरिया पड गई हैं, यह उसे कुछ न नजर आता । उसकी आँखो मे इंगलैंड के दृश्य समाये हुए थे । महत्वाकांक्षा आंखो पर परदा डाल देती है ।

प्रस्थान का दिन आया । आज कई दिनो के बाद धूप निकली थी । करुणा स्वामी के पुराने कपड़ो को बाहर निकाल रही थी । उनकी गाढे की चादरें, खद्दर के कुरते, पाजामे और लिहाफ अभी तक सन्दूक मे संचित थे । प्रतिवर्ष वे धूप मे सुखाये जाते और झाड-पोंछकर रख दिये जाते थे । करुणा ने आज फिर उन कपडो को निकाला, मगर सुखाकर रखने के लिए नही, गरीबो को बाट देने के लिए । वह आज पति से नाराज है । वह लुटिया, डोर और घडी, जो आदित्य की चिरसंगिनी थी और जिनकी बीस वर्ष से करुणा ने उपासना की थी, आज निकालकर आंगन मे फेंक दी गईं, वह झोली जो बरसो आदित्य के कंधो पर आरूढ रह चुकी थी, आज कूडे मे डाल दी गई, वह चित्र जिसके सामने बीस वर्ष से करुणा सिर झुकाती थी, आज बडी निर्दयता से भूमि पर डाल दिया गया । पति का कोई स्मृति-चिन्ह वह अब अपने घर मे नही रखना चाहती । उसका अन्तःकरण शोक और निराशा से विदीर्ण हो गया है और पति के सिवा वह किस पर क्रोध उतारे ? कौन उसका अपना है ? वह किससे अपनी व्यथा कहे ? किसे अपनी छाती चीरकर दिखाए ? वह होते तो क्या आज प्रकाश दासता की जंजीर गले मे डालकर फूला न समाता ? उसे कौन समझाए कि आदित्य भी इस अवसर पर पछताने के सिवा और कुछ न कर सकते ।

प्रकाश के मित्रो ने आज उसे विदाई का भोज दिया था । वहाँ से वह संध्या समय कई मित्रो के साथ मोटर पर लौटा । सफर का सामान मोटर पर रख दिया गया, तब वह अन्दर आकर मा से बोला—अम्माँ, जाता हूं । बम्बई पहुंच-कर पत्र लिखूंगा । तुम्हे मेरी कसम, रोना मत और मेरे खतो का जवाब बराबर देना ।

जैसे किसी लाश को वाहर निकालते समय सम्बन्धियो का धैर्य छूट जाता है, रुके हुए आँसू निकल पडते हैं और शोक की तरंगें उठने लगती हैं, वही दशा करुणा की हुई। कलेजे मे एक हाहाकार हुआ, जिसने उसकी दुर्वल आत्मा के एक-एक अणु को कपा दिया। मालूम हुआ, पाँव पानी मे फिसल गया है और वह लहरो मे वही जा रही है। उसके मुख से शोक या आशीर्वाद का एक शब्द भी न निकला। प्रकाश ने उसके चरण छुए, अश्रुजल से माता के चरणो को पखारा, फिर वाहर चला। करुणा पाषाण मूर्ति की भाँति खडी थी।

सहसा ग्वाले ने आकर कहा—वहूजी, भइया चले गए। वहुत रोते थे।

तव करुणा की समाधि टूटी। देखा, सामने कोई नही है। घर मे मृत्यु का-सा सन्नाटा छाया हुआ है, और मानो हृदय की गति वन्द हो गई है।

सहसा करुणा की दृष्टि ऊपर उठ गई। उसने देखा कि आदित्य अपनी गोद मे प्रकाश की निर्जीव देह लिए खडे रो रहे हैं। करुणा पछाड़ खाकर गिर पडी।

6

करुणा जीवित थी, पर ससार से उसका कोई नाता न था। उसका छोटा-सा संसार, जिसे उसने अपनी कल्पनाओ के हृदय मे रचा था, स्वप्न की भाँति अनन्त मे विलीन हो गया था। जिस प्रकाश को सामने देखकर वह जीवन की अधेरी रात मे भी हृदय मे आशाओ की सम्पत्ति लिये जी रही थी, वह वुझ गया और सम्पत्ति लुट गई। अव न कोई आश्रय था और न उसकी जरूरत। जिन गउओ को वह दोनो वक्त अपने हाथो से दाना-चारा देती और सहलाती थी, अव खूँटे पर वधी निराश नेत्रो से द्वार की ओर ताकती रहती थी। वछडो को गले लगाकर चुमकारनेवाला अव कोई न था। किसके लिए दूध दुहे, मट्ठा निकाले? खाने वाला कौन था? करुणा ने अपने छोटे-से ससार को अपने ही अन्दर समेट लिया था।

किंतु एक ही सप्ताह मे करुणा के जीवन ने फिर रग वदला। उसका छोटा-सा संसार फैलते-फैलते विश्वव्यापी हो गया। जिस लगर ने नौका को तट से एक केन्द्र पर वाँध रखा था, वह उखड गया। अव नौका सागर के अशेष विस्तार मे भ्रमण करेगी, चाहे वह उद्दाम तरगो के वक्ष मे ही क्यो न विलीन हो जाए।

करुणा द्वार पर आ वैठती और मुहल्ले-भर के लडको को जमा करके दूध पिलाती। दोपहर तक मक्खन निकालती और वह मक्खन मुहल्ले के लडके खाते। फिर भाँति-भाँति के पकवान वनाती और कुत्तो को खिलाती। अव यही उसका नित्य का नियम हो गया। चिडियाँ, कुत्ते, विल्लियाँ चीटे-चीटियाँ सव अपने हो गए। प्रेम का वह द्वार अव किसी के लिए वन्द न था। उस अगुल-

भर जगह मे, जो प्रकाश के लिए भी काफी न थी, अब समस्त ससार समा गया था।

एक दिन प्रकाश का पत्र आया। करुणा ने उसे उठाकर फेंक दिया। फिर थोडी देर के बाद उसे उठाकर फाड डाला और चिडियो को दाना चुगाने लगी, मगर जब निशा-योगिनी ने अपनी धूनी जलायी और वेदनाए उससे वरदान माँगने के लिए विकल हो-होकर चली, तो करुणा की मनोवेदना भी सजग हो उठी—प्रकाश का पत्र पढने के लिए उसका मन व्याकुल हो उठा। उसने सोचा, प्रकाश मेरा कौन है ? मेरा उससे क्या प्रयोजन ? हा, प्रकाश मेरा कौन है ? हृदय ने उत्तर दिया, प्रकाश तेरा सर्वस्व है, वह तेरे उस अमर प्रेम की निशानी है, जिससे तू सदैव के लिए वचित हो गई। वह तेरे प्राणो का प्राण है, तेरे जीवन-दीपक का प्रकाश, तेरी वचित कामनाओ का माधुर्य, तेरे अश्रुजल मे विहार करने वाला हस। करुणा उस पत्र के टुकडो को जमा करने लगी, मानो उसके प्राण बिखर गए हो। एक-एक टुकडा उसे अपने खोये हुए प्रेम का एक-एक पदचिह्न-सा मालूम होता था। जब सारे पुरजे जमा हो गए, तो करुणा दीपक के सामने बैठकर उन्हे जोडने लगी, जैसे कोई वियोगी हृदय प्रेम के टूटे हुए तारो को जोड रहा हो। हाय री ममता ! वह अभागिन सारी रात उन पुरजो को जोडने मे लगी रही। पत्र दोनो ओर लिखा हुआ था, इसलिए पुरजो को ठीक स्थान पर रखना और भी कठिन था। कोई शब्द, कोई वाक्य बीच मे गायब हो जाता। उस एक टुकडे को वह फिर खोजने लगती। सारी रात बीत गई, पर पत्र अभी तक अपूर्ण था।

दिन चढ आया, मुहल्ले के लौडे मक्खन और दूध की चाट मे एकत्र हो गए, कुत्तो और बिल्लियो का आगमन हुआ, चिडियाँ आ-आकर आँगन मे फुदकने लगी, कोई ओखली पर बैठी, कोई तुलसी के चौतरे पर, पर करुणा को सिर उठाने की फुरसत नही।

दोपहर हुआ। करुणा ने सिर न उठाया। न भूख, न प्यास। फिर सध्या हो गई। पर वह पत्र अभी तक अधूरा था। पत्र का आशय समझ मे आ रहा था—प्रकाश का जहाज कही-से-कही जा रहा है। उसके हृदय मे कुछ उठा हुआ है। क्या उठा हुआ है ? पर करुणा न सोच सकी। प्यास से तडपते हुए आदमी की प्यास क्या ओस से बुझ सकती है ? करुणा पुत्र की लेखनी से निकले हुए एक-एक शब्द को पढना और उसे हृदय पर अकित कर लेना चाहती थी।

इस भाँति तीन दिन गुजर गए। सध्या हो गई थी। तीन दिन की जागी आँखें जरा झपक गईं। करुणा ने देखा, एक लम्बा-चौडा कमरा है, उसमे मेजें और कुर्सियाँ लगी हुई हैं, बीच मे एक ऊँचे मच पर कोई आदमी बैठा हुआ है। करुणा ने ध्यान से देखा, प्रकाश था।

एक क्षण में एक कैदी उसके सामने लाया गया, उसके हाथ-पाँव मे जंजीर थी, कमर झुकी हुई, यह आदित्य थे।

करुणा की आँखें खुल गईं, आँसू वहने लगे। उसने पत्र के टुकडो को फिर समेट लिया और उसे जलाकर राख कर डाला। राख की एक चुटकी के सिवा वहाँ कुछ न रहा। यही उस ममता की चिता थी, जो उसके हृदय को विदीर्ण किए डालती थी। इसी एक चुटकी राख मे उसका गुडियो वाला वचपन, उसका सतप्त यौवन और उसका तृष्णामय वैधव्य सव समा गया।

प्रात.काल लोगो ने देखा, पक्षी पिंजडे से उड चुका था। आदित्य का चित्र अव भी उसके शून्य हृदय से चिपटा हुआ था। वह भग्नहृदय पति की स्नेह-स्मृति मे विश्राम कर रहा था और प्रकाश का जहाज योरप चला जा रहा था।

बेटोंवाली विधवा

१

पण्डित अयोध्यानाथ का देहान्त हुआ तो सबने कहा, ईश्वर आदमी को ऐसी ही मौत दे। चार जवान बेटे थे, एक लडकी। चारो लडको के विवाह हो चुके थे, केवल लडी क्वाँरी थी। सम्पत्ति भी काफी छोडी थी। एक पक्का मकान, दो बगीचे, कई हजार के गहने और बीस हजार नकद। विधवा फूलमती को शोक तो हुआ और कई दिन तक बेहाल पडी रही, लेकिन जवान बेटो को सामने देखकर उसे ढाढस हुआ। चारो लडके एक-से-एक सुशील, चारो बहुएँ एक-से-एक बढकर आज्ञाकारिणी। जब वह रात को लेटती, तो चारो बारी-बारी से उसके पाँव दबाती, वह स्नान करके उठती, तो उसकी साडी छाँटती। सारा घर उसके इशारे पर चलता था। बडा लडका कामता एक दफ्तर मे ५० रु० पर नौकर था, छोटा उमानाथ डाक्टरी पास कर चुका था और कही औषधालय खोलने की फिक्र मे था, तीसरा दयानाथ बी० ए० मे फेल हो गया था और पत्रिकाओ मे लेख लिखकर कुछ-न-कुछ कमा लेता था, चौथा सीतानाथ चारो मे सबसे कुशाग्र और होनहार था और अबकी साल बी० ए० प्रथम श्रेणी मे पास करके एम० ए० की तैयारी मे लगा हुआ था। किसी लडके मे वह दुर्व्यसन, वह छैलापन, वह लुटाउपन न था, जो माता-पिता को जलाता और कुल-मर्यादा को डुबाता है। फूलमती घर की मालकिन थी। गोकि कुजियाँ बडी बहू के पास रहती थी—बुढिया मे वह अधिकार-प्रेम न था, जो वृद्धजनो को कटु और कलहशील बना दिया करता है, किन्तु उसकी इच्छा के बिना कोई बालक मिठाई तक न मँगा सकता था।

संध्या हो गई थी। पंडित को मरे आज बारहवाँ दिन था। कल तेरही है। ब्रह्मभोज होगा। बिरादरी के लोग निमन्त्रित होगे। उसी की तैयारियाँ हो रही थी। फूलमती अपनी कोठरी मे बैठी देख रही थी, पल्लेदार बोरे मे आटा लाकर रख रहे हैं। घी के टिन आ रहे हैं। शाक-भाजी के टोकरे, शक्कर की बोरियाँ, दही के मटके चले आ रहे हैं। महापात्र के लिए दान की चीजें लाई गई—बरतन, कपड़े, पलंग, बिछावन, छाते, जूते, छड़ियाँ लालटेनें आदि, किन्तु फूल-

मती को कोई चीज नही दिखाई गई। नियमानुसार ये सब सामान उसके पास आने चाहिए थे। वह प्रत्येक वस्तु को देखती, उसे पसद करती, उसकी मात्रा मे कमी-वेशी का फैसला करती, तव इन चीजो को भडार मे रखा जाता। क्यो उसे दिखाने और उसकी राय लेने की जरूरत नही समझी गई? अच्छा! वह आटा तीन ही बोरा क्यो आया? उसने तो पाँच वोरो के लिए कहा था। घी भी पाँच ही कनस्तरी है। उसने तो दस कनस्तर मँगवाए थे। इसी तरह शाक-भाजी, शक्कर, दही आदि मे भी कमी की गई होगी। किसने उसके हुक्म मे हस्तक्षेप किया? जव उसने एक वात तय कर दी, तव किसे उसको घटाने-वढाने का अधिकार है?

आज चालीस वर्षो से घर के प्रत्येक मामले मे फूलमती की वात सर्वमान्य थी। उसने सौ कहा तो सौ खर्च किए गए, एक कहा तो एक। किसी ने मीनमेष न की। यहाँ तक की प० अयोध्यानाथ भी उसकी इच्छा के विरुद्ध कुछ न करते थे; पर आज उसकी आँखो के सामने प्रत्यक्ष रूप से उसके हुक्म की उपेक्षा की जा रही है! इसे वह क्योकर स्वीकार कर सकती?

कुछ देर तक तो वह जव्त किए वैठी रही, पर अन्त मे न रहा गया। स्वायत्त शासन उसका स्वभाव हो गया था। वह क्रोध मे भरी हुई आयी और कामतानाथ से बोली— क्या आटा तीन ही बोरे लाये? मैंने तो पाँच वोरो के लिए कहा था। और घी भी पाँच ही टिन मँगवाया! तुम्हे याद है, मैंने दस कनस्तर कहा था? किफायत को मैं बुरा नही समझती, लेकिन जिसने यह कुआँ खोदा, उसी की आत्मा पानी को तरसे, यह कितनी लज्जा की बात है!

कामतानाथ ने क्षमा-याचना न की, अपनी भूल भी स्वीकार न की, लज्जित भी नही हुआ। एक मिनट तो विद्रोही भाव से खडा रहा, फिर वोला—हम लोगो की सलाह तीन ही वोरो की हुई और तीन वोरे के लिए पाँच टिन घी काफी था। इसी हिसाव से और चीजें भी कम कर दी गई हैं।

फूलमती उग्र होकर बोली—किसकी राय से आटा कम किया गया?

'हम लोगो की राय से।'

'तो मेरी राय कोई चीज नही है?"

'है क्यो नही; लेकिन अपना हानि-लाभ तो हम भी समझते हैं।'

फूलमती हक्का-वक्का होकर उसका मुह ताकने लगी। इस वाक्य का आशय उसकी समझ मे न आया। अपना हानि-लाभ! अपने घर मे हानि-लाभ की जिम्मेदार वह आप है। दूसरो को, चाहे वे उसके पेट के जन्मे पुत्र ही क्यो न हो, उसके कामो मे हस्तक्षेप करने का क्या अधिकार? यह लौडा तो इस ढिठाई से जवाव दे रहा है, मानो घर उसी का है, उसी ने मर-मरकर गृहस्थी जोडी है, मैं तो गैर हूँ! जरा इसकी हेकडी तो देखो!

उसने तमतमाए हुए मुख से कहा—मेरे हानि-लाभ के जिम्मेदार तुम नही हो। मुझे अख्तियार है, जो उचित समझू, वह करूँ। अभी जाकर दो बोरे आटा और पाँच टिन घी और लाओ और आगे के लिए खबरदार, जो किसी ने मेरी बात काटी।

अपने विचार मे उसने काफी तम्बीह कर दी थी। शायद इतनी कठोरता अनावश्यक थी। उसे अपनी उग्रता पर खेद हुआ। लडके ही तो हैं, समझे होगे कुछ किफायत करनी चाहिए। मुझसे इसलिए न पूछा होगा कि अम्माँ तो खुद हरेक काम मे किफायत करती है। अगर इन्हे मालूम होता कि इस काम मे मैं किफायत पसद न करूँगी, तो कभी इन्हे मेरी उपेक्षा करने का साहस न होता। यद्यपि कामतानाथ अब भी उसी जगह खडा था और उसकी भावभगी से ऐसा ज्ञात होता था कि इस आज्ञा का पालन करने के लिए वह बहुत उत्सुक नही, पर फूलमती निश्चित होकर अपनी कोठरी मे चली गई। इतनी तम्बीह पर भी किसी को अवज्ञा करने की सामर्थ्य हो सकती है, इसकी सम्भावना का ध्यान भी उसे न आया।

पर ज्यो-ज्यो समय बीतने लगा, उस पर यह हकीकत खुलने लगी कि इस घर मे अब उसकी वह हैसियत नही रही, जो दस-बारह दिन पहले थी। सबधियो के यहाँ से नेवते मे शक्कर, मिठाई, दही, अचार आदि आ रहे थे। बडी बहू इन वस्तुओ को स्वामिनी-भाव से सँभाल-सँभालकर रख रही थी। कोई भी उससे पूछने नही आता। बिरादरी के लोग जो कुछ पूछते है, कामतानाथ से या बडी बहू से। कामतानाथ कहाँ का बडा इतजामकार है, रात-दिन भंग पिये पडा रहता है। किसी तरह रो-धोकर दफ्तर चला जाता है। उसमे भी महीने मे पंद्रह नागो से कम नही होते। वह तो कहो, साहब पडितजी का लिहाज करता है, नही अब तक कभी का निकाल देता। और बडी बहू जैसी फूहड औरत भला इन बातो को क्या समझेगी! अपने कपडे-लत्ते तक तो जतन मे रख नही सकती, चली है गृहस्थी चलाने! भद होगी और क्या। सब मिलकर कुल की नाक कटवाएँगे। वक्त पर कोई चीज़ तो इतनी बन जायगी कि मारी-मारी फिरेगी। कोई चीज़ इतनी कम बनेगी कि किसी पत्तल पर पहुँचेगी, किसी पर नही। आखिर इन सबो को हो क्या गया है! अच्छा, बहू तिजोरी क्यो खोल रही है? वह मेरी आज्ञा के बिना तिजोरी खोलनेवाली कौन होती है? कुजी उनके पास है अवश्य, लेकिन जब मैं रुपये न निकलवाऊँ, तिजोरी नही खुलती। आज तो इस तरह खोल रही है, मानो मैं कुछ हू ही नही। यह मुझसे न बर्दाश्त होगा!

वह झमककर उठी और बडी बहू के पास जाकर कठोर स्वर मे बोली—तिजोरी क्यो खोलती हो बहू, मैंने तो खोलने को नही कहा?

बडी बहू ने निस्संकोच भाव से उत्तर दिया— बाजार से सामान आया है, तो

दाम न दिया जायगा ?

'कौन चीज किस भाव से आई है और कितनी आई है, यह मुझे कुछ नही मालूम ! जब तक हिसाब-किताब न हो जाय, रूपये कैसे दिये जायँ ?"

'हिसाब-किताब सब हो गया है।'

'किसने किया ?'

अब मैं क्या जानूँ किसने किया ? जाकर मरदो से पूछो ! मुझे हुक्म मिला, रुपये लाकर दे दो, रुपये लिये जाती हूँ।'

फूलमती खून का घूंट पीकर रह गई। इस वक्त बिगडने का अवसर न था। घर मे मेहमान स्त्री-पुरुष भरे हुए थे। अगर इस वक्त उसने लडको को डाँटा, तो लोग यही कहेगे कि इनके घर मे पंडितजी के मरते ही फूट पड गई। दिल पर पत्थर रखकर फिर अपनी कोठरी मे चली आयी। जब मेहमान विदा हो जायँगे, तब वह एक-एक की खबर लेगी। तब देखेगी, कौन उसके सामने आता है और क्या कहता है। इनकी सारी चौकड़ी भुला देगी।

किन्तु कोठरी के एकात मे भी वह निश्चिन्त न बैठी थी। सारी परिस्थिति को गिद्ध दृष्टि से देख रही थी, कहाँ सत्कार का कौन-सा नियम भंग होता है, कहाँ मर्यादाओ की उपेक्षा की जाती है। भोज आरम्भ हो गया। सारी बिरादरी एक साथ पगत मे बैठा दी गई। आँगन मे मुश्किल से दो सौ आदमी बैठ सकते हैं। ये पाँच सौ आदमी इतनी-सी जगह मे कैसे बैठ जायँगे ? क्या आदमी के ऊपर आदमी बिठाए जायँगे ? दो पगतो मे लोग बिठाए जाते तो क्या बुराई हो जाती ? यही तो होता कि बारह बजे की जगह भोज दो बजे समाप्त होता, मगर यहाँ तो सबको सोने की जल्दी पडी हुई है। किसी तरह यह बला सिर से टले और चैन से सोएँ ! लोग कितने सटकर बैठे हुए हैं कि किसी को हिलने की भी जगह नही। पत्तल एक-पर-एक रखे हुए हैं। पूरियाँ ठडी हो गई। लोग गरम-गरम माँग रहे हैं। मैदे की पूरिया ठडी होकर चिमड़ी हो जाती है। इन्हे कौन खाएगा ? रसोइए को कढाव पर से न जाने क्यो उठा दिया गया ? यही सब बातें नाक काटने की हैं।

सहसा शोर मचा, तरकारियो मे नमक नही। बडी बहू जल्दी-जल्दी नमक पीसने लगी। फूलमती क्रोध के मारे ओठ चबा रही थी, पर इस अवसर पर मुह न खोल सकती थी। बारे नमक पिसा और पत्तलो पर डाला गया। इतने मे फिर शोर मचा—पानी गरम है, ठडा पानी लाओ ! ठडे पानी का कोई प्रबन्ध न था, बर्फ भी न मँगाई गई। आदमी बाजार दौडाया गया, मगर बाजार मे इतनी रात गए बर्फ कहाँ ? आदमी खाली हाथ लौट आया। मेहमानो को वही नल का गरम पानी पीना पडा। फूलमती का बस चलता, तो लड़को का मुह नोच लेती। ऐसी छीछालेदर उसके घर मे कभी न हुई थी। उस पर सब मालिक

बनने के लिए मरते है । वर्फ जैसी जरूरी चीज मँगवाने की भी किसी को सुधि न थी ! सुधि कहाँ से रहे ? जब किसी को गप लडाने से फुर्सत मिले । मेहमान अपने दिल मे क्या कहेगे कि चले हैं विरादरी को भोज देने और घर मे वर्फ तक नही ।

अच्छा, फिर यह हलचल क्यो मच गई । अरे, लोग पंगत से उठे जा रहे हैं । क्या मामला है ?

फूलमती उदासीन न रह सकी । कोठरी से निकलकर वरामदे मे आयी और कामतानथ से पूछा—क्या वात हो गई लल्ला ? लोग उठे क्यो जा रहे हैं ? कामता ने कोई जवाव न दिया । वहा से खिसक गया । फूलमती झुझलाकर रह गई । सहसा कहारिन मिल गई । फूलमती ने उससे भी वह प्रश्न किया । मालूम हुआ, किसी के शोरवे मे मरी हुई चुहिया निकल आई । फूलमती चित्रलिखित-सी वही खडी रह गई । भीतर ऐसा उवाल उठा कि दीवार से सिर टकरा ले ? अभागे भोज का प्रवन्ध करने चले थे। इस फूहडपन की कोई हद है। कितने आदमियो का धर्म सत्यानाश हो गया ! फिर पगत क्यो न उठ जाए ? आँखो से देखकर अपना धर्म कौन गँवाएगा ? हा ! सारा किया-धरा मिट्टी मे मिल गया ! सैकडो रुपये पर पानी फिर गया ! वदनामी हुई वह अलग ।

मेहमान उठ चुके थे । पत्तलो पर खाना ज्यो-का-त्यो पडा हुआ था । चारो लडके आगन मे लज्जित खडे थे । एक दूसरे को इल्जाम दे रहा था । वडी वहू अपनी देवरानियो पर विगड रही थी । देवरानियाँ सारा दोप कुमुद के सिर डालती थी । कुमुद खड़ी रो रही थी। उसी वक्त फूलमती झल्लाई हुई आकर वोली—मुह मे कालिख लगी कि नही या अभी कुछ कसर वाकी है ? डूव मरो, सव-के-सव जाकर चिल्लू-भर पानी मे ? शहर मे कही मुह दिखाने लायक भी नही रहे ।

किसी लडके ने जवाव न दिया ।

फूलमती और भी प्रचड होकर वोली—तुम लोगो को क्या ? किसी को शर्म-हया तो है नही । आत्मा तो उनकी रो रही है, जिन्होंने अपनी जिन्दगी घर की मरजाद वनाने मे खराव कर दी। उनकी पवित्र आत्मा को तुमने यो कलकित किया । शहर मे थुडी-थुडी हो रही है । अव कोई तुम्हारे द्वार पर पेशाव करने तो आएगा नही !

कामतानाथ कुछ देर तक तो चुपचाप खडा सुनता रहा । आखिर झुझला कर वोला—अच्छा, अव चुप रहो अम्माँ । भूल हुई, हम सव मानते हैं, वडी भयकर भूल हुई, लेकिन अव क्या उसके लिए घर के प्राणियो को हलाल कर डालोगी ? सभी से भूलें होती हैं। आदमी पछताकर रह जाता है । किसी की जान तो नही मारी जाती ?

बडी वहू ने अपनी सफाई दी—हम क्या जानते थे कि बीवी (कुमुद) से इतना-सा काम भी न होगा। इन्हे चाहिए था कि देखकर तरकारी कढाव मे डालती। टोकरी उठाकर कढाव मे डाल दी ! हमारा क्या दोष।

कामतानाथ ने पत्नी को डाँटा—इसमे न कुमुद का कसूर है, न तुम्हारा, न मेरा। सयोग की वात है। वदनामी भाग मे लिखी थी, वह हुई। इतने बडे भोज मे एक-एक मुट्ठी तरकारी कढाव मे नही डाली जाती ! टोकरे-के-टोकरे उँडेल दिए जाते हैं। कभी-कभी ऐसी दुर्घटना होती है। पर इसमे कैसी जग-हँसाई और कैसी नाक-कटाई। तुम खामखाह जले पर नमक छिडकती हो !

फूलमती ने दात पीसकर कहा—शरमाते तो नही, उलटे और वेहयाई की बातें करते हो।

कामतानाथ ने नि सकोच होकर कहा—शरमाऊँ क्यो, किसी की चोरी की है ? चीनी मे चीटे और आटे मे घुन, यह नही देखे जाते। पहले हमारी निगाह न पडी, वस यही बात बिगड गई। नही, चुपके से चुहिया निकालकर फेंक देते। किसी को खवर भी न होती।

फूलमती ने चकित होकर कहा—क्या कहता है, मरी चुहिया खिलाकर सबका धर्म विगाड देता ?

कामता हँसकर बोला—क्या पुराने जमाने की वात करती हो अम्माँ ? इन बातो से धर्म नही जाता ? यह धर्मात्मा लोग जो पत्तल पर से उठ गए है, इनमे ऐसा कौन है, जो भेड-वकरी का मास न खाता हो ? तालाव के कछुए और घोंघे तक तो किसी से वचते नही। जरा सी चुहिया मे क्या रखा था।

फूलमती को ऐसा प्रतीत हुआ कि अव प्रलय आने मे वहुत देर नही है। जब पढे-लिखे आदमियो के मन मे ऐसे अधार्मिक भाव आने लगे, तो फिर धर्म की भगवान ही रक्षा करें। अपना-सा मुँह लेकर चली गयी।

2

दो महीने गुजर गए हैं। रात का समय है। चारो भाई दिन के काम से छुट्टी पाकर कमरे मे वैठे गप-शप कर रहे है। वडी वहू भी षड्यन्त्र मे शरीक हैं। कुमुद के विवाह का प्रश्न छिडा हुआ है।

कामतानाथ ने मसनद पर टेक लगाते हुए कहा—दादा की वात दादा के साथ गई। मुरारी पडित विद्वान् भी है और कुलीन भी होगे। लेकिन जो आदमी अपनी विद्या और कुलीनता को रुपयो पर वेचे, वह नीच है। ऐसे नीच आदमी के लडके से हम कुमुद का विवाह सेत मे भी न करेंगे, पाँच हजार तो दूर की बात है। उसे वताओ धता और किसी दूसरे वर की तलाश करो। हमारे पास

कुल वीस हजार ही तो हैं। एक-एक हिस्से मे पाँच-पाँच हजार आने हैं। पाच हजार दहेज मे दे दें, और पाँच हजार नेग-न्यौछावर, वाजे-गाजे मे उडा दें, तो फिर हमारी वधिया ही वैठ जाएगी।

उमानाथ वोले—मुझे अपना औपधालय खोलने लिए कम-से-कम पाच हजार की जरूरत है। मैं अपने हिस्से मे से एक पाई भी नही दे सकता। फिर खुलते ही आमदनी तो होगी नही। कम-से-कम साल भर घर से खाना पडेगा।

दयानाथ एक समाचार-पत्र देख रहे थे। आंखो से ऐनक उतारते हुए बोले—मेरा विचार भी एक पत्र निकलने का है। प्रेस और पत्र मे कम-से-कम दस हजार का कैपिटल चाहिए। पाच हजार मेरे रहेंगे तो कोई-न-कोई साझेदार भी मिल जाएगा। पत्रो मे लेख लिखकर मेरा निर्वाह नही हो सकता।

कामतानाथ ने सिर हिलाते हुए कहा—अजी, राम भजो, सेंत मे कोई लेख छापता नही, रुपये कौन देता है।

दयानाथ ने प्रतिवाद किया—नही, यह वात तो नही है। मैं तो कही भी विना पेशगी पुरस्कार लिये नही लिखता।

कामता ने जैसे अपने शब्द वापस लिये—तुम्हारी वात मैं नही कहता भाई। तुम तो थोडा-वहुत मार लेते हो, लेकिन सवको तो नही मिलता।

वडी वहू ने श्रद्धा भाव से कहा—कन्या भाग्यवान् हो, तो दरिद्र घर मे भी सुखी रह सकती है। अभागी हो, तो राजा के घर मे भी रोएगी। ये सव नसीवो का खेल है।

कामतानाथ ने स्त्री की ओर प्रशसा-भाव से देखा—फिर इसी साल हमें सीता का विवाह भी तो करना है।

सीतानाथ सवसे छोटा था। सिर झुकाए भाइयो की स्वार्थ-भरी वातें सुन-सुनकर कुछ कहने के लिए उतावला हो रहा था अपना नाम सुनते ही वोला—मेरे विवाह की आप लोग चिन्ता न करे। मैं जव तक किसी धन्धे मे न लग जाऊँगा, विवाह नाम भी न लूंगा, और सच पूछिए तो मैं विवाह करना ही नहीं चाहता। देश को इस समय वालको की जरूरत नही, काम करने वालो की जरूरत है। मेरे हिस्से के रुपये आप कुमद के विवाह मे खर्च कर दें। सारी वातें तय हो जाने के वाद यह उचित नही है कि पडित मुरारीलाल से सम्वन्ध तोड लिया जाए।

उमा ने तीव्र स्वर मे कहा—दस हजार कहाँ से आएँगे ?

सीता ने डरते हुए कहा—मैं तो अपने हिस्से के रुपये देने को कहता हूँ।

'और शेष ?'

मुरारीलाल से कहा जाए कि दहेज में कुछ कमी कर दें। वह इतने स्वार्थान्ध नही हैं कि इस अवसर पर कुछ वल खाने को तैयार न हो जाएँ; अगर वह तीन हजार मे सन्तुष्ट हो जाएँ, तो पाँच हजार मे विवाह हो सकता है।

उमा ने कामतानाथ से कहा—सुनते हैं भाई साहव, इसकी वातें।

दयानाथ वोल उठे—तो इसमे आप लोगो का क्या नुकसान है ? यह अपने रुपये दे रहे हैं, खर्च कीजिए। मुरारी पडित से हमारा कोई वैर नही है। मुझे तो इस वात से खुशी हो रही है कि भला, हममे कोई तो त्याग करने योग्य है। इन्हें तत्काल रुपये की जरूरत नही है। सरकार से वजीफा पाते ही है। पास होने पर कही-न-कही जगह मिल जाएगी। हम लोगो की हालत तो ऐसी नही है।

कामतानाथ ने दूरदर्शिता का परिचय दिया—नुकसान की ही कही हममे से एक को कष्ट हो तो क्या और लोग वैठे देखेंगे ? यह अभी लडके हैं, इन्हे क्या मालूम, समय पर एक रुपया एक लाख का काम करता है। कौन जानता है, कल इन्हें विलायत जाकर पढने के लिए सरकारी वजीफा मिल जाए या सिविल सर्विस मे आ जाएँ। उस वक्त सफर की तैयारियो मे चार-पाँच हजार लग जाएगे। तव किसके सामने हाथ फैलाते फिरेंगे ? मैं यह नही चाहता कि दहेज के पीछे इनकी जिन्दगी नष्ट हो जाए।

इस तर्क ने सीतानाथ को भी तोड लिया। सकुचाता हुआ वोला—हाँ, यदि ऐसा हुआ तो वेशक मुझे रुपये की जरूरत होगी।

'क्या ऐसा होना असम्भव है ?'

'असम्भव तो मैं नही समझता, लेकिन कठिन अवश्य है। वजीफे उन्हे मिलते हैं, जिनके पास सिफारिशे होती हैं, मुझे कौन पूछता है।'

'कभी-कभी सिफारिशें धरी रह जाती हैं और विना सिफारिश वाले वाजी मार ले जाते हैं।'

'तो आप जैसा उचित समझें। मुझे यहाँ तक मंजूर है कि चाहे मैं विलायत न जाऊँ, पर कुमुद अच्छे घर जाए।'

कामतानाथ ने निष्ठा-भाव से कहा—अच्छा घर दहेज देने से ही नही मिलता भैया ! जैसा तुम्हारी भाभी ने कहा, यह नसीवो का खेल है। मैं तो चाहता हूँ कि मुरारीलाल को जवाव दे दिया जाए और कोई ऐसा घर खोजा जाए, जो थोड़े मे राजी हो जाए। विवाह मे मैं एक हजार से ज्यादा नही खर्च कर सकता। पंडित दीनदयाल कैसे हैं ?

उमा ने प्रसन्न होकर कहा—वहुत अच्छे। एम० ए०, वी० ए० न सही, यजमानो से अच्छी आमदनी है।

दयानाथ ने आपत्ति की—अम्माँ से भी तो पूछ लेना चाहिए।

कामतानाथ को इसकी कोई जरूरत न मालूम हुई। बोले—उनकी तो जैसे बुद्धि ही भ्रष्ट हो गई। वही पुराने युग की बातें। मुरारी के नाम पर उधार खाए बैठी हैं। यह नही समझतीं कि वह जमाना नही रहा। उनको तो बस, कुमुद मुरारी पंडित के घर जाए, चाहे हम लोग तबाह हो जाएँ।

उमा ने एक शका उपस्थित की—अम्माँ अपने सब गहने कुमुद को दे देंगी, देख लीजिएगा।

कामतानाथ का स्वार्थ नीति से विद्रोह न कर सका। बोले—गहनों पर उनका पूरा अधिकार है। उनका स्त्रीधन है। जिसे चाहें, दे सकती हैं।

उमा ने कहा—स्त्रीधन है तो क्या वह उसे लुटा देंगी। आखिर वह भी तो दादा ही की कमाई है।

'किसी की कमाई हो। स्त्रीधन पर उनका पूरा अधिकार है।'

'यह कानूनी गोरखधधे है। बीस हजार मे तो चार हिस्सेदार हो और दस हजार के गहने अम्माँ-के पास रह जाएँ। देख लेना, इन्ही के बल पर वह कुमुद का विवाह मुरारी पंडित के घर करेंगी।'

उमानाथ इतनी बडी रकम को इतनी आसानी से नही छोड सकता। वह कपट-नीति मे कुशल है। कोई कौशल रचकर माता से सारे गहने ले लेगा। उस वक्त तक कुमुद के विवाह की चर्चा करके फूलमती को भडकाना उचित नही। कामतानाथ ने सिर हिलाकर कहा—भाई, मैं इन चालो को पसद नही करता।

उमानाथ ने खिसियाकर कहा—गहने दस हजार से कम न होंगे।

कामता अविचलित स्वर मे बोले—कितने ही के हो, मैं अनीति मे हाथ नही डालना चाहता।

'तो आप अलग बैठिए। हाँ, बीच मे भाँजी न मारिएगा।'

'मै अलग रहूंगा।'

'और तुम सीता ?'

'अलग रहूँगा।'

लेकिन जब दयानाथ से यही प्रश्न किया गया तो वह उमानाथ से सहयोग करने को तैयार हो गया। दस हजार मे ढाई हजार तो उसके होंगे ही। इतनी बड़ी रकम के लिए यदि कुछ कौशल भी करना पडे तो क्षम्य है।

3

फूलमती रात को भोजन करके लेटी थी कि उमा और दया उसके पास जा

कर वैठ गए। दोनो ऐसा मुँह वनाए हुए थे, मानो कोई भारी विपत्ति आ पडी हैं। फूलमती ने सशंक होकर पूछा—तुम दोनो घवडाए हुए मालूम होते हो ?

उमा ने सिर खुजलाते हुए कहा—समाचार-पत्रो मे लेख लिखना वडे जोखिम का काम है अम्माँ ! कितना ही वचकर लिखो, लेकिन कही-कही पकड हो जाती है। दयानाथ ने एक लेख लिखा था। उस पर पाँच हजार की जमानत माँगी गई है। अगर कल तक जमानत न जमा कर दी गई, तो गिरफ्तार हो जागगे और दस साल की सजा ठुक जाएगी।

फूलमती ने सिर पीटकर कहा—तो ऐसी वाते क्यो लिखते हो वेटा? जानते नही हो, आजकल हमारे अदिन आए हुए हैं। जमानत किसी तरह टल नही सकती ?

दयानाथ ने अपराधी-भाव से उत्तर दिया—मैंने तो अम्माँ, ऐसी कोई वात नही लिखी थी; लेकिन किस्मत को क्या करु। हाकिम जिला इतना कडा है कि जरा भी रियायत नही करता। मैंने जितनी दौड-धूप हो सकती थी, वह सव कर ली।

'तो तुमने कामता से रुपये का प्रवन्ध करने को नहीं कहा ?'

उमा ने मुह वनाया—उनका स्वभाव तो तुम जानती हो अम्माँ, उन्हे रुपये प्राणो से प्यारे हैं। इन्हे चाहे कालापानी ही हो जाए, वह एक पाई न देंगे।

दयानाथ ने समर्थन किया—मैंने तो उनसे इसका जिक्र ही नही किया।

फूलमती ने चारपाई से उठते हुए कहा—चलो, मैं कहती हूँ, देगा कैसे नही ? रुपये इसी दिन के लिए होते है कि गाडकर रखने के लिए ?

उमानाथ ने माता को रोककर कहा—नही अम्मा, उनसे कुछ न कहो। रुपये तो न देंगे, उलटे और हाय-हाय मचाएँगे। उनको अपनी नौकरी की खैरियत मनानी है, इन्हे घर मे रहने भी न देंगे। अफसरो मे जाकर खबर दे दें तो आश्चर्य नही।

फूलमती ने लाचार होकर कहा—तो फिर जमानत का क्या प्रवन्ध करोगे ? मेरे पास कुछ नही है। हाँ, मेरे गहने है, इन्हें ले जाओ, कही गिरो रखकर जमानत दे दो। और आज से कान पकडो कि किसी पत्र मे एक शव्द भी न लिखोगे।

दयानाथ कानो पर हाथ रखकर वोला—यह तो नही हो सकता अम्मा कि तुम्हारे जेवर लेकर मैं अपनी जान वचाऊँ। दस-पाँच साल की कैद ही तो होगी, झेल लूंगा। यहीं वैठा-वैठा क्या कर रहा हूँ।

फलमती छाती पीटते हुए वोली—कैसी वातें मुँह से निकालते हो वेटा,

मेरे जीते-जी तुम्हे कौन गिरफ्तार कर सकता है ! उसका मुंह झुलस दूंगी। गहने इसी दिन के लिए हैं या और किसी दिन के लिए। जव तुम्ही न रहोगे, तो गहने लेकर क्या आग मे झोकूगी !

उसने पिटारी लाकर उसके सामने रख दी।

दया ने उमा की ओर जैसे फरियाद की आँखो से देखा और वोला—आपकी क्या राय है भाई साहव ? इसी मारे मैं कहता था, अम्मा को जताने की जरूरत नही। जेल ही तो हो जाती या और कुछ ?

उमा ने जैसे सिफारिश करते हुए कहा—यह कैसे हो सकता था कि इतनी वडी वारदात हो जाती और अम्मा को खवर न होती। मुझसे यह नही हो सकता था कि सुनकर पेट मे डाल लेता, मगर अव करना क्या चाहिए, यह मैं खुद निर्णय नही कर सकता। न तो यही अच्छा लगता है कि तुम जेल जाओ और न यही अच्छा लगता है कि अम्माँ के गहने गिरो रखे जाएँ।

फूलमती ने व्यथित कठ से पूछा—क्या तुम समझते हो, मुझे गहने तुमसे ज्यादा प्यारे हैं ? मैं तो अपने प्राण तक तुम्हारे ऊपर न्योछावर कर दूं, गहनो की विसात ही क्या है।

दया ने दृढता से कहा—अम्मा, तुम्हारे गहने तो न लूंगा, चाहे मुझ पर कुछ ही क्यो न आ पडे। जव आज तक तुम्हारी कुछ सेवा न कर सका, तो किस मुँह से तुम्हारे गहने उठा ले जाऊँ ? मुझ जैसे कपूत को तो तुम्हारी कोख से जन्म ही न लेना चाहिए था। सदा तुम्हे कष्ट देता रहा।

फूलमती ने भी उतनी ही दृढता से कहा—अगर यो न लोगे, मैं खुद जाकर इन्हे गिरो रख दूंगी और खुद हाकिम जिला के पास जाकर जमानत जमा कर आऊँगी, अगर इच्छा हो तो यह परीक्षा भी ले लो। आँखें वन्द हो जाने के वाद क्या होगा, भगवान् जाने, लेकिन जव तक जीती हूँ, तुम्हारी ओर कोई तिरछी आखो से देख नही सकता।

उमानाथ ने मानो माता पर एहसान रखकर कहा—अव तो तुम्हारे लिए कोई रास्ता नही रहा दयानाथ। क्या हरज है, ले लो, मगर याद रखो, ज्यो ही हाथ मे रुपये आ जाएँ, गहने छुडाने पडेंगे। सच कहते हैं, मातृत्व दीर्घ तपस्या है। माता के सिवाय इतना स्नेह और कौन कर सकता है ? हम वडे अभागे है कि माता के प्रति जितनी श्रद्धा रखनी चाहिए, उसका शताश भी नही रखते।

दोनो ने जैसे वडे धर्मसकट मे पडकर गहनो की पिटारी सँभाली और चलते वने। माता वात्सल्य-भरी आँखो से उनकी ओर देख रही थी और उसकी सपूर्ण आत्मा का आशीर्वाद जैसे उन्हे अपनी गोद मे समेट लेने के लिए व्याकुल हो रहा था। आज कई महीने वाद उसके भग्न-मातृ-हृदय को अपना सर्वस्व अर्पण

करके जैसे आनन्द की विभूति मिली। उसकी स्वामिनी कल्पना इसी त्याग के लिए, इसी आत्मसमर्पण के लिए जैसे कोई मार्ग ढूंढती रहती थी। अधिकार या लोभ या ममता की वहाँ गंध तक न थी। त्याग ही उसका आनन्द और त्याग ही उसका अधिकार है। आज अपना खोया हुआ अधिकार पाकर अपनी सिरजी हुई प्रतिमा पर अपने प्राणो की भेंट करके वह निहाल हो गई।

4

तीन महीने और गुजर गए। माँ के गहनो पर हाथ साफ करके चारो भाई उसकी दिलजोई करने लगे थे। अपनी स्त्रियो को भी समझाते थे कि उसका दिल न दुखाएँ। अगर थोडे से शिष्टाचार से उसकी आत्मा को शांति मिलती है, तो इसमे क्या हानि है। चारो करते अपने मन की, पर माता से सलाह ले लेते या ऐसा जाल फैलाते कि वह सरला उनकी बातो मे आ जाती और हरेक काम मे सहमत हो जाती। बाग को बेचना उसे बहुत बुरा लगता था, लेकिन चारो ने ऐसी माया रची कि वह उसे बेचने पर राजी हो गई, किन्तु कुमुद के विवाह के विषय मे मतैक्य न हो सका। माँ प० मुरारीलाल पर जमी हुई थी, लडके दीनदयाल पर अडे हुए थे। एक दिन आपस मे कलह हो गया।

फूलमती ने कहा—माँ-बाप की कमाई मे बेटी का हिस्सा भी है। तुम्हे सोलह हजार का एक बाग मिला, पच्चीस हजार का एक मकान। बीस हजार नकद मे क्या, पाँच हजार भी कुमुद का हिस्सा नही है?

कामता ने नम्रता से कहा—अम्माँ, कुमुद आपकी लडकी है, तो हमारी बहिन है। आप दो-चार साल मे प्रस्थान कर जाएँगी, पर हमारा और उसका बहुत दिनो तक सम्बन्ध रहेगा। तब हम यथाशक्ति कोई ऐसी बात न करेंगे, जिससे उसका अमंगल हो, लेकिन हिस्से की बात कहती हो, तो कुमुद का हिस्सा कुछ नही। दादा जीवित थे, तब और बात थी। वह उसके विवाह मे जितना चाहते, खर्च करते। कोई उनका हाथ न पकड सकता था, लेकिन अब तो हमे एक-एक पैसे की किफायत करनी पडेगी। जो काम एक हजार मे हो जाए, उसके लिए पाँच हजार खर्च करना कहाँ की बुद्धिमानी है?

उमानाथ ने सुधारा—पाँच हजार क्यो, दस हजार कहिए।

कामता ने भवें सिकोडकर कहा—नही, मैं पाँच हजार ही कहूँगा, एक विवाह मे पाच हजार खर्च करने की हमारी हैसियत नही है।

फूलमती ने जिद पकडकर कहा—विवाह तो मुरारीलाल के पुत्र से ही होगा, पाँच हजार खर्च, चाहे दस हजार। मेरे पति की कमाई है। मैंने मर-मरकर जोडा है। अपनी इच्छा से खर्च करूँगी। तुम्ही ने मेरी कोख से जन्म नही

लिया है। कुमुद भी उसी कोख से आयी है। मेरी आँखो मे तुम सव वरावर हो। मैं किसी से कुछ माँगती नही। तुम वैठे तमाशा देखो, मैं सव-कुछ कर लूंगी। वीस हजार मे पाँच हजार कुमुद का है।

कामतानाथ को अव कडवे सत्य की शरण लेने के सिवा और मार्ग न रहा। वोला—अम्माँ, तुम वरवस वात वढाती हो। जिन रुपयो को तुम अपना समझती हो, वह तुम्हारे नही है, तुम हमारी अनुमति के विना उनमे से कुछ नही खर्च कर सकती।

फूलमती को जैसे सर्प ने डस लिया—क्या कहा! फिर तो कहना! मैं अपने ही सचे रुपये अपनी इच्छा से नही खर्च कर सकती?

'वह रुपये तुम्हारे नही रहे, हमारे हो गए।'

'तुम्हारे होगे, लेकिन मेरे मरने के पीछे।'

'नही, दादा के मरत ही हमारे हो गए।'

उमानाथ ने वेहयाई से कहा—अम्माँ कानून-कायदा तो जानती नही, नाहक उछलती है।

फूलमती क्रोध-विह्वल होकर वोली भाड मे जाए तुम्हारा कानून। मैं ऐसे कानून को नही जानती। तुम्हारे दादा ऐसे कोई धन्नासेठ नही थे। मैंने ही पेट और तन काटकर यह गृहस्थी जोडी है, नही आज वैठने की छाँह न मिलती! मेरे जीते-जी तुम मेरे रुपये नही छू सकते। मैंने तीन भाइयो के विवाह मे दस-दस हजार खर्च किए हैं। वही मैं कुमुद के विवाह मे भी खर्च करूँगी।

कामतानाथ भी गर्म पडा—आपको कुछ भी खर्च करने का अधिकार नही है।

उमानाथ ने वडे भाई को डाँटा—आप खामख्वाह अम्माँ के मुँह लगते हैं भाई साहव! मुरारीलाल को पत्र लिख दीजिए कि तुम्हारे यहाँ कुमुद का विवाह न होगा। वस, छुट्टी हुई। कायदा-कानून तो जानती नही, व्यर्थ की वहस करती है।

फूलमती ने संयमित स्वर मे कहा—अच्छा, क्या कानून है, जरा मैं भी सुनूं।

उमा ने निरीह भाव से कहा—कानून यही है कि वाप के मरने के वाद जायदाद वेटो की हो जाती है। माँ का हक केवल रोटी-कपडे का है।

फूलमती ने तडपकर पूछा—किसने ? यह कानून वनाया है?

उमा शात स्थिर स्वर मे वोला—हमारे ऋषियो ने, महाराज मनु ने, और किसने ?

फूलमती एक क्षण अवाक् रहकर आहत कंठ से वोली—तो इस घर मे मैं तुम्हारे टुकडो पर पड़ी हुई हूँ ?

उमानाथ ने न्यायाधीश की निर्ममता से कहा—तुम जैसा समझो।

फूलमती क सम्पूर्ण आत्मा मानो इस वज्रपात से चीत्कार करने लगी। उसके मुख से जलती हुई चिनगारियो की भाति यह शब्द निकल पडे—मैने घर बनवाया, मैंने सम्पत्ति जोड़ी, मैंने तुम्हे जन्म दिया, पाला और आज मै इस घर मे गैर हूँ ? मनु का यही कानून है और तुम उसी कानून पर चलना चाहते हो ? अच्छी बात है। अपना घर-द्वार लो। मुझे तुम्हारी आश्रिता बनकर रहना स्वीकार नही। इससे कही अच्छा है कि मर जाऊँ। वाह रे अधेर ! मैने पेड लगाया और मैं ही उसकी छाँह मे खड़ी नही हो सकती, अगर यही कानून है, तो इसने आग लग जाए।

चारो युवको पर माता के इस क्रोध और आतंक का कोई असर न हुआ। कानून का फौलादी कवच उनकी रक्षा कर रहा था। इन काटो का उन पर क्या असर हो सकता था ?

जरा देर मे फूलमती उठकर चली गयी। आज जीवन मे पहली बार उसका वात्सल्य मग्न मातृत्व अभिशाप बनकर उसे धिक्कारने लगा। जिस मातृत्व को उसने जीवन की विभूति समझा था, जिसके चरणो पर वह सदैव अपनी समस्त अभिलापाओ और कामनाओ को अर्पित करके अपने को धन्य मानती थी, वह मातृत्व आज उसे अग्निकुण्ड-सा जान पडा, जिसमे उसका जीवन जलकर भस्म हो रहा था।

सध्या हो गई थी। द्वार पर नीम का वृक्ष सिर झुकाए निस्तब्ध खड़ा था, मानो ससार की गति पर क्षुब्ध हो रहा हो। अस्ताचल की ओर प्रकाश और जीवन का देवता फूलमती के मातृत्व ही की भाँति अपनी चिता मे जल रहा था।

5

फूलमती अपने कमरे मे जाकर लेटी, तो उसे मालूम हुआ, उसकी कमर टूट गई है। पति के मरते ही अपने पेट के लडके उसके शत्रु हो जाएँगे, उसको स्वप्न मे भी अनुमान न था। जिन लड़को को उसने अपना हृदयरक्त पिला-पिलाकर पाला वही आज उसके हृदय पर यो आघात कर रहे हैं ! अब वह घर उसे कांटो की सेज हो रहा था। जहाँ उसकी कुछ कद्र नही, कुछ गिनती नही, वहाँ अनाथो की भाँति पडी रोटियाँ खाए, यह उसकी अभिमानी प्रकृति के लिए असह्य था।

पर उपाय ही क्या था ? वह लडको से अलग होकर रहे भी तो नाक किसकी कटेगी ? संसार उसे थूके तो क्या, और लडको को थूके तो क्या, बदनामी तो उसी की है। दुनिया तो यही कहेगी कि चार जवान बेटो के होते बुढिया अलग

पड़ी हुई मजूरी करके पेट पाल रही है ! जिन्हे उसने हमेशा नीच समझा, वही उस पर हँसेंगे । नही, वह अपमान इस अनादर से कही ज्यादा हृदयविदारक था । अव अपना और घर का परदा ढका रखने मे ही कुशल है । हाँ, अव उसे अपने को नई परिस्थितियो के अनुकूल वनाना पडेगा । समय वदल गया है । अव तक स्वामिनी वनकर रही, अव लौडी वनकर रहना पडेगा । ईश्वर की यही इच्छा है । अपने वेटो की वातें और लातें गैरो की वातो और लातो की अपेक्षा फिर भी गनीमत हैं ।

वह वडी देर तक मुँह ढाँपे अपनी दशा पर रोती रही । सारी रात इसी आत्म-वेदना मे कट गई । शरद् का प्रभात डरता-डरता उषा की गोद से निकला, जैसे कोई कैदी छिपकर जेल से भाग आया हो । फूलमती अपने नियम के विरुद्ध आज तडके ही उठी, रात-भर मे उसका मानसिक परिवर्तन हो चुका था । सारा घर सो रहा था और वह आँगन में झाड़ू लगा रही थी । रात-भर ओस में भीगी हुई पक्की जमीन उसके नगे पैरो मे काँटो की तरह चुभ रही थी । पडितजी उसे कभी इतने सवेरे उठने न देते थे । शीत उसके लिए वहुत हानिकारक था । पर अव वह दिन नही रहे । प्रकृति को भी समय के साथ वदल देने का प्रयत्न कर रही थी । झाड़ू से फुरसत पाकर उसने आग जलायी और चावल-दाल की कक-डियाँ चुनने लगी । कुछ देर मे लडके जागे । वहुएँ उठी । सभी ने वुढिया को सर्दी से सिकुडे हुए काम करते देखा, पर किसी ने यह न कहा कि अम्मा, क्यो हलकान होती हो ? शायद सव-के-सव वुढिया के इस मान-मर्दन पर प्रसन्न थे ।

आज से फूलमती का यही नियम हो गया कि जी तोडकर घर का काम करना और अंतरग नीति से अलग रहना । उसके मुख पर जो एक आत्मगौरव झलकता रहता था, उसकी जगह अव गहरी वेदना छायी हुई नजर आती थी । जहाँ विजली जलती थी, वहाँ अव तेल का दिया टिमटिमा रहा था, जिसे वुझा देने के लिए हवा का एक हलका-सा झोका काफी है ।

मुरारीलाल को इनकारी पत्र लिखने की वात पक्की हो चुकी थी । दूसरे दिन पत्र लिख दिया गया । दीनदयाल से कुमुद का विवाह निश्चित हो गया । दीनदयाल की उम्र चालीस से कुछ अधिक थी, मर्यादा मे भी कुछ हेठे थे, पर रोटी-दाल से खुश थे । विना किसी ठहराव के विवाह करने पर राजी हो गए । तिथि नियत हुई, वारात आयी, विवाह हुआ और कुमुद विदा कर दी गई । फूलमती के दिल पर क्या गुजर रही थी, इसे कौन जान सकता है, कुमुद के दिल पर क्या गुजर रही थी, इसे कौन जान सकता है, पर चारो भाई वहुत प्रसन्न थे, मानो उनके हृदय का काँटा निकल गया हो । ऊँचे कुल की कन्या, मुंह कैसे खोलती ? भाग्य मे सुख भोगना लिखा होगा, सुख भोगेगी, दुख भोगना लिखा होगा, दु ख झेलेगी । हरि-इच्छा वेकसो का अन्तिम अवलम्व है । घरवालो ने

जिससे विवाह कर दिया, उसमे हजार ऐब हो, तो भी वह उसका उपास्य, उसका स्वामी है। प्रतिरोध उसकी कल्पना से परे था।

फूलमती ने किसी काम मे दखल न दिया। कुमुद को क्या दिया गया, मेहमानो का कैसा सत्कार किया गया, किसके यहाँ से नेवते मे क्या आया, किसी बात से भी उसे सरोकार न था। उससे कोई सलाह भी ली गई तो यही कहा—बेटा, तुम लोग जो करते हो, अच्छा ही करते हो। मुझसे क्या पूछते हो!

जब कुमुद के लिए द्वार पर डोली आ गई और कुमुद माँ के गले लिपटकर रोने लगी, तो वह बेटी को अपनी कोठरी मे ले गयी और जो कुछ सौ-पचास रुपये और दो-चार मामूली गहने उसके पास बच रहे थे, बेटी के अचल मे डालकर बोली···बेटी, मेरी तो मन की मन में रह गई, नही क्या आज तुम्हारा विवाह इस तरह होता और तुम इस तरह विदा की जाती!

आज तक फूलमती ने अपने गहनो की बात किसी से न कही थी। लडकों ने उसके साथ जो कपट-व्यवहार किया था, इसे चाहे वह अब तक न समझी हो, लेकिन इतना जानती थी कि गहने फिर न मिलेंगे और मनोमालिन्य बढने के सिवा कुछ हाथ न लगेगा, लेकिन इस अवसर पर उसे अपनी सफाई देने की जरूरत मालूम हुई। कुमुद यह भाव मन मे लेकर जाए कि अम्माँ ने अपने गहने बहुओ के लिए रख छोडे, इसे वह किसी तरह न सह सकती थी, इसीलिए वह अपनी कोठरी मे ले गई थी। लेकिन कुमुद को पहले ही इस कौशल की टोह मिल चुकी थी, उसने गहने और रुपये अचल से निकालकर माता के चरणो पर रख दिए और बोली—अम्माँ, मेरे लिए तुम्हारा आशीर्वाद लाखो रुपयो के बराबर है। तुम इन चीजो को अपने पास रखो। न जाने अभी तुम्हे किन विपत्तियों का सामना करना पडे।

फूलमती कुछ कहना ही चाहती थी कि उमानाथ ने आकर कहा—क्या कर रही है कुमुद? चुन, जल्दी कर। साइत टली जाती है। वह लोग हाय-हाय कर रहे हैं, फिर तो दो-चार महीने मे आएगी ही, जो कुछ लेना-देना हो, ले लेना।

फूलमती के घाव पर जैसे मानो नमक पड गया। बोली—मेरे पास अब क्या है भैया, जो मैं इसे दूँगी? जाओ बेटी, भगवान् तुम्हारा सोहाग अमर करें।

कुमुद विदा हो गई। फूलमती पछाड खाकर गिर पड़ी। जीवन की अन्तिम लालसा नष्ट हो गई।

6

एक साल बीत गया।

फूलमती का कमरा घर मे सव कमरो से वडा और हवादार था। कई महीनो से उसने वडी वहू के लिए खाली कर दिया था और खुद एक छोटी-सी कोठरी मे रहने लगी, जैसे कोई भिखारिन हो। वेटो और वहुओ से अव उसे जरा भी स्नेह न था। वह अव घर की लौंडी थी। घर के किसी प्राणी, किसी वस्तु, किसी प्रसग मे उसे प्रयोजन न था। वह केवल इसलिए जीती थी कि मौत न आती थी। सुख या दु ख का अव उसे लेशमात्र भी ज्ञान न था।

उमानाथ का औपधालय खुला, मित्रो की दावत हुई, नाच-तमाशा हुआ। दयानाथ का प्रेस खुला, फिर जलसा हुआ। सीतानाथ को वजीफा मिला और विलायत गया, फिर उत्सव हुआ। कामतानाथ के वडे लडके का यज्ञोपवीत-सस्कार हुआ, फिर धूम-धाम हुई, लेकिन फूलमती के मुख पर आनन्द की छाया तक न आई। कामतानाथ टाइफाइड मे महीने-भर वीमार रहा और मर कर उठा। दयानाथ ने अवकी अपने पत्र का प्रचार वढाने के लिए वास्तव मे एक आपत्तिजनक लेख लिखा और छ महीने की सजा पायी। उमानाथ ने एक फौज दारी के मामले मे रिश्वत लेकर गलत रिपोर्ट लिखी और उसकी सनद छीन ली गई, पर फूलमती के चेहरे पर रज की परछाईं तक न पडी। उसके जीवन मे अव कोई आशा, कोई दिलचस्पी, कोई चिन्ता न थी। वस, पशुओ की तरह काम करना और खाना, यही उसकी जिन्दगी के दो काम थे। जानवर मारने से काम करता है, पर खाता है मन से। फूलमती वेकहे काम करती थी, पर खाती थी विष के कौर की तरह। महीनो सिर मे तेल न पडता, महीनो कपड़े न धुलते, कुछ परवाह नही। चेतनाशून्य हो गई थी।

सावन की झडी लगी हुई थी। मलेरिया फैल रहा था। आकाश मे मटियाले वादल थे, जमीन पर मटियाला पानी। आर्द्र वायु शीत-ज्वर और श्वास का वितरण करती फिरती थी। घर की महरी वीमार पड गई। फूलमती ने घर के सारे वरतन माँजे, पानी मे भीग-भीगकर सारा काम किया। फिर आग जलायी और चूल्हे पर पतीलियाँ चढा दी। लडको को समय पर भोजन तो मिलना चाहिये। सहसा उसे याद आया, कामतानाथ नल का पानी नही पीते। उसी वर्षा मे गगाजल लाने चली।

कामतानाथ ने पलंग पर लेटे-लेटे कहा—रहने दो अम्मां, मैं पानी भर लाऊँगा, आज महरी खूव वैठ रही।

फूलमती ने मटियाले आकाश की ओर देखकर कहा—तुम भीग जाओगे वेटा, सर्दी हो जायगी।

कामतानाथ वोले—तुम भी तो भीग रही हो। कहीं वीमार न पड जाओ।

फूलमती निर्मम भाव से वोली—मैं वीमार न पडूंगी। मुझे भगवान् ने अमर कर दिया है।

उमानाथ भी वही बैठा हुआ था। उसके औपधालय मे कुछ आमदनी न होती थी, इसीलिए वहुत चिन्तित रहता था। भाई-भावज की मुहदेखी करता रहता था। वोला—जाने भी दो भैया ! वहुत दिनो वहुओ पर राज कर चुकी हैं, उसका प्रायश्चित्त तो करने दो।

गंगा वढी हुई थी, जैसे समुद्र हो। क्षितिज सामने के कल से मिला हुआ था। किनारो के वृक्षो की केवल फुनगिया पानी के ऊपर रह गई थी। घाट ऊपर तक पानी मे डूव गए थे। फूलमती कलसा लिये नीचे उतरी। पानी भरा और ऊपर जा रही थी कि पाँव फिसला। सँभल न सकी। पानी मे गिर पडी। पल भर हाथ-पाँव चलाये, फिर लहरे उसे नीचे खीच ले गईं। किनारे पर दो चार पंडे चिल्लाए—'अरे दौडो, वुढिया डूवी जाती है।' दो-चार आदमी दौडे भी लेकिन फूलमती लहरो मे समा गई थी, उन वल खाती हुई लहरो मे, जिन्हे देखकर ही हृदय काँप उठता था।

एक ने पूछा—यह कौन वुढिया थी ?

'अरे, वही पंडित अयोध्यानाथ की विधवा है।'

'अयोध्यानाथ तो वडे आदमी थे।'

'हाँ थे तो, पर इसके भाग्य मे कठोर खाना लिखा था।'

'उनके तो कई लडके वड़े-वड़े हैं और सव कमाते हैं ?'

'हां, सव हैं भाई, पर भाग्य भी तो कोई वस्तु है !'

बड़े भाई साहब

मेरे भाई साहब मुझसे पाँच साल बडे थे, लेकिन तीन दरजे आगे। उन्होंने भी उसी उम्र मे पढना शुरू किया था, जब मैंने शुरू किया लेकिन तालीम जैसे महत्त्व के मामले मे वह जल्दीबाजी से काम लेना पसद न करते थे, इस भवन की बुनियाद खूब मजबूत डालना चाहते थे, जिस पर आलीशान महल बन सके। एक साल का काम दो साल मे करते थे। कभी-कभी तीन साल भी लग जाते थे। बुनियाद ही पुख्ता न हो, तो मकान कैसे पाएदार बने!

मैं छोटा था, वह बडे थे। मेरी उम्र नौ साल की, वह चौदह साल के थे। उन्हे मेरी तम्बीह और निगरानी का पूरा जन्मसिद्ध अधिकार था। और मेरी शालीनता इसी मे थी कि उनके हुक्म को कानून समझूं।

वह स्वभाव से बडे अध्ययनशील थे। हरदम किताब खोले बैठे रहते और शायद दिमाग को आराम देने के लिए कभी कापी पर, कभी किताब के हाशियो पर चिडियो, कुत्तो, बिल्लियो की तस्वीरें बनाया करते थे। कभी-कभी एक ही नाम या शब्द या वाक्य दस-बीस बार लिख डालते। कभी एक शेर को बार-बार सुन्दर अक्षरो से नकल करते। कभी ऐसी शब्द-रचना करते, जिसमे न कोई अर्थ होता, न कोई सामजस्य! मसलन एक बार उसकी कापी पर मैंने यह इबारत देखी—स्पेशल, अमीना, भाइयो-भाइयो, दर-असल, भाई-भाई, राधेश्याम, श्रीयुत राधेश्याम, एक घटे तक—इसके बाद एक आदमी का चेहरा बना हुआ था। मैंने चेष्टा की कि इस पहेली का कोई अर्थ निकालूं, लेकिन असफल रहा और उनसे पूछने का साहस न हुआ। वह नवी जमात थे, मैं पाँचवी मे। उनकी रचनाओ को समझना मेरे लिए छोटा मुह बडी बात थी।

मेरा जी पढने मे बिल्कुल न लगता था। एक घंटा भी किताब लेकर बैठना पहाड था। मौका पाते ही होस्टल से निकलकर मैदान मे आ जाता और कभी ककरिया उछालता, कभी कागज की तितलियाँ उडाता, और कही कोई साथी मिल गया तो पूछना ही क्या! कभी चारदीवारी पर चढकर नीचे कूद रहे हैं कभी फाटक पर सवार, उसे आगे-पीछे चलाते हुए मोटरकार का आनद उठा रहे हैं, लेकिन कमरे मे आते ही भाई साहब का वह रौद्र रूप देखकर प्राण सूख

जाते । उनका पहला सवाल होता—'कहाँ थे ?' हमेशा यही सवाल, इसी ध्वनि मे हमेशा पूछा जाता था । और इसका जवाब मेरे पास केवल मौन था । न जाने मुँह से यह बात क्यो न निकलती कि जरा बाहर खेल रहा था । मेरा मौन कह देता था कि मुझे अपना अपराध स्वीकार है और भाई साहब के लिए इसके सिवा और कोई इलाज न था कि रोष से मिले हुए शब्दो मे मेरा सत्कार करे ।

'इस तरह अँगरेजी पढोगे, तो जिन्दगी भर पढते रहोगे और एक हर्फ न आएगा । अँगरेजी पढना कोई हँसी-खेल नही है कि चाहे जो पढ ले; नही ऐरा-गैरा नत्थू खैरा सभी अगरेजी के विद्वान हो जाते । यहाँ रात-दिन आँखें फोडनी पडती है और खून जलाना पडता है, तब कही यह विद्या आती है । और आती क्या है, हा कहने को आ जाती है । बडे-बडे विद्वान भी शुद्ध अँगरेजी नही लिख सकते, बोलना तो दूर रहा । और मैं कहता हूँ, तुम कितने घोघा हो कि मुझे देखकर भी सबक नही लेते । मैं कितनी मेहनत करता हूँ, यह तुम अपनी आँखो देखते हो, अगर नही देखते, तो यह तुम्हारी आखो का कसूर है, तुम्हारी बुद्धि का कसूर है । इतने मेले-तमाशे होते हैं, मुझे तुमने कभी देखने जाते देखा है ? रोज ही क्रिकेट और हाकी मैच होते है । मैं पास नही फटकता । हमेशा पढ़ता रहा हूँ; उस पर भी एक-एक दरजे मे दो-दो, तीन-तीन साल पड़ा रहता हूँ फिर तुम कैसे आशा करते हो कि तुम यो खेल-कूद मे वक्त गँवाकर पास हो जाओगे ? मुझे तो दो-ही-तीन साल लगते हैं, तुम उम्र भर इसी दरजे मे पड़े सडते रहोगे ! अगर तुम्हे इस तरह उम्र गँवानी है, तो घर चले जाओ और मजे से गुल्ली-डडा खेलो । दादा की गाढ़ी कमाई के रुपये क्यो बरबाद करते हो ?

मैं यह लताड सुनकर आँसू बहाने लगता । जवाब ही क्या था ! अपराध तो मैंने किया, लताड कौन सहे ? भाई साहब उपदेश की कला मे निपुण थे । ऐसी ऐसी लगती बातें कहते, ऐसे-ऐसे सूक्ति-बाण चलाते कि मेरे जिगर के टुकड़े टुकड़े हो जाते और हिम्मत छूट जाती । इस तरह जान तोडकर मेहनत करने की शक्ति मैं अपने मे न पाता था और उस निराशा मे जरा देर के लिए मैं सोचने लगता—क्यो न घर चला जाऊँ । जो काम मेरे बूते के बाहर है, उसमें हाथ डालकर अपनी जिन्दगी खराब करूँ ? मुझे अपना मूर्ख रहना मंजूर था लेकिन उतनी मेहनत से मुझे तो चक्कर आ जाता था । लेकिन घंटे-दो-घंटे बाद निराशा के बादल फट जाते और मैं इरादा करता कि आगे से खूब जी लगाकर पढ़ूगा । चटपट एक टाइम-टेबिल बना डालता । बिना पहले से नक्शा बनाए कोई स्कीम तैयार किए काम कैसे शुरू करूँ । टाइम-टेबिल में खेल-कूद की मद बिलकुल उड जाती । प्रातःकाल उठना, छः बजे मुह हाथ धो, नाश्ता कर पढ़ने बैठ जाना । छः से आठ तक अँगरेजी, आठ से नौ तक हिसाब, नौ से साढ़े

नौ तक इतिहास, फिर भोजन और स्कूल। साढे तीन वजे स्कूल से वापस होकरा आध घण्टा आराम, चार से पाँच तक भूगोल, पाँच से छ तक ग्रामर, आधा घटा होस्टल के सामने टहलना, साढे छ से सात तक अँगरेजी कम्पोजीशन, फिर भोजन करके आठ से नौ तक अनुवाद, नौ से दस तक हिन्दी, दस से ग्यारह तक विविध-विषय, फिर विश्राम।

मगर टाइम-टेविल वना लेना एक वात है, उस पर अमल करना दूसरी वात। पहले ही दिन से उसकी अवहेलना शुरू हो जाती। मैदान की वह सुखद हरियाली, हवा के वह हल्के-हल्के झोंके, फुटवाल की उछल कूद, कवड्डी के वह दाव-घात, वाली-वाल की वह तेजी और फुरती मुझे अज्ञात और अनिवार्य रूप से खीच ले जाती और वहाँ जाते ही मैं सव कुछ भूल जाता। वह जान-लेवा टाइम-टेविल, वह आँखफोड पुस्तकें, किसी की याद न रहती, और फिर भाई साहव को नसीहत और फजीहत का अवसर मिल जाता। मैं उनके साये से भागता, उनकी आँखो से दूर रहने की चेष्टा करता। कमरे मे इस तरह दवे पाँव आता कि उन्हे खवर न हो! उनकी नजर मेरी ओर उठी और मेरे प्राण निकले। हमेशा सिर पर एक नगी तलवार-सी लटकती मालूम होती। फिर भी जैसे मौत और विपत्ति के वीच मे भी आदमी मोह और माया के वधन मे जकडा रहता है, मैं फटकार और घुडकियाँ खाकर भी खेलकूद का तिरस्कार न कर सकता।

2

सालाना इम्तहान हुआ। भाई साहव फेल हो गए, मैं पास हो गया और दरजे मे प्रथम आया। मेरे और उनके वीच केवल दो साल का अन्तर रह गया। जी मे आया, भाई साहव को आडे हाथो मे लूँ—आपकी वह घोर तपस्या कहाँ गई? मुझे देखिए, मजे से खेलता भी रहा और दरजे मे अव्वल भी हूँ। लेकिन वह इतने दुखी और उदास थे कि मुझे उनसे दिली हमदर्दी हुई और उनके घाव पर नमक छिडकने का विचार ही लज्जास्पद जान पडा। हाँ, अव मुझे अपने ऊपर कुछ अभिमान हुआ और आत्माभिमान भी वढा। भाई साहव का वह रोव मुझ पर न रहा। आजादी से खेल-कूद मे शरीक होने लगा। दिल मजवूत था। अगर उन्होने फिर मेरी फजीहत की तो साफ कह दूगा—आपने अपना खून जलाकर कौन-सा तीर मार लिया। मैं तो खेलते-कूदते दरजे मे अव्वल आ गया। जवान से यह हेकडी जताने का साहस न होने पर भी मेरे रंगढग से साफ जाहिर होता था कि भाई साहव का वह आतंक मुझ पर नही है। भाई साहव ने इसे भाँप लिया—उनकी सहज वुद्धि वडी तीव्र थी और एक दिन जव मैं भोर का सारा समय गुल्ली-डडे की भेंट करके ठीक भोजन के समय लौटा, तो भाई साहव ने मानो तलवार खीच ली और मुझ पर टूट पडे—देखता हूँ, इस

साल पास हो गए और दरजे मे अव्वल आ गए, तो तुम्हे दिमाग हो गया है। मगर भाईजान, घमंड तो वडे-वड़ो का नही रहा, तुम्हारी क्या हस्ती है ? इतिहास मे रावण का हाल तो पढा ही होगा। उसके चरित्र से तुमने कौन-सा उपदेश लिया ? या यो ही पढ़ गए ? महज इम्तहान पास कर लेना कोई चीज नही, असल चीज है बुद्धि का विकास। जो कुछ पढो, उसका अभिप्राय समझो। रावण भूमडल का स्वामी था। ऐसे राजो को चक्रवर्ती कहते हैं। आजकल अंगरेजों के राज्य का विस्तार वहुत वढा हुआ है; पर इन्हें चक्रवर्ती नही कह सकते। संसार मे अनेको राष्ट्र अँगरेजो का अधिपत्य स्वीकार नही करते। बिलकुल स्वाधीन हैं। रावण चक्रवर्ती राजा था। संसार के सभी महीप उसे कर देते थे। वड़े-वड़े देवता उसकी गुलामी करते थे। आग और पानी के देवता भी उसके दास थे, मगर उसका अंत क्या हुआ ? घमड ने उसका नामनिशान तक मिटा दिया, कोई उसे एक चिल्लू पानी देने वाला भी न वचा। आदमी जो कुकर्म चाहे करे, पर अभिमान न करे, इतराए नही। अभिमान किया और दीन-दुनिया दोनो से गया।

शैतान का हाल भी पढ़ा ही होगा। उसे यह अभिमान हुआ था कि ईश्वर का उससे वढकर सच्चा कोई है ही नही। अन्त मे यह हुआ कि स्वर्ग से नरक मे ढकेल दिया गया। शाहेरूम ने भी एक वार अहकार किया था। भीख माग-माँगकर मर गया। तुमने तो केवल एक दरजा पास किया है और अभी से तुम्हारा सिर फिर गया, तव तो तुम आगे वढ चुके। यह समझ लो कि तुम अपनी मेहनत से नही पास हुए, अन्धे के हाथ वटेर लग गई। मगर वटेर केवल एक वार हाथ लग सकती है, वार-वार नही। कभी-कभी गुल्ली डडे में भी अधाचोट निशाना पड जाता है। इससे कोई सफल खिलाडी नही हो जाता। सफल खिलाडी वह है, जिसका कोई निशाना खाली न जाए।

मेरे फेल होने पर न जाओ। मेरे दरजे मे आओगे, तो दाँतो पसीना आएगा, जव अलजवरा और जामेट्री के लोहे के चने चवाने पडेगे और इंगलिस्तान का इतिहास पढना पड़ेगा। वादशाहो के नाम याद रखना आसान काम नही। आठ-आठ हेनरी हो गुजरे हैं। कौन-सा कांड किस हेनरी के समय मे हुआ, क्या यह याद कर लेना आसान समझते हो ? हैनरी सातवें की जगह, हेनरी आठवाँ और सव नम्वर गायव ! सफाचट। सिफ़र भी न मिलेगा, सिफर भी ! हो किस ख्याल मे ? दरजनो तो जेम्स हुए हैं, दरजनो विलियम, कोड़ियो चार्ल्स ! दिमाग चक्कर खाने लगता है। आधी रोग हो जाता है। इन अभागो को नाम भी न जुडते थे। एक ही नाम के पीछे दोयम, तेयम, चहारम, पचम लगाते चले गए। मुझसे पूछते, तो दस लाख नाम वता देता।

और जामेट्री तो वस खुदा की पनाह ! अ व ज की जगह अ ज व लिख

दिया और सारे नम्बर कट गए। कोई इन निर्दयी मुमतहिनो से नही पूछता कि आखिर अ ब ज और अ ज ब मे क्या फर्क है, और व्यर्थ की बात के लिए क्यों छात्रो का खून करते हो? दाल-भात-रोटी खायी या भात-दाल-रोटी खायी, इसमे क्या रखा है, मगर इन परीक्षको को क्या परवाह! वह तो वही देखते हैं, जो पुस्तक मे लिखा है। चाहते हैं कि लडके अक्षर-अक्षर रट डालें। और इसी रटंत का नाम शिक्षा रख छोडा है और आखिर इन बे-सिर-पैर की बातो के पढाने से फायदा?

इस रेखा पर लम्ब गिरा दो, तो आधार लम्ब से दुगना होगा। पूछिए, इससे प्रयोजन? दुगना नही, चौगुना हो जाए, या आधा ही रहे, मेरी बला से, लेकिन परीक्षा मे पास होना है तो यह सब खुराफात याद करनी पडेंगी। कह दिया—'समय की पाबदी' पर एक निबन्ध लिखो, जो चार पन्नो से कम न हो। अब कापी हाथ मे खोले, कलम हाथ मे लिये, उसके नाम को रोइए।

कौन नही जानता कि समय की पाबदी बहुत अच्छी बात है। इससे आदमी के जीवन मे सयम आ जाता है, दूसरो का उस पर स्नेह होने लगता है और उसके कारोबार मे उन्नति होती है; जरा-सी बात पर चार पन्ने कैसे लिखें? जो बात एक वाक्य मे कही जा सके, उसे चार पन्ने मे लिखने की जरूरत? मैं तो इसे हिमाकत समझता हूं। यह तो समय की किफायत नही, बल्कि उसका दुरुपयोग है कि व्यर्थ मे किसी बात को ठूंस दिया। हम चाहते हैं, आदमी को जो कुछ कहना हो, चटपट कह दे और अपनी राह ले। मगर नही आपको चार पन्ने रंगने पडेंगे, चाहे जैसे लिखिए और पन्ने भी पूरे फुल्सकेप आकार के। यह छात्रो पर अत्याचार नही तो और क्या है? अनर्थ तो यह है कि कहा जाता है, संक्षेप मे लिखो। समय की पाबदी पर सक्षेप मे एक निबन्ध लिखो, जो चार पन्ने से कम न हो। ठीक सक्षेप मे तो चार पन्ने हुए, नही शायद सौ-दो सौ पन्ने लिखवाते। तेज भी दौडिए और धीरे-धीरे भी। है उलटी बात या नही, बालक भी इतनी सी बात समझ सकता है, लेकिन इन अध्यापको को इतनी तमीज भी नही। उस पर दावा है कि हम अध्यापक हैं। मेरे दरजे मे आओगे लाला, तो ये सारे पापड बेलने पडेंगे और तब आटे-दाल का भाव मालूम होगा। इस दरजे मे अव्वल आ गए हो, तो जमीन पर पाँव नहीं रखते। इसलिए मेरा कहना मानिए। लाख फेल हो गया हूँ, लेकिन तुमसे बडा हूँ, संसार का मुझे तुमसे ज्यादा अनुभव है। जो कुछ कहता हूँ, उसे गिरह बाँधिए, नही पछताएँगे।

स्कूल का समय निकट था, नही ईश्वर जाने, वह उपदेश-माला कब समाप्त होती। भोजन आज मुझे निस्स्वाद-सा लग रहा था। जब पास होने पर यह तिरस्कार हो रहा है, तो फेल हो जाने पर तो शायद प्राण ही ले लिये जाएँ। भाई साहब ने अपने दरजे की पढाई का जो भयकर चित्र खीचा था, उसने मुझे

भयभीत कर दिया। कैसे स्कूल छोडकर घर नही भागा, यही ताज्जुब है, लेकिन इतने तिरस्कार पर भी पुस्तको मे मेरी अरुचि ज्यो-की-त्यो बनी रही। खेल-कूद का कोई अवसर हाथ से न जाने देता। पढता भी था, मगर बहुत कम। बस इतना कि रोज का टास्क पूरा हो जाए और दरजे मे जलील न होना पडे। अपने ऊपर जो विश्वास पैदा हुआ था, वह फिर लुप्त हो गया और फिर चोरी का-सा जीवन कटने लगा।

3

फिर सालाना इम्तहान हुआ, और कुछ ऐसा संयोग हुआ मैं फिर पास हुआ और भाई साहब फिर फेल हो गए। मैंने बहुत मेहनत न की, पर न जाने, कैसे दरजे मे अव्वल आ गया। मुझे खुद अचरज हुआ। भाई साहब ने प्राणातक परिश्रम किया था। कोर्स का एक एक शब्द चाट गए थे, दस बजे रात तक इधर, चार बजे भोर से उधर, छ. से साढे नौ तक स्कूल जाने के पहले। मुद्रा क्राँतिहीन हो गई थी, मगर बेचारे फेल हो गए। मुझे उन पर दया आती थी। नतीजा सुनाया गया, तो वह रो पडे और मैं भी रोने लगा। अपने पास होने की खुशी आधी हो गई। मैं भी फेल हो गया होता, तो भाई साहब को इतना दुःख न होता, लेकिन विधि की बात कौन टाले ?

मेरे और भाई साहब के बीच मे अब केवल एक दरजे का अन्तर और रह गया। मेरे मन मे एक कुटिल भावना उदय हुई कि कही भाई साहब एक साल और फेल हो जाएँ, तो मैं उनके बराबर हो जाऊँ, फिर वह किस आधार पर मेरी फजीहत कर सकेंगे, लेकिन मैंने इस कमीने विचार को दिल से बलपूर्वक निकाल डाला। आखिर वह मुझे मेरे हित के विचार से ही तो डाँटते हैं। मुझे इस वक्त अप्रिय लगता है अवश्य, मगर यह शायद उनके उपदेशो का ही असर हो कि मैं दनादन पास हो जाता हूँ और इतने अच्छे नम्बरो से।

अबकी भाई साहब बहुत-कुछ नर्म पड गए थे। कई बार मुझे डाँटने का अवसर पाकर भी उन्होने धीरज से काम लिया। शायद अब वह खुद समझने लगे थे कि मुझे डाँटने का अधिकार अब उन्हें नही रहा था रहा तो बहुत कम। मेरी स्वच्छदता भी बढी। मैं उनकी सहिष्णुता का अनुचित लाभ उठाने लगा। मुझे कुछ ऐसी धारणा हुई कि मैं तो पास हो ही जाऊँगा, पढ़ू या न पढ़ू, मेरी तकदीर बलवान है, इसलिए भाई साहब के डर से जो थोडा-बहुत पढ लिया करता था, वह भी बन्द हुआ। मुझे कनकौए उडाने का नया शौक पैदा हो गया था और अब सारा समय पतंगबाजी ही की भेंट होता था, फिर भी मैं भाई साहब का अदब करता था, और उनकी नजर बचाकर कनकौए उडाता था। माँझा देना, कन्ने बाँधना, पतंग टूरनामेट की तैयारियाँ आदि समस्याएँ सब गुप्त

रूप से हल की जाती थी। भाई साहब को यह सन्देह न करने देना चाहता था कि उनका सम्मान और लिहाज मेरी नजरो मे कम हो गया है।

एक दिन सध्या समय होस्टल से दूर मैं एक कनकौआ लूटने बेतहाशा दौडा जा रहा था। आँखें आसमान की ओर थी। और मन उस आकाशगामी पथिक की ओर, जो मदगति से झूमता पतग की ओर चला जा रहा था, मानो कोई आत्मा स्वर्ग से निकलकर विरक्त मन से नए सस्कार ग्रहण करने जा रही हो बालको की एक पूरी सेना लग्गे और झाँडदार बाँस लिये उनका स्वागत करने को दौडी आ रही थी। किसी को अपने आगे-पीछे की खबर न थी। सभी मानो उस पतग के साथ ही आकाश मे उड रहे थे, जहाँ सब कुछ समतल है, न मोटर-कारे हैं न ट्राम, न गाडियाँ।

सहसा भाई साहब से मेरी मुठभेड हो गई, जो शायद बाजार से लौट रहे थे। उन्होने वही मेरा हाथ पकड लिया और उग्रभाव से बोले—इन बाजारी लौंडो के साथ धेले के कनकौए के लिए दौडते तुम्हे शर्म नही आती? तुम्हे इसका भी कुछ लिहाज नही कि अब नीची जमात मे नही हो, बल्कि आठवी जमात मैं आ गए हो और मुझसे केवल एक दरजा नीचे हो। आखिर आदमी को कुछ *तो अपनी पोजीशन का खयाल करना चाहिए। एक जमाना था कि लोग आठवाँ* दरजा पास करके नायब तहसीलदार हो जाते थे। मैं कितने ही मिडलचियो को जानता हूँ, जो आज अव्वल दरजे के डिप्टी मैजिस्ट्रेट या सुपरिटेंडेट है। कितने ही आठवी जमाअत वाले हमारे लीडर और समाचारपत्रो के सम्पादक हैं। बडे-बडे विद्वान् उनकी मातहती मे काम करते हैं और तुम उसी आठवें दरजे मे आकर बाजारी लौंडो के साथ कनकौए के लिए दौड रहे हो। मुझे तुम्हारी इस कमअकली पर दुख होता है। तुम जहीन हो, इसमे शक नही, लेकिन वह जेहन किस काम का, जो हमारे आत्मगौरव की हत्या कर डाले? तुम अपने दिल मे समझते होगे, मैं भाई साहब से महज एक दरजा नीचे हू और अब उन्हे मुझको कुछ कहने का हक नही है, लेकिन यह तुम्हारी गलती है। मैं तुमसे पाँच साल बडा हूँ और चाहे आज तुम मेरी ही जमाअत मे आ जाओ—और परीक्षको का यही हाल है, तो निस्सदेह अगले साल तुम मेरे समकक्ष हो जाओगे और शायद एक साल बाद मुझसे आगे भी निकल जाओ—लेकिन मुझमे और तुममे जो पाँच साल का अन्तर है, उसे तुम क्या, खुदा भी नही मिटा सकता। मैं तुमसे पाँच साल बड़ा हूँ और हमेशा रहूँगा। मुझे दुनिया का और जिन्दगी का जो तजुरबा है, तुम उसकी बराबरी नही कर सकते, चाहे तुम एम० ए०, डी० फिल्० और डी० लिट्० ही क्यो न हो जाओ। समझ किताबें पढने से नही आती हैं। हमारी अम्माँ ने कोई दरजा नही पास किया, और दादा भी शायद पाँचवी जमाअत के आगे नही गये, लेकिन हम दोनो चाहे सारी दुनिया की विद्या पढ़

लें, अम्माँ और दादा को हमे समझाने और सुधारने का अधिकार हमेशा रहेगा। केवल इसलिए नही कि वे हमारे जन्मदाता हैं; वल्कि इसलिए कि उन्हे दुनिया का हममे ज्यादा तजरवा है और रहेगा। अमेरिका मे किस तरह की राज्य-व्यवस्था है, और आठवें हेनरी ने कितने व्याह किए और आकाश में कितने नक्षत्र हैं, यह वातें चाहे उन्हे न मालूम हो, लेकिन हजारो ऐसी वातें हैं. जिनका ज्ञान उन्हे हमसे और तुमसे ज्यादा है।

दैव न करे, आज मैं वीमार हो जाऊँ, तो तुम्हारे हाँथ-पाँव फूल जाएँगे। दादा को तार देने के सिवा तुम्हे और कुछ न सूझेगा, लेकिन तुम्हारी जगह पर दादा हो, तो किसी को तार न दें, न घवराएँ, न वदहवास हो। पहले खुद मरज पहचानकर इलाज करेंगे, उसमे सफल न हुए तो किसी डाक्टर को वुलाएँगे। वीमारी तो खैर वडी चीज है। हम-तुम तो इतना भी नही जानते कि महीने-भर का खर्च महीना-भर कैसे चले। जो कुछ दादा भेजते हैं, उसे हम वीस-वाईस तक खर्च कर डालते हैं और फिर पैसे-पैसे को मोहताज हो जाते है। नाश्ता वद हो जाता है, धोवी और नाई से मुह चुराने लगते है, लेकिन जितना आज हम और तुम खर्च कर रहे हैं, उसके आधे मे दादा ने अपनी उम्र का वडा भाग इज्जत और नेकनामी के साथ निभाया और एक कुटुम्व का पालन किया है. जिसमे सव मिलाकर नौ आदमी थे। अपने हैडमास्टर साहव ही को देखो। एम० ए० हैं कि नही; और यहाँ के एम० ए० नही, आक्सफोर्ड के। एक हजार रुपये पाते हैं, लेकिन उनके घर का इंतजाम कौन करता है? उनकी वूढी माँ। हैडमास्टर साहव की डिग्री यहाँ वेकार हो गई। पहले खुद घर का इतजाम करते थे। खर्च पूरा न पड़ता था। करजदार रहते थे। जव से उनकी माताजी ने प्रवध अपने हाथ में ले लिया है, जैसे घर मे लक्ष्मी आ गई हैं। तो भाईजान, यह गरूर दिल से निकाल डालो कि तुम मेरे समीप आ गए हो और अव स्वतंत्र हो। मेरे देखते तुम वेराह न चलने पाओगे। अगर तुम यो न मानोगे, तो मैं (थप्पड दिखाकर) इसका प्रयोग भी कर सकता हूँ। मैं जानता हूँ. तुम्हे मेरी वातें जहर लग रही है।

मैं उनकी नई युक्ति से नतमस्तक हो गया। मुझे आज सचमुच अपनी लघुता का अनुभव हुआ और भाई साहव के प्रति मेरे मन मे श्रद्धा उत्पन्न हुई। मैंने सजल आँखो से कहा—हरगिज नही। आप जो कुछ फरमा रहे हैं, वह विलकुल सच है और आपको कहने का अधिकार है।

भाई साहव ने मुझे गले लगा लिया और वोले—कनकौए उडाने को मना नही करता। मेरा जी भी ललचता है, लेकिन क्या करूँ, खुद वेराह चलू तो

तुम्हारी रक्षा कैसे करूँ ? यह कर्त्तव्य भी तो मेरे सिर है ।

संयोग से उसी वक्त एक कटा हुआ कनकौआ हमारे ऊपर से गुजरा । उसकी डोर लटक रही थी । लडको का एक गोल पीछे-पीछे दौडा चला आता था । भाई साहब लम्बे हैं ही, उछलकर उसकी डोर पकड ली और बेतहासा होस्टल की तरफ दौडे । मैं पीछे-पीछे दोड रहा था ।

शांति

स्वर्गीय देवनाथ मेरे अभिन्न मित्रो मे थे। आज भी जव उनकी याद आ जाती है, तो वह रँगरेलियाँ आँखो मे फिर जाती हैं, और कहीं एकान्त मे जाकर जरा देर रो लेता हूँ। हमारे और उनके बीच मे दो-ढाई सौ मील का अतर था। मैं लखनऊ मे था, वह दिल्ली मे, लेकिन ऐसा शायद ही कोई महीना जाता हो कि हम आपस मे न मिल जाते हो। वह स्वच्छन्द प्रकृति के विनोदप्रिय, सहृदय, उदार और मित्रो पर प्राण देने वाले आदमी थे, जिन्होने अपने और पराए मे कभी भेद नही किया। ससार क्या है और यहाँ लौकिक व्यवहार का कैसा निर्वाह होता है, यह उस व्यक्ति ने कभी न जानने की चेष्टा की। उनके जीवन मे ऐसे कई अवसर आए, जव उन्हे आगे के लिए होशियार हो जाना चाहिए था।

मित्रो ने उनकी निष्कपटता से अनुचित लाभ उठाया, और कई वार उन्हें लज्जित भी होना पड़ा, लेकिन उस भले आदमी ने जीवन से कोई सवक लेने की कसम खा ली थी। उनके व्यवहार ज्यो के त्यो रहे—'जैसे भोलानाथ जिए वैसे ही भोलानाथ मरे।' जिस दुनिया मे वह रहते थे, वह निराली दुनिया थी, जिसमे सदेह, चालाकी और कपट के लिए स्थान न था—सव अपने थे, कोई गैर न था। मैंने वार-वार उन्हें सचेत करना चाहा, पर इसका परिणाम आशा के विरुद्ध हुआ। मुझे कभी-कभी चिन्ता होती थी कि उन्होने हाथ बन्द न किया, तो नतीजा क्या होगा? लेकिन विडम्बना यह थी कि उनकी स्त्री गोपा भी कुछ उसी साँचे मे ढली हुई थी। हमारी देवियो मे जो एक चातुरी होती है, जो सदैव ऐसे उड़ाऊ पुरुषो की असावधानियो पर 'ब्रेक' का काम करती है, उससे वह वचित थी। यहाँ तक कि वस्त्राभूपण मे भी उसे विशेप रुचि न थी। अतएव जव मुझे देवनाथ के स्वर्गारोहण का समाचार मिला और मैं भागा हुआ दिल्ली गया, तो घर मे वरतन-भाँड़े और मकान के सिवा और कोई सम्पत्ति न थी और अभी उनकी उम्र ही क्या थी, जो संचय की चिन्ता करते? चालीस भी तो पूरे न हुए थे। यो तो लड़कपन उनके स्वभाव मे ही था, लेकिन इस उम्र मे प्राय. सभी लोग कुछ वेफिक्र रहते हैं। पहले एक लड़की हुई थी। इसके वाद

दो लडके हुए । दोनो लडके तो वचपन मे ही दगा दे गए थे । लडकी वच रही थी, और यही इस नाटक का सवसे वडा करुण दृश्य था । जिस तरह का इनका जीवन था, उसके देखते इस छोटे-से परिवार के लिए दो सौ रुपये महीने की जरूरत थी । दो-तीन साल मे लडकी का विवाह भी करना होगा । कैसे क्या होगा, मेरी वुद्धि कुछ काम न करती थी ।

इस अवसर पर मुझे यह वहुमूल्य अनुभव हुआ कि जो लोग सेवा-भाव रखते है और स्वार्थ-सिद्धि को जीवन का लक्ष्य नही वनाते, उनके परिवार को आड देनेवालो की कमी नही रहती । यह कोई नियम नही है, क्योकि मैंने ऐसे लोगो को भी देखा है, जिन्होने जीवन मे वहुतो के साथ सलूक किए, पर उनके पीछे उनके वाल-वच्चो की किसी ने वात तक न पूछी । लेकिन चाहे कुछ हो, देवनाथ के मित्रो ने प्रशसनीय औदार्य से काम लिया और गोपा के निर्वाह के लिए स्थायी धन जमा करने का प्रस्ताव किया । दो एक सज्जन जो रँडुवे थे, उससे विवाह करने को तैयार थे; किन्तु गोपा ने भी स्वाभिमान का परिचय दिया, जो हमारी देवियो का जौहर है और इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया । मकान वहुत वड़ा था । उसका एक भाग किराए पर उठा दिया । इस तरह उसको 50 रु० माहवार मिलने लगे । वह इतने मे ही अपना निर्वाह कर लेगी । जो कुछ खर्च था, वह सुन्नी की जात से था । गोपा के लिए तो जीवन मे अव कोई अनुराग ही न था ।

2

इसके एक महीने वाद मुझे कारोवार के सिलसिले मे विदेश जाना पडा और वहाँ मेरे अनुमान से कही अधिक—दो साल—लग गए । गोपा के पत्र वरावर जाते रहते थे, जिससे मालूम होता था, वे आराम से है, कोई चिन्ता की वात नहीं है । मुझे पीछे ज्ञात हुआ कि गोपा ने मुझे भी गैर समझा और वास्तविक स्थिति छिपाती रही ।

विदेश से लौटकर मे सीधा दिल्ली पहुँचा । द्वार पर पहुचते ही मुझे रोना आ गया । मृत्यु की प्रतिध्वनि-सी छायी हुई थी । जिस कमरे मे मित्रो के जमघट रहते थे, उनके द्वार वन्द थे, मकडियो ने चारो ओर जाले तान रखे थे । देवनाथ के साथ वह श्री भी लुप्त हो गई थी । पहली नजर मे तो मुझे ऐसा भ्रम हुआ कि देवनाथ द्वार पर खड़े मेरी ओर देखकर मुस्करा रहे हैं । मैं मिथ्यावादी नही हूँ और आत्मा की दैहिकता मे मुझे सन्देह है; लेकिन उस वक्त एक वार मैं चौंक जरूर पडा । हृदय मे एक कम्पन-सा उठा, लेकिन दूसरी नजर मे प्रतिमा मिट चुकी थी ।

द्वार खुला । गोपा के सिवा खोलने वाला ही कौन था ? मैंने उसे देखकर

दिल थाम लिया। उसे मेरे आने की सूचना थी और मेरे स्वागत की परीक्षा मे उसने नई साडी पहन ली थी और शायद वाल भी गुँथा लिए थे, पर इन दो वर्षों के समय ने उस पर जो आघात किए थे, उन्हें क्या करती ? नारियो के जीवन मे यह वह अवस्था है, जव रूप-लावणय अपने पूरे विकास पर होता है, जव उसमे अल्हडपन, चंचलता और अभिमान की जगह आकर्षण, माधुर्य और रसिकता आ जाती है; लेकिन गोपा का यौवन वीत चुका था। उसके मुख पर झुर्रियाँ और विपाद की रेखाएँ अंकित थी जिन्हे उसकी प्रयत्नशील प्रसन्नता भी न मिटा सकती थी। केशो पर सफेदी दौड चली थी और एक-एक अग वूढा हो रहा था।

मैंने करुण स्वर मे पूछा—क्या तुम वीमार थी, गोपा ?

गोपा ने आँसू पीकर कहा—नही तो, मुझे कभी सिर-दर्द भी नही हुआ।

'तो तुम्हारी यह क्या दशा है ? विलकुल वूढी हो गई हो।'

'तो अव जवानी लेकर करना ही क्या है ? मेरी उम्र भी तो पैंतीस के ऊपर हो गई !'

'पैंतीस की उम्र तो वहुत नही होती।'

'हाँ उनके लिए, जो वहुत दिन जीना चाहते हैं। मैं तो चाहती हूँ, जितनी जल्द हो सके, जीवन का अंत हो जाए। वस, सुन्नी के व्याह की चिंता है। इससे छुट्टी पाऊँ, मुझे जिन्दगी की परवाह न रहेगी।

अव मालूम हुआ कि जो सज्जन इस मकान मे किराएदार हुए थे, वह थोडे दिनो के वाद तब्दील होकर चले गए और तव से कोई दूसरा किरायेदार न आया। मेरे हृदय मे वरछी-सी चुभ गई। इतने दिनो इन वेचारो का निर्वाह कैसे हुआ, यह कल्पना ही दुःखद थी।

मैंने विरक्त मन से कहा—लेकिन तुमने मुझे सूचना क्यो न दी ? क्या मैं विलकुल गैर हूँ ?

गोपा ने लज्जित होकर कहा—नही-नही, यह वात नही है। तुम्हे गैर समझूँगी तो अपना किसे समझूँगी ? मैंने समझा, परदेश मे तुम खुद अपने झमेले मे पड़े होगे, तुम्हें क्यो सताऊँ ? किसी न किसी तरह दिन कट ही गए। घर मे और कुछ न था, तो थोड़े-से गहने तो थे ही। अव सुनीता के विवाह की चिंता है। पहले मैंने सोचा था, इस मकान को निकाल दूगी, वीस-वाईस हजार मिल जाएँगे। विवाह भी हो जाएगा और कुछ मेरे लिए वच भी रहेगा, लेकिन वाद को मालूम हुआ कि मकान पहले ही रेहन हो चुका है और सूद मिलकर उस पर वीस हजार हो गए हैं। महाजन ने इतनी ही दया क्या कम की कि मुझे घर से निकाल न दिया। इधर से तो अव कोई आशा नही है। वहुत हाथ-पाँव जोड़ने पर, संभव है, महाजन से दो-ढाई हजार मिल जाए। इतने मे क्या होगा ?

इसी फिक्र मे घुला जा रही हूँ। लेकिन मैं भी कितनी मतलवी हूँ, न तुम्हे हाथ मुँह धोने को पानी दिया, न कुछ जलपान लायी और अपना दुखड़ा ले वैठी। अब आप अपने कपडे उतारिए और आराम से वैठिए। कुछ खाने को लाऊँ, खा लीजिए, तब बातें हो। घर पर तो सब कुशल है ?

मैंने कहा—मैं तो सीधा वम्बई से यहाँ आ रहा हूँ। घर कहाँ गया !

गोपा ने मुझे तिरस्कार-भरी आँखो से देखा, पर उस तिरस्कार की आड मे घनिष्ठ आत्मीयता वैठी झाँक रही थी। मुझे ऐसा जान पडा, उसके मुख की झुर्रियाँ मिट गई हैं। पीछे मुख पर हल्की-सी लाली दौड गई। उसने कहा—इसका फल यह होगा कि तुम्हारी देवीजी तुम्हे कभी यहाँ न आने देंगी।

'मैं किसीका गुलाम नही हूँ।'

'किसी को अपना गुलाम वनाने के लिए पहले खुद भी उसका गुलाम वनना पड़ता है।'

शीतकाल की सध्या देखते ही देखते दीपक जलाने लगी। सुन्नी लालटेन लेकर कमरे मे आयी। दो साल पहले की अवोध और कृशतनु वालिका रूपवती युवती हो गई थी, जिसकी हर एक चितवन, हर एक बात, उसकी गौरवशील प्रकृति का पता दे रही थी। जिसे गोद मे उठाकर प्यार करता था, उसकी तरफ आज आँखें न उठा सका और वह जो मेरे गले से लिपटकर प्रसन्न होती थी, आज मेरे सामने खड़ी भी न रह सकी। जैसे मुझसे कोई वस्तु छिपाना चाहती है, और जैसे मैं उस वस्तु के छिपाने का अवसर दे रहा हूँ।

मैंने पूछा—अव तुम किस दरजे में पहुँची सुन्नी ?

उसने सिर झुकाए हुए जवाव दिया—दसवें मे हूँ।

'घर का भी कुछ काम-काज करती हो ?'

'अम्माँ जव करने भी दें।'

गोपा बोली—मैं नही करने देती या खुद किसी काम के नगीच नही जाती ? सुन्नी मुँह फेरकर हँसती हुई चली गई। माँ की दुलारी लडकी थी। जिस दिन वह गृहस्थी का काम करती, उस दिन शायद गोपा रो-रोकर आँखें फोड लेती। वह खुद लडकी को कोई काम न करने देती थी, मगर सबसे शिकायत करती थी कि वह कोई काम नही करती। यह शिकायत भी उसके प्यार का ही एक करिश्मा था। हमारी 'मर्यादा' हमारे वाद भी जीवित रहती है।

मैं भोजन करके लेटा, तो गोपा ने फिर सुन्नी के विवाह की तैयारियो की चर्चा छेड़ दी। इसके सिवा उसके पास और बात ही क्या थी ? लडके तो वहुत मिलते हैं, लेकिन कुछ हैसियत भी तो हो। लडकी को यह सोचने का अवसर क्यो मिले कि दादा होते तो शायद मेरे लिए इससे अच्छा घर-वर ढूढते। फिर गोपा ने डरते-डरते लाला मदारीलाल के लड़के का जिक्र किया।

मैंने चकित होकर उसकी ओर देखा। लाला मदारीलाल पहले इंजीनियर थे, अब पेंशन पाते थे। लाखो रुपया जमा कर लिए थे, पर अब तक उनके लोभ की प्यास न बुझी थी। गोपा ने घर भी वह छाटा, जहाँ उसकी रसाई कठिन थी।

मैंने आपत्ति की—मदारीलाल तो बडा ही दुर्जन मनुष्य है।

गोपा ने दाँतो-तले जीभ दबाकर कहा—अरे, नही भैया। तुमने उन्हे पहिचाना न होगा। मेरे ऊपर बडे दयालु है। कभी-कभी आकर कुशल-समाचार पूछ जाते हैं। लडका ऐसा होनहार है कि मैं तुमसे क्या कहूँ। फिर उनके यहाँ कमी किस बात की है? यह ठीक है कि पहले वह खूब रिश्वत लेते थे; लेकिन यहाँ धर्मात्मा कौन है? कौन अवसर पाकर छोड देता है? मदारीलाल ने तो यहाँ तक कह दिया है कि वह मुझसे दहेज नही चाहते केवल कन्या चाहते हैं। सुन्नी उनके मन मे बैठ गई है।

मुझे गोपा की सरलता पर दया आयी, लेकिन मैंने सोचा, क्यो इसके मन मे किसी के प्रति अविश्वास उत्पन्न करूँ। सभव है, मदारीलाल वह न रहे हो। चित्त की भावनाएँ बदलती भी रहती हैं।

मैंने अर्ध सहमत होकर कहा—मगर यह तो सोचो, उनमे और तुममे कितना अतर है। शायद अपना सर्वस्व अर्पण करके भी उनका मुँह सीधा न कर सको।

लेकिन गोपा के मन मे बात जम गई थी। सुन्नी को वह ऐसे घर मे चाहती थी, जहाँ वह रानी बनकर रहे।

दूसरे दिन प्रात.काल मैं मदारीलाल के पास गया और उनसे मेरी जो बातचीत हुई, उसने मुझे मुग्ध कर दिया। किसी समय वह लोभी रहे होंगे। इस समय तो मैंने उन्हे बहुत ही सहृदय, उदार और विनयशील पाया। बोले—भाई साहब, मैं देवनाथजी से परिचित हूँ। आदमियो मे रत्न थे। उनकी लडकी मेरे घर आये, यह मेरा सौभाग्य है। आप उनकी माँ से कह दें, मदारीलाल उनसे किसी चीज की इच्छा नही रखता। ईश्वर का दिया हुआ मेरे घर मे सब कुछ है, मैं उन्हे जेरबार नही करना चाहता।

मेरे दिल का बोझ उतर गया। हम सुनी-सुनाई बातो से दूसरो के संबंध मे कैसी मिथ्या धारणा कर लिया करते हैं, इसका बड़ा शुभ अनुभव हुआ। मैंने आकर गोपा को बधाई दी। यह निश्चय हुआ कि गरमियो मे विवाह कर दिया जाए।

3

ये चार महीने गोपा ने विवाह की तैयारियो मे काटे। मैं महीने मे एक

वार अवश्य उससे मिल आता था, पर हर वार खिन्न होकर लौटता। गोपा ने अपनी कुल मर्यादा का न जाने कितना महान् आदर्श अपने सामने रख लिया था। पगली इस भ्रम मे पडी हुई थी कि उसका उत्साह नगर मे अपनी यादगार छोड जाएगा। यह न जानती थी कि यहाँ ऐसे तमाशे रोज होने हैं और आये दिन भुला दिए जाते हैं। शायद वह ससार से यह श्रेय लेना चाहती थी कि इस गई-वीती दशा मे भी, लुटा हुआ हाथी नौ लाख का है, पग-पग पर उसे देवनाथ की याद आती। वह होते तो यह काम यों न होता, यो होता और तव रोती।

मदारीलाल सज्जन हैं, यह सत्य है, लेकिन गोपा का अपनी कन्या के प्रति भी कुछ धर्म है। कौन उसके दस-पाँच लडकियाँ वैठी हुई हैं। वह तो दिल खोलकर अरमान निकालेगी। सुन्नी के लिए उसने जितने गहने और जोडे वनवाए थे, उन्हे देखकर मुझे आश्चर्य होता था। जव देखो, कुछ न कुछ सी रही है, कभी सुनारो की दुकान पर वैठी हुई है, कभी मेहमानो के आदर-सत्कार का आयोजन कर रही है। मुहल्ले मे ऐसा विरला ही कोई सम्पन्न मनुष्य होगा, जिससे उसने कुछ कर्ज न लिया हो। वह इसे कर्ज समझती थी, पर देनेवाले दान समझकर देते थे। सारा मुहल्ला उसका सहायक था। सुन्नी अव मुहल्ले की लडकी थी। गोपा की इज्जत सवकी इज्जत है और गोपा के लिए तो नीद और आराम हराम था। दर्द से सिर फटा जा रहा है, आधी रात हो गई, मगर वह वैठी कुछ न कुछ सी रही है, या 'इस कोठी का धान उस कोठी' कर रही है। कितनी वात्सल्य से भरी आकाक्षा थी, जो कि देखनेवालो मे श्रद्धा उत्पन्न कर देती थी।

अकेली औरत और वह भी आधी जान की। क्या-क्या करे? जो काम दूसरो पर छोड देती है, उसी मे कुछ-न-कुछ कसर रह जाती है, पर उसकी हिम्मत है कि किसी तरह हार नही मानती।

पिछली वार उसकी दशा देखकर मुझसे न रहा गया। वोला—गोपा देवी अगर मरना ही चाहती हो, तो विवाह हो जाने के वाद मरो। मुझे भय है कि तुम उसके पहले ही न चल दो।

गोपा का मुरझाया हुआ मुख प्रमुदित हो उठा। वोली—इसकी चिंता न करो भैया, विधवा की आयु वहुत लम्वी होती है। तुमने सुना नही, 'रांड मरे न खँडहर ढहे।' लेकिन मेरी कामना यही है कि सुन्नी का ठिकाना लगाकर मैं भी चल दू। अव और जीकर क्या करूँगी, सोचो! क्या करूँ, अगर किसी तरह का विघ्न पड गया, तो किसकी वदनामी होगी? इन चार महीनो मे मुश्किल से घंटा भर सोती हूँगी। नीद ही नही आती, पर मेरा चित्त प्रसन्न है। मैं मरूँ या जीऊँ, मुझे यह सन्तोष तो होगा कि सुन्नी के लिए उसका वाप जो कर सकता

था, वह मैंने कर दिया। मदारीलाल ने अपनी सज्जनता दिखायी, तो मुझे भी तो अपनी नाक रखनी है।

एक देवी ने आकर कहा—बहन, जरा चलकर देख लो चाशनी ठीक हो गई है या नही। गोपा उसके साथ चाशनी की परीक्षा करने गयी और एक क्षण के बाद आकर बोली—जी चाहता है, सिर पीट लूं। तुमसे जरा बात करने लगी, उधर चाशनी इतनी कडी हो गई कि लड्डू दाँतो से लडेंगे। किससे क्या कहूँ!

मैंने चिढ़कर कहा—तुम व्यर्थ का झझट कर रही हो। क्यो नही किसी हलवाई को बुलाकर मिठाइयो का ठीका दे देती? फिर तुम्हारे यहाँ मेहमान ही कितने आएँगे, जिनके लिए यह तूमार बाँध रही हो। दस-पाँच की मिठाई उनके लिए बहुत होगी।

गोपा ने व्यथित नेत्रो से मेरी ओर देखा। मेरी यह आलोचना उसे बुरी लगी। इन दिनो उसे बात-बात पर क्रोध आ जाता था। बोली—भैया, तुम ये बातें न समझोगे। तुम्हे न माँ बनने का अवसर मिला, न पत्नी बनने का। सुन्नी के पिता का कितना नाम था, कितने आदमी उनके दम से जीते थे, क्या यह तुम नही जानते। वह पगडी मेरे ही सिर तो बँधी है। तुम्हे विश्वास न आएगा नास्तिक जो ठहरे, पर मैं तो उन्हे सदैव अपने अंदर बैठा हुआ पाती हूँ जो कुछ कर रहे हैं, वह कर रहे हैं। मैं मंदबुद्धि स्त्री भला अकेली क्या कर देती? वही मेरे सहायक हैं, वही मेरे प्रकाश हैं! यह समझ लो कि यह देह मेरी है; पर इसके अंदर जो आत्मा है, वह उनकी है। जो कुछ हो रहा है, उनके पुण्य आदेश से हो रहा है। तुम उनके मित्र हो। तुमने अपने सैकड़ो रुपये खर्च किए और इतना हैरान हो रहे हो। मैं तो उनकी सहगामिनी हूँ, लोक में भी, परलोक मे भी।

मैं अपना-सा मुँह लेकर रह गया।

4

जून मे विवाह हो गया। गोपा ने बहुत कुछ दिया और अपनी हैसियत से बहुत ज्यादा दिया; लेकिन फिर भी, उसे सन्तोष न हुआ था। आज सुन्नी के पिता होते तो न जाने क्या करते! बराबर रोती रही।

जाड़ों में मैं फिर दिल्ली गया। मैंने समझा था, अब गोपा सुखी होगी। लड़की का घर और वर दोनों आदर्श हैं। गोपा को इसके सिवा और क्या चाहिए? लेकिन सुख उसके भाग्य मे ही न था।

अभी कपड़े भी न उतारने पाया था कि उसने अपना दुखड़ा शुरू कर दिया—भैया, घर-द्वार सब अच्छा है, सास-ससुर भी अच्छे हैं; लेकिन जमाई निकम्मा

निकला। सुन्नी बेचारी रो-रोकर दिन काट रही है। तुम उसे देखो, तो पहचान न सको। उसकी परछाईं मात्र रह गई है। अभी कई दिन हुए आयी हुई थी, उसकी दशा देखकर छाती फटती थी। जैसे जीवन मे अपना पथ खो बैठी हो। न तन-बदन की सुध है, न कपडे-लत्ते की। मेरी सुन्नी की दुर्गति होगी, यह तो स्वप्न मे भी न सोचा था। बिल्कुल गुम-सुम हो गई है। कितना पूछा, बेटी, तुममे वह क्यो नही बोलता, किस बात पर नाराज है, लेकिन कुछ जवाब ही नही देती। बस, आखो से आँसू बहते रहते हैं। मेरी सुन्नी कुएँ मे गिर गई।

मैंने कहा—तुमने उसके घरवालो से पता नही लगाया?

'लगाया क्यो नही भैया, सब हाल मालूम हो गया। लौंडा चाहता है, मैं चाहे जिस राह जाऊँ, सुन्नी मेरी पूजा करती रहे। सुन्नी भला, इसे क्यो सहने लगी? उसे तो तुम जानते हो, कितनी अभिमानी है? वह उन स्त्रियो मे नही है, जो पति को देवता समझती हैं और उसका दुर्व्यवहार सहती रहती है। उसने सदैव दुलार और प्यार पाया है। बाप भी उस पर जान देता था। मैं आंख की पुतली समझती थी। पति मिला छैला, जो आधी-आधी रात तक मारा-मारा फिरता है। दोनो मे क्या बात हुई, यह कौन जान सकता है, लेकिन दोनों मे कोई गाँठ पड गई है। न वह सुन्नी की परवाह करता है, न सुन्नी उसकी परवाह करती है, मगर वह तो अपने रग मे मस्त है, सुन्नी प्राण दिये देती है। उसके लिए सुन्नी की जगह मुन्नी है, सुन्नी के लिए उसकी उपेक्षा है—और रुदन है।'

मैंने कहा—लेकिन तुमने सुन्नी को समझाया नही? उस लौंडे का क्या बिगडेगा? इसकी तो जिंदगी खराब हो जाएगी।

गोपा की आँखो मे आँसू भर आए बोली—भैया किस दिल से समझाऊँ? सुन्नी को देखकर तो मेरी छाती फटने लगती है। बस, यही जी चाहता है कि इसे अपने कलेजे मे रख लूं, कि इसे कोई कडी आंख से देख भी न सके। सुन्नी फूहड होती, कटु-भाषणी होती, आरामतलबी होती, तो समझाती भी। क्या यह समझाऊँ कि तेरा पति गली-गली मुह काला करता फिरे, फिर भी तू उसकी पूजा किया कर? मैं तो खुद यह अपमान न सह सकती। स्त्री-पुरुष में विवाह की पहली शर्त यह है कि दोनो सोलह आने एक-दूसरे के हो जाएँ। ऐसे पुरुष तो कम हैं, जो स्त्री को जौ-भर विचलित होते देखकर शात रह सकें, पर ऐसी स्त्रियाँ बहुत है, जो पति को स्वच्छंद समझती हैं। सुन्नी उन स्त्रियो मे नही है। वह अगर आत्मसमर्पण करती है, तो आत्मसमर्पण चाहती भी है, और यदि पति मे यह बात न हुई, तो वह उससे कोई सम्पर्क न रखेगी, चाहे उसका सारा जीवन रोते कट जाए।

यह कहकर गोपा भीतर गयी और एक सिंगारदान लाकर उसके अन्दर के

आभूषण दिखाती हुई बोली—सुन्नी इसे अबकी यही छोड़ गई। इसलिए आई ही थी। ये वे गहने है, जो मैंने न जाने कितना कष्ट सहकर बनवाए थे। इनके पीछे महीनो मारी-मारी फिरी थी। यो कहो कि भीख माँगकर जमा किए थे। सुन्नी अब इसकी ओर आँख उठाकर भी नही देखती। पहने तो किसके लिए? सिंगार करे तो किस पर? पांच संदूक कपडो के दिये थे। कपडे सीते सीते मेरी आँखें फूट गईं। यह सब कपडे उठाती लायी। इन चीजो से उसे घृणा हो गई है। बस कलाई मे दो काँच की चूडियाँ और एक उजली साड़ी, यही उसका सिंगार है।

मैंने गोपा को सांत्वना दी—मैं जाकर जरा केदारनाथ से मिलूंगा। देखूँ तो, वह किस रंग-ढंग का आदमी है।

गोपा ने हाथ जोडकर कहा—नही भैया, भूलकर भी न जाना, सुन्नी सुनेगी तो प्राण ही त्याग देगी। अभिमान की पुतली ही समझो उसे। रस्सी समझ लो, जिसके जल जाने पर भी बल नही जाते। जिन पैरो ने उसे ठुकरा दिया है, उन्हे वह कभी न सहलाएगी। उसे अपना बनाकर कोई चाहे तो लौंडी बना ले, लेकिन शासन तो उसने मेरा न सहा, दूसरो का क्या सहेगी।

मैंने गोपा से उस वक्त कुछ न कहा, लेकिन अवसर पाते ही लाला मदारीलाल से मिला। मैं रहस्य का पता लगाना चाहता था। संयोग से पिता और पुत्र, दोनो एक ही जगह पर मिल गए। मुझे देखते ही केदार ने इस तरह झुककर मेरे चरण छुए की मै उसकी शालीनता पर मुग्ध हो गया। तुरंत भीतर गया और चाय, मुरब्बा और मिठाइयाँ लाया। इतना सौम्य, इतना सुशील, इतना विनम्र युवक मैंने न देखा था। यह भावना ही न हो सकती थी कि इसके भीतर और बाहर मे कोई अंतर हो सकता है। जब तक रहा, सिर झुकाए बैठा रहा। उच्छृंखलता तो उसे छू भी नही गई थी।

जब केदार टेनिस खेलने गया, तो मैंने मदारीलाल से कहा—केदार बाबू तो बहुत सच्चरित्र जान पड़ते हैं, फिर स्त्री-पुरुष मे इतता मनोमालिन्य क्यो हो गया है?

मदारीलाल ने एक क्षण विचार करके कहा—इसका कारण इसके सिवा और क्या बताऊ कि दोनो अपने माँ-बाप के लाडले हैं, और प्यार लड़को को अपने मन का बना देता है। मेरा सारा जीवन संघर्ष मे कटा। अब जाकर जरा शांति मिली है। भोग-विलास का कभी अवसर ही न मिला। दिन-भर परिश्रम करता था, सध्या को पडकर सो रहता था। स्वास्थ्य भी अच्छा न था, इसलिए बार-बार यह चिन्ता सवार रहती थी कि कुछ संचय कर लूं। ऐसा न हो कि मेरे पीछे बाल-बच्चे भीख मागते फिरें। नतीजा यह हुआ कि इन महाशय को मुफ्त का धन मिला। सनक सवार हो गई। शराब उड़ने लगी। फिर ड्रामा

खेलने का शौक हुआ। धन की कमी थी ही नही, उस पर माँ-बाप के अकेले बेटे। उनकी प्रसन्नता ही हमारे जीवन का स्वर्ग था। पढना-लिखना तो दूर रहा, विलास की इच्छा बढती गई। रंग और गहरा हुआ, अपने जीवन का ड्रामा खेलने लगे। मैंने यह रंग देखा तो मुझे चिंता हुई। सोचा, ब्याह कर दूँ, ठीक हो जाएगा। गोपा देवी का पैगाम आया, तो मैंने तुरन्त स्वीकार कर लिया। मैं सुन्नी को देख चुका था। सोचा, ऐसी रूपवती पत्नी पाकर इसका मन स्थिर हो जाएगा, पर वह भी लाड़ली लडकी थी—हठीली, अबोध, आदर्शवादिनी। सहिष्णुता तो उसने सीखी ही न थी। समझौते का जीवन मे क्या मूल्य है, इसकी उसे खबर ही नही। लोहा लोहे से लड गया। वह अभिमान मे इसे पराजित करना चाहती है या उपेक्षा से, यही रहस्य है! और साहब, मैं तो वहू को ही अधिक दोषी समझता हूँ। लडके तो प्राय: मनचले होते हैं। लडकियाँ स्वभाव से ही सुशील होती हैं और अपनी जिम्मेदारी समझती हैं। उनकी सेवा, त्याग और प्रेम ही अस्त्र है, जिससे वह पुरुष पर विजय पाती है। उसमे ये गुण हैं नही। डोंगा कैसे पार होगा, ईश्वर ही जाने।

सहसा सुन्नी अदर से आ गई। बिल्कुल अपने चित्र की रेखा-सी, मानो मनोहर सगीत की प्रतिध्वनि हो। कुदन तपकर भस्म हो गया था। मिटी हुई आशाओ का इससे अच्छा चित्र नही हो सकता। उलाहना देती हुई बोली—आप जाने कब से बैठे हुए हैं, मुझे खबर तक नही, और शायद आप बाहर ही बाहर चले भी जाते?

मैंने आँसुओ के वेग को रोकते हुए कहा—नही सुन्नी, यह कैसे हो सकता था? तुम्हारे पास आ ही रहा था कि तुम स्वयं आ गई।

मदारीलाल कमरे के बाहर अपनी 'कार' की सफाई करने लगे। शायद मुझे सुन्नी से बात करने का अवसर देना चाहते थे।

सुन्नी ने पूछा—अम्माँ तो अच्छी तरह है?

'हाँ, अच्छी है।' तुमने अपनी यह क्या हालत बना रखी है?

'मैं अच्छी तरह से हूँ।'

'यह क्या बात है? तुम लोगो मे यह क्या अनबन है? गोपा देवी प्राण दिये डालती हैं। तुम खुद मरने की तैयारी कर रही हो। कुछ तो विचार से काम लो।'

सुन्नी के माथे पर बल पड गए—आपने नाहक यह विषय छेड दिया चाचा जी! मैंने तो यह सोचकर अपने मन को समझा लिया कि मैं अभागिन हूँ। बस, इसका निवारण मेरे बूते से बाहर है। मैं उस जीवन को मृत्यु से कही अच्छा समझती हूँ, जहाँ अपनी कदर न हो। मैं व्रत के बदले मे व्रत चाहती हूँ। जीवन का कोई दूसरा रूप मेरी समझ में नही आता। इस विषय मे किसी तरह का

समझौता करना मेरे लिए असम्भव है। नतीजे की मैं परवाह नही करती।

'लेकिन...'

'नही चाचाजी, इस विषय मे अव कुछ न कहिए, नही तो मैं चली जाऊँगी।'

'आखिर सोचो तो...'

'मैं सव सोच चुकी और तय कर चुकी। पशु को मनुष्य वनाना मेरी शक्ति के वाहर है।'

इसके वाद मेरे लिए अपना मुह वन्द कर लेने के सिवा और क्या रह गया था ?

5

मई का महीना था। मैं मंसूरी गया हुआ था कि गोपा का तार पहुँचा—'तुरन्त आओ, जरूरी काम है।' मैं घवरा तो गया लेकिन इतना निश्चित था कि कोई दुर्घटना नही हुई है। दूसरे दिन दिल्ली जा पहुँचा। गोपा मेरे सामने आकर खडी हो गई, निस्पद, मूक, निष्प्राण, जैसे तपेदिक का रोगी हो।

मैंने पूछा—कुशल तो है, मैं तो घवरा उठा।

उसने वुझी हुई आँखो से देखा और वोली—सच।

'सुन्नी तो कुशल से है ?'

'हाँ, अच्छी तरह है।'

'और केदारनाथ ?'

'वह भी अच्छी तरह है।'

'तो फिर माजरा क्या है ?'

'कुछ तो नही।'

'तुमने तार दिया और कहती हो—कुछ तो नही।'

'दिल घवरा रहा था, इससे तुम्हे वुला लिया। सुन्नी को किसी तरह समझाकर यहाँ लाना है। मैं तो सव कुछ करके थक गई।'

'क्या इधर कोई नयी वात हो गई ?'

'नयी तो नही है, लेकिन एक तरह से नयी ही समझो। केदार एक ऐक्ट्रेस के साथ कही भाग गया। एक सप्ताह से उसका कही पता नही है। सुन्नी से कह गया है—जव तक तुम रहोगी, घर नही आऊँगा। सारा घर सुन्नी का शत्रु हो रहा है, लेकिन वह वहाँ से टलने का नाम नही लेती। सुना है, केदार अपने वाप के दस्तखत वनाकर कई हजार रुपये वैंक से ले गया है।'

'तुम सुन्नी से मिली थी ?

'हाँ, तीन दिन से वरावर जा रही हूँ।'

'वह आना नही चाहती, तो रहने क्यो नही देतीं ?'

'वहाँ वह घुट-घुटकर मर जाएगी।'

मैं उन्ही पैरो लाला मदारीलाल के घर चला। हालाँकि मैं जानता था कि सुन्नी किसी तरह न आएगी, मगर, वहाँ पहुँचा, तो देखा—कुहराम मचा हुआ है। मेरा कलेजा धक् से रह गया। वहाँ तो अर्थी सज रही थी। मुहल्ले के सैंकड़ो आदमी जमा थे। घर मे 'हाय! हाय!' की क्रंदन-ध्वनि आ रही थी। यह सुन्नी का शव था!

मदारीलाल मुझे देखते ही मुझसे उन्मत्त भाव से लिपट गए और वोले—

भाई साहव, मैं तो लुट गया। लडका भी गया, वहू भी गयी, जिन्दगी ही गारत हो गई।

मालूम हुआ कि जव से केदार गायव हो गया था, सुन्नी और भी ज्यादा उदास रहने लगी थी। उसने उसी दिन अपनी चूडियाँ तोड डाली थी और माँग का सिंदूर पोछ डाला था। सास ने जव आपत्ति की, तो उनको अपशव्द कहे। मदारीलाल ने समझाना चाहा, तो उन्हे भी जली-कटी सुनायी। ऐसा अनुमान होता था—उन्माद हो गया है। लोगो ने उससे वोलना छोड दिया था। आज प्रात.काल यमुना-स्नान करने गयी। अँधेरा था, सारा घर सो रहा था, किसी को नही जगाया। जव दिन चढ गया और वहू घर मे न मिली, तो उसकी तलाश होने लगी। दोपहर को पता चला कि यमुना गयी है। लोग उधर भागे। वहाँ उसकी लाश मिली। पुलिस आयी, शव की परीक्षा हुई। अव जाकर शव मिला है। मैं कलेजा थामकर वैठ गया। हाय अभी थोडे दिन पहले जो सुन्दरी पालकी पर सवार होकर आयी थी, आज वह चार के कन्धे पर जा रही है!

मैं अर्थी के साथ हो लिया और वहाँ से लौटा, तो रात के दस वज गए थे। मेरे पाँव काँप रहे थे। मालूम नही यह खवर पाकर गोपा की क्या दशा होगी प्राणात न हो जाए, मुझे यही भय हो रहा था। सुन्नी उसकी प्राण थी। उसके जीवन का केन्द्र थी। उस दुखिया के उद्यान मे यही एक पौधा वचा रहा था। उसे वह हृदय-रक्त से सीच-सीचकर पाल रही थी। उसके वसंत का सुनहरा स्वप्न ही उसका जीवन था—उसमे कोपलें निकलेंगी, फूल खिलेंगे, फल लगेंगे, चिड़ियाँ उसकी डालियो पर वैठकर अपने सुहाने राग गाएँगी, किन्तु आज निष्ठुर नियति ने उस जीवन-सूत्र को उखाडकर फेंक दिया। और अव उसके जीवन का कोई आधार न था! वह विन्दु ही मिट गया था, जिस पर जीवन की सारी रेखाएँ एकत्र हो जाती थी।

दिल को दोनो हाथो से थामे, मैंने जंजीर खटखटायी। गोपा एक लालटेन लिये निकली। मैंने गोपा के मुख पर एक नए आनंद की झलक देखी।

मेरी शोक-मुद्रा देखकर उसने मातृवत् प्रेम से मेरा हाथ पकड लिया और

बोली—आज तो तुम्हे सारा दिन रोते ही कटा। अर्थी के साथ बहुत से आदमी रहे होंगे! मेरे जी मे भी आया कि चलकर सुन्नी का अंतिम दर्शन कर लूं। लेकिन मैंने सोचा, जब सुन्नी ही न रही, तो उसकी लाश मे क्या रखा है। न गयी।

मैं विस्मय से गोपा का मुँह देखने लगा। तो इसे यह शोक-समाचार मिल चुका है। फिर भी यह शांति और अविचल धैर्य! बोला—अच्छा किया न गयीं। रोना ही तो था।

'हां, और क्या! रोयी यहाँ भी, लेकिन तुमसे सच कहती हूँ, दिल से नही रोयी। न जाने कैसे आँसू निकल आए। मुझे तो सुन्नी की मौत से प्रसन्नता हुई। दुखिया अपनी 'मान-मर्यादा' लिये संसार से विदा हो गई, नही तो न जाने क्या-क्या देखना पडता। इसलिए और भी प्रसन्न हूँ कि उसने अपनी आन निभा दी। स्त्री के जीवन मे प्यार न मिले, तो उसका अंत हो जाना ही अच्छा। तुमने सुन्नी की मुद्रा देखी थी? लोग कहते हैं, ऐसा जान पडता था—मुस्करा रही है। मेरी सुन्नी सचमुच देवी थी? भैया, आदमी इसलिए थोडे ही जीना चाहता है कि रोता रहे। जब मालूम हो गया कि जीवन मे दुःख के सिवा और कुछ नही है, तो आदमी जीकर क्या करे? किसलिए जिए? खाने और सोने और मर जाने के लिए? यह मैं नही कहती कि मुझे सुन्नी की याद आएगी और मैं उसे याद करके रोऊँगी नही। लेकिन वह शोक क आँसू न होंगे, हर्ष के आँसू होगे। बहादुर बेटे की माँ उसकी वीरगति पर प्रसन्न होती है! सुन्नी की मौत मे क्या कुछ कम गौरव है, मैं आँसू बहाकर उस गौरव का अनादर कैसे करूँ? वह जानती है, और चाहे सारा ससार उसकी निंदा करे उसकी माता सराहना ही करेगी। उसकी आत्मा से यह आनन्द भी छीन लू? लेकिन अब रात ज्यादा हो गई है। ऊपर जाकर सो रहो। मैंने तुम्हारी चार-पाई बिछा दी है, मगर देखो, अकेले पड़े-पडे रोना नही। सुन्नी ने वही किया, जो उसे करना चाहिए था। उसके पिता होते, तो आज सुन्नी की प्रतिमा बना कर पूजते।'

मैं ऊपर जाकर लेटा, तो मेरे दिल का बोझ बहुत हलका हो गया था; किन्तु रह-रह कर यह संदेह हो जाता था कि गोपा की यह शांति उसकी अपार व्यथा का ही रूप तो नही है?

नशा

(1)

ईश्वरी एक वडे जमीदार का लडका था और मैं एक गरीब क्लर्क का जिसके पास मेहनत-मजूरी के सिवा और कोई जायदाद न थी। हम दोनो मे परस्पर बहसे होती रहती थी। मैं जमीदारो की बुराई करता, उन्हे हिंसक पशु और खून चूसने वाली जोक और वृक्षो की चोटी पर फूलनेवाला बंझा कहता। वह जमीदारो का पक्ष लेता, पर स्वभावत. उसका पहलू कुछ कमजोर होता था ? क्योकि उसके पास जमीदारो के अनुकूल कोई दलील न थी। वह कहता कि सभी मनुष्य बरावर नही होते, छोटे-वडे हमेशा होते रहते हैं और होते रहेंगे। लचर दलील थी। किसी मानुषीय या नैतिक नियम से इस व्यवस्था का औचित्य सिद्ध करना कठिन था। मैं इस वाद-विवाद की गर्मी-गर्मी मे अक्सर तेज हो जाता और लगनेवाली वात कह जाता, लेकिन ईश्वरी हारकर भी मुस्कराता रहता था। मैंने उसे कभी गर्म होते नही देखा। शायद इसका कारण यह था कि वह अपने पक्ष की कमजोरी समझता था।

नौकरो से वह सीधे मुँह बात न करता था। अमीरो मे जो एक वेदर्दी और उद्दण्डता होती है, इसमे उसे भी प्रचुर भाग मिला था। नौकर ने विस्तर लगाने मे जरा भी देर की, दूध जरूरत से ज्यादा गर्म या ठडा हुआ, साइकिल अच्छी तरह साफ नही हुई, तो वह अपने से वाहर हो जाता ! सुस्ती या वदतमीजी भी उसे जरा भी वरदाश्त न थी, पर दोस्तो से और विशेपकर मुझसे उसका व्यवहार सौहार्द और नम्रता से भरा हुआ होता था। शायद उसकी जगह मैं होता, तो मुझमे भी वही कठोरताएँ पैदा हो जाती, जो उसमे थी, क्योकि मेरा लोक-प्रेम सिद्धातो पर नही, निजी दशाओ पर टिका हुआ था, लेकिन वह मेरी जगह होकर भी शायद अमीर ही रहता, क्योकि वह प्रकृति से ही विलासी और ऐश्वर्य-प्रिय था।

अवकी दशहरे की छुट्टियो मे मैंने निश्चय किया कि घर न जाऊँगा। मेरे पास किराए के लिए रुपये न थे और न मैं घरवालो को तकलीफ देना चाहता था। मैं जानता हूँ, वे मुझे जो कुछ देते हैं, वह उनकी हैसियत से वहुत ज्यादा है, इसके साथ ही परीक्षा का भी खयाल था। अभी वहुत कुछ पढना वाकी था

और घर जाकर कौन पढता है। वोर्डिंग हाऊस मे भूत की तरह अकेले पडे रहने को भी जी न चाहता था। इसलिए जव ईश्वरी ने मुझे अपने घर चलने का नेवता दिया, तो मैं विना आग्रह के राजी हो गया। ईश्वरी के साथ परीक्षा की तैयारी खूब हो जाएगी। वह अमीर होकर भी मेहनती और जहीन है।

उसने इसके साथ ही कहा—लेकिन भाई, एक वात का ख्याल रखना। वहाँ अगर जमीदारो की निंदा की, तो मुआमिला विगड जाएगा और मेरे घरवालो को बुरा लगेगा। वह लोग तो असामियो पर इसी दावे से शासन करते हैं कि ईश्वर ने असामियो को उनकी सेवा के लिए ही पैदा किया है। असामी भी यही समझता है। अगर उसे सुझा दिया जाए कि जमीदार और असामी मे कोई मौलिक भेद नही है, तो जमीदारो का कही पता न लगे।

मैंने कहा—तो क्या तुम समझते हो कि मैं वहाँ जाकर कुछ और हो जाऊँगा।

'हाँ, मैं तो यही समझता हूँ।'

'तुम गलत समझते हो।'

ईश्वरी ने इसका कोई जवाब न दिया। कदाचित् उसने इस मुआमले को मेरे विवेक पर छोड दिया। और वहुत अच्छा किया। अगर वह अपनी बात पर अडता, तो मैं भी जिद पकड़ लेता।

2

सेकड क्लास तो क्या, मैंने कभी इंटर क्लास मे भी सफर न किया था। अवकी सेकंड क्लास मे सफर का सौभाग्य प्राप्त हुआ। गाड़ी तो नौ वजे रात को आती थी, पर यात्रा के हर्ष मे हम शाम को ही स्टेशन जा पहुचे। कुछ देर इधर-उधर सैर करने के वाद रिफ्रेशमेट-रूम मे जाकर हम लोगो ने भोजन किया। मेरी वेश भूषा और रग-ढग से पारखी खानसामो को यह पहचानने मे देर न लगी कि मालिक कौन है और पिछलग्गू कौन, लेकिन न जाने क्यों मुझे उनकी गुस्ताखी बुरी लग रही थी। पैसे ईश्वरी के जेव से गए। शायद मेरे पिता को जो वेतन मिलता है, उससे ज्यादा इन खानसामो को इनाम-इकराम मे मिल जाता हो। एक अठन्नी तो चलते समय ईश्वरी ही ने दी। फिर भी मैं उन सभी से उसी तत्परता और विनय की अपेक्षा करता था, जिससे वे ईश्वरी की सेवा करते थे। क्योकि ईश्वरी के हुक्म पर सव-के-सव दौडते हैं; लेकिन मैं कोई चीज माँगता हूँ, तो उतना उत्साह नही दिखाते। मुझे भोजन कुछ स्वाद न मिला। यह भेद मेरे ध्यान को सम्पूर्ण रूप से अपनी ओर खीचे हुए था।

गाड़ी आयी, हम दोनो सवार हुए। खानसामो ने ईश्वरी को प्रणाम किया।

मेरी ओर देखा भी नही ।

ईश्वरी ने कहा—कितने तमीजदार हैं ये सब ? एक हमारे नौकर हैं कि कोई काम करने का ढग नही ।

मैंने खट्टे मन से कहा ..इसी तरह अगर तुम अपने नौकरो को भी आठ आने रोज इनाम दिया करो, तो शायद इनसे ज्यादा तमीजदार हो जाएँ ।

'तो क्या तुम समझते, हो यह सब केवल इनाम के लालच से इतना अदब करते हैं ?'

'जी नही, कदापि नही ! तमीज और अदब तो इनके रक्त मे मिल गया है !'

गाडी चली । डाक थी । प्रयाग से चली तो प्रतापगढ जाकर रुकी । एक आदमी ने हमारा कमरा खोला । मैं तुरत चिल्ला उठा—दूसरा दरजा है—सेकंड क्लास है ।

उस मुसाफिर ने डिब्बे के अन्दर आकर मेरी ओर एक विचित्र उपेक्षा की दृष्टि से देखकर कहा—जी हाँ, सेवक इतना समझता है, और बीचवाले बर्थ पर बैठ गया । मुझे कितनी लज्जा आयी, कह नही सकता ।

भोर होते-होते हम लोग मुरादाबाद पहुचे । स्टेशन पर कई आदमी हमारा स्वागत करने के लिए खडे थे । दो भद्र पुरुष थे । पाँच बेगार-बेगारो ने हमारा लगेज उठाया । दोनो भद्र-पुरुष पीछे-पीछे चले । एक मुसलमान था रियासत अली, दूसरा ब्राह्मण था रामहरख । दोनो ने मेरी ओर अपरिचित नेत्रो से देखा, मानो कह रहे है, तुम कौवे होकर हंस के साथ कैसे ?

रियासत अली ने ईश्वरी से पूछा—यह बाबू साहब क्या आपके साथ पढते हैं ?

ईश्वरी ने जवाब दिया—हाँ, साथ पढते भी हैं और साथ रहते भी है । यो कहिए कि आप ही की बदौलत मैं इलाहाबाद पडा हुआ हूँ, नही कब का लखनऊ चला आया होता । अबकी मैं इन्हे घसीट लाया । इनके घर से कई तार आ चुके थे, मगर मैंने इनकारी-जवाब दिलवा दिए । आखिरी तार तो अर्जेन्ट था, जिसकी फीस चार आने प्रति शब्द है, पर यहाँ से उसका भी जवाब इनकारी ही गया ।

दोनो सज्जनो ने मेरी ओर चकित नेत्रो से देखा । आतंकित हो जाने की चेष्टा करते जान पडे ।

रियासत अली ने अर्द्धशंका के स्वर मे कहा—लेकिन आप बडे सादे लिबास मे रहते हैं ।

ईश्वरी ने शंका निवारण की—महात्मा गांधी के भक्त हैं साहब ! खद्दर के सिवा कुछ पहनते ही नही । पुराने सारे कपडे जला डाले ! यो कहो कि राजा है । ढाई लाख सालाना की रियासत, पर आपकी सूरत देखो तो मालूम होता है,.

अभी अनाथालय से पकडकर आये हैं !

रामहरख बोले—अमीरो का ऐसा स्वभाव बहुत कम देखने मे आता है कोई भाँप ही नही सकता।

रियासत अली ने समर्थन किया—आपने महाराजा चाँगली को देखा होता तो दाँतो उँगली दबाते। एक गाढ़े की मिर्जई और चमरौंधे जूते पहने बाजारो मे घूमा करते थे। सुनते हैं, एक बार बेगार मे पकड़ गए थे और उन्ही ने दस लाख से कालेज खोल दिया।

मैं मन से कटा जा रहा था; पर न जाने क्या बात थी कि यह सफेद झूठ उस वक्त मुझे हास्यास्पद न जान पडा। उसके प्रत्येक वाक्य के साथ मानो मैं उस कल्पित वैभव के समीपतर आता जाता था।

मैं शहसवार नही हूँ। हाँ, लडकपन मे कई बार लद्दू घोडो पर सवार हुआ हूँ। यहाँ देखा तो दो कला-रास घोड़े हमारे लिए तैयार खडे थे। मेरी तो जान ही निकल गई। सवार तो हुआ, पर बोटियाँ काँप रही थी। मैंने चेहरे पर शिकन न पडने दिया। घोडे को ईश्वरी के पीछे डाल दिया। खैरियत यह हुई कि ईश्वरी ने घोडे को तेज न किया, वरना शायद मैं हाथ-पाँव तुडवाकर लौटता। सम्भव है, ईश्वरी ने समझ लिया हो कि यह कितने पानी मे है।

3

ईश्वरी का घर क्या था, किला था। इमामबाडे का-सा फाटक। द्वार पर पहरेदार टहलता हुआ, नौकरो का कोई हिसाब नही, एक हाथी बँधा हुआ। ईश्वरी ने अपने पिता, चाचा, ताऊ आदि सबसे मेरा परिचय कराया और उसी अतिशयोक्ति के साथ। ऐसी हवा बाँधी कि कुछ न पूछिए। नौकर-चाकर ही नही, घर के लोग भी मेरा सम्मान करने लगे। देहात के जमीदार, लाखो का मुनाफा, मगर पुलिस कान्सटेबिल को अफसर समझने वाले। कई महाशय तो मुझे हुजूर-हुजूर कहने लगे।

जब जरा एकान्त हुआ, तो मैंने ईश्वरी से कहा—तुम बडे शैतान हो यार, मेरी मिट्टी क्यो पलीद कर रहे हो ?

ईश्वरी ने दृढ मुस्कान के साथ कहा—इन गधो के सामने यही चाल जरूरी थी, वरना सीधे मुँह बोलते भी नही।

जरा देर के बाद नाई हमारे पाँव दबाने आया। कुँवर लोग स्टेशन से आये हैं, थक गये होगे। ईश्वरी ने मेरी ओर इशारा करके कहा—पहले कुँवर साहब के पाँव दबा।

मैं चारपाई पर लेटा हुआ था। मेरे जीवन मे ऐसा शायद ही कभी हुआ हो कि किसी ने मेरे पाँव दबाए हो। मैं इसे अमीरो के चोचले, रईसो का गधा-

पन और वडे आदमियो की मुटमरदी और जाने क्या-क्या कहकर ईश्वरी का परिहास किया करता और आज मैं पोतडो का रईस वनने का स्वांग भर रहा था।

इतने मे दस वज गए। पुरानी सभ्यता के लोग थे। नयी रोशनी अभी केवल पहाड की चोटी तक पहुँच पाई थी। अदर से भोजन का वुलावा आया। हम स्नान करने चले। मैं हमेशा अपनी धोती खुद छाँट लिया करता हूँ, मगर यहाँ मैंने ईश्वरी की ही भाँति अपनी धोती भी छोड दी। अपने हाथो अपनी धोती छाँटते शर्म आ रही थी। अदर भोजन करने चले। होस्टल मे जूते पहने मेज पर जा डटते थे। यहाँ पाँव धोना आवश्यक था। कहार पानी लिये खडा था। ईश्वरी ने पाँव वढा दिए। कहार ने उसके पाँव धोए। मैंने भी पाँव वढा दिए। कहार ने मेरे पाँव भी धोए। मेरा वह विचार न जाने कहाँ चला गया था।

4

सोचा था, वहाँ देहात मे एकाग्र होकर खूव पढेंगे, पर वहाँ सारा दिन सैर-सपाटे मे कट जाता था। कहीं नदी मे वजरे पर सैर कर रहे हैं, कही मछलियो या चिडियो का शिकार खेल रहे है, कही पहलवानो की कुश्ती देख रहे हैं, कहीं शतरज पर जमे हैं। ईश्वरी खूव अंडे मँगवाता और कमरे में 'स्टोव' पर आमलेट वनते। नौकरो का एक जत्था हमेशा घेरे रहता। अपने हाथ-पाँव हिलाने की कोई जरूरत नही। केवल जुवान हिला देना काफी है। नहाने वैठो तो आदमी नहलाने को हाजिर, लेटे तो आदमी पखा झलने को खडे।

महात्मा गाधी का कुवर चेला मशहूर था। भीतर से वाहर तक मेरी धाक थी। नाश्ते मे जरा भी देर न होने पाए, कही कुवर साहव नाराज न हो जाएँ, विछावन ठीक समय पर लग जाए, कुवर साहव के सोने का समय आ गया। मैं ईश्वरी से भी ज्यादा नाजुक दिमाग वन गया था या वनने पर मजवूर किया गया था। ईश्वरी अपने हाथ से विस्तर विछा ले, लेकिन कुवर मेहमान अपने हाथो कैसे अपना विछावन विछा सकते है। उसकी महानता मे वट्टा लग जाएगा।

एक दिन सचमुच यही वात हो गई। ईश्वरी घर मे था। शायद अपनी माता से कुछ वातचीत करने मे देर हो गई। यहाँ दस वज गए। मेरी आँखें नीद से झपक रही थी, मगर विस्तर कैसे लगाऊँ ? कुंवर जो ठहरा। कोई साढे ग्यारह वजे महरा आया। वड़ा मुँहलगा नौकर था। घर के धधो मे मेरा विस्तर लगाने की उसे सुधि ही न रही। अब जो याद आई, तो भागा हुआ आया। मैंने ऐसी डाँट वताई कि उसने भी याद किया होगा।

ईश्वरी मेरी डाँट सुनकर वाहर निकल आया और वोला—तुमने वहुत

अच्छा किया । यह सव हरामखोर इसी व्यवहार के योग्य हैं ।

इसी तरह ईश्वरी एक दिन एक जगह दावत मे हुआ गया था । शाम हो गई, मगर लैम्प न जला । लैम्प मेज पर रखा हुआ था । दियासलाई भी थी, लेकिन ईश्वरी खुद कभी लैम्प नही जलाता था । फिर कुवर साहव कैसे जलाएँ ? मैं झुझला रहा था । समाचार-पत्र आया रखा हुआ था । जी उधर लगा हुआ था, पर लैम्प नदारद । दैवयोग से उसी वक्त मुशी रियासत अली आ निकले । मैं उन्ही पर उवल पडा, ऐसी फटकार वताई कि वेचारा उल्लू हो गया—तुम लोगो को इतनी फिक्र भी नही कि लैम्प तो जलवा दो ! मालूम नही, ऐसे कामचोर आदमियो का यहाँ कैसे गुजर होता है । मेरे यहाँ घटे-भर निर्वाह न हो । रियासत अली ने कापते हुए हाथों से लैम्प जला दिया ।

वहाँ एक ठाकुर अक्सर आया करता था । कुछ मनचला आदमी था, महात्मा गाधी का परम भक्त । मुझे महात्माजी का चेला समझकर मेरा वडा लिहाज करता था, पर मुझसे कुछ पूछते संकोच करता था । एक दिन मुझे अकेला देख-कर आया और हाथ बाँधकर वोला—सरकार तो गांधी वावा के चेले हैं न ? लोग कहते हैं कि यह सुराज हो जाएगा तो जमीदार न रहेगे ।

मैंने शान जमाई—जमीदारो के रहने की जरूरत ही क्या है ? यह लोग गरीवी का खून चूसने के सिवा और क्या करते हैं ?

ठाकुर ने फिर पूछा—तो क्यो, सरकार, सव जमीदारो की जमीन छीन ली जाएगी ?

मैंने कहा—वहुत से लोग तो खुशी से दे देंगे जो लोग खुशी से न देंगे, उनकी जमीन छीननी ही पड़ेगी । हम लोग तो तैयार वैठे हुए हैं । ज्यों ही स्वराज्य हुआ, अपने सारे इलाके असामियों के नाम हिवा कर देंगे ।

मैं कुरसी पर पाँव लटकाए वैठा था । ठाकुर मेरे पाँव दवाने लगा । फिर वोला—आजकल जमीदार लोग वड़ा जुलुम करते हैं सरकार ! हमे भी हुजूर अपने इलाके मे थोड़ी-सी जमीन दे दें, तो चलकर वही आपकी सेवा मे रहें ।

मैंने कहा—अभी तो मेरा कोई अख्तियार नहीं है भाई, लेकिन ज्यो ही अख्तियार मिला, मैं सवसे पहले तुम्हे वुलाऊँगा । तुम्हें मोटर-ड्राइवरी सिखा कर अपना ड्राइवर वना लूंगा ।

सुना, उस दिन ठाकुर ने खूव भंग पी और अपनी स्त्री को खूव पीटा और गाँव के महाजन से लड़ने पर तैयार हो गया ।

5

छुट्टी इस तरह तमाम हुई और हम फिर प्रयाग चले । गाँव के वहुत-से लोग

हम लोगो को पहुचाने आये । ठाकुर तो हमारे साथ स्टेशन तक आया । मैंने भी अपना पार्ट खूब सफाई से खेला और अपनी कुवेरोचित विनय और देवत्व की मुहर हरेक हृदय पर लगा दी । जी तो चाहता था । हरेक नौकर को अच्छा इनाम दू, लेकिन, सामर्थ्य कहाँ थी । वापसी टिकट था ही, केवल गाडी मे वैठना था, पर गाडी आयीतो ठसाठस भरी हुई । दुर्गापूजा की छुट्टियां भोगकर सभी लोग लौट रहे थे । सेकड क्लास मे तिल रखने की जगह नही । इटर क्लास की हालत उससे भी वदतर । यह आखिरी गाडी थी । किसी तरह रुक न सकते थे । वडी मुश्किल से तीसरे दरजे मे जगह मिली । हमारे ऐश्वर्य ने वहाँ अपना रग जमा लिया, मगर मुझे उसमे वैठना वुरा लग रहा था । आये थे आराम से लेटे-लेटे, जा रहे थे सिकुडे हुए । पहलू वदलने की भी जगह न थी ।

कई आदमी पढे-लिखे भी थे । वे आपस मे अँगरेजी राज्य की तारीफ करते जा रहे थे । एक महाशय वोले—ऐसा न्याय तो किसी राज्य मे नही देखा । छोटे-वडे सव वरावर । राजा भी किसी पर अन्याय करे, तो अदालत उसकी भी गर्दन दवा देती है ।

दूसरे सज्जन ने समर्थन किया—अरे साहव, आप खुद वादशाह पर दावा कर सकते हैं । अदालत मे वादशाह पर डिग्री हो जाती है ।

एक आदमी, जिसकी पीठ पर वडा गट्ठर वँधा था, कलकत्ते जा रहा था । इन्ही गठरी रखने की जगह न मिलती थी । पीठ पर वाँधे हुए था । इससे वेचैन होकर वार-वार द्वार पर खड़ा हो जाता । मैं द्वार के पास ही वैठा हुआ था । उसका वार-वार आकर मेरे मुह को अपनी गठरी से रगडना मुझे वहुत वुरा लग रहा था । एक तो हवा यो ही कम थी, दूसरे उस गँवार का आकर मेरे मुह पर खडा हो जाना, मानो मेरा गला दवाना था । मैं कुछ देर तक जव्त किए वैठा रहा । एकाएक मुझे क्रोध आ गया । मैंने उसे पकडकर पीछे ढकेल दिया और दो तमाचे जोर-जोर से लगाए ।

उसने आँखें निकालकर कहा—क्यो मारते हो वावूजी, हमने भी किराया दिया है ।

मैंने उठकर दो-तीन तमाचे और जड दिए ।

गाडी मे तूफान आ गया । चारो ओर से मुझ पर वौछार पडने लगी ।

अगर इतने नाजुक मिजाज हो, तो अव्वल दर्जे मे क्यो नही वैठे ?"

'कोई वडा आदमी होगा, तो अपने घर का होगा ! मुझे इस तरह मारते तो दिखा देता ।'

'क्या कसूर किया था वेचारे ने ! गाडी मे सांस लेने की जगह नही खिड़की पर जरा सांस लेने खडा हो गया, तो इस पर इतना क्रोध ! अमीर होकर क्या

आदमी अपनी इन्सानियत बिल्कुल खो देता है ?'

'यह भी अंगरेजी राज है, जिसका आप बखान कर रहे थे।'

एक ग्रामीण बोला—दफ्तरन माँ घुस पावत नही, उस पै इत्ता मिजाज !

ईश्वरी ने अंगरेजी में कहा—What an idiot you are, Bir !

और मेरा नशा अब कुछ-कुछ उतरता हुआ मालूम होता था।

स्वामिनी

शिवदास ने भंडारे की कुंजी अपनी वहू रामप्यारी के सामने फेंककर अपनी बूढी आँखो मे आँसू भरकर कहा—वहू, आज से गिरस्ती की देख-भाल तुम्हारे ऊपर है। मेरा सुख भगवान् से नही देखा गया, नही तो क्या जवान वेटे को यो छीन लेते ! उसका काम करने वाला तो कोई चाहिए। एक हल तोड़ दूं तो गुजारा न होगा। मेरे ही कुकरम से भगवान् का यह कोप आया है, और मैं ही अपने माथे पर उसे लूंगा। विरजू का हल अब मैं ही सँभालूंगा। अव घर की देख-रेख करने वाला, धरने उठाने वाला तुम्हारे सिवा दूसरा कौन है? रोओ मत वेटा, भगवान् की जो इच्छा थी, वह हुआ, और जो इच्छा होगी, वह होगा। हमारा-तुम्हारा क्या वस है? मेरे जीते-जी तुम्हे कोई टेढी आख से देख भी न सकेगा। तुम किसी वात का सोच मत करो। विरजू गया, तो मैं तो अभी वैठा ही हुआ हू।

रामप्यारी और रामदुलारी दो सगी वहनें थी। दोनो का विवाह—मथुरा और विरजू—दो सगे भाइयो से हुआ। दोनो वहनें नैहर की तरह ससुराल मे भी प्रेम और आनन्द से रहने लगी। शिवदास को पेन्शन मिली। दिन-भर द्वार पर गप-शप करते। भरा-पूरा परिवार देखकर प्रसन्न होते और अधिकतर धर्म-चर्चा मे लगे रहते थे, लेकिन दैवगति से वडा लडका विरजू वीमार पडा और आज उसे मरे हुए पन्द्रह दिन वीत गए। आज क्रिया-करम से फुरसत मिली और शिवदास ने सच्चे कर्मवीर की भाति फिर जीवन-सग्राम के लिए कमर कस ली। मन मे उसे चाहे कितना ही दुःख हुआ हो, उसे किसी ने रोते नही देखा। आज अपनी वहू को देखकर एक क्षण के लिए उसकी आँखें सजल हो गई, लेकिन उसने मन को संभाला और रुद्ध कंठ से उसे दिलासा देने लगा। कदाचित् उसने सोचा था, घर की स्वामिनी वनकर विधवा के आँसू पुंछ जाएगे, कम-से-कम उसे इतना कठिन परिश्रम न करना पडेगा, इसलिए उसने भडारे की कुंजी वहू के सामने फेंक दी थी। वैधव्य की व्यथा को स्वामित्व के गर्व से दवा देना चाहता था।

रामप्यारी ने पुलकित कंठ से कहा—यह कैसे हो सकता है दादा, कि तुम

मेहनत-मजदूरी करो और मैं मालकिन बनकर बैठूं ? काम धन्धे मे लगी रहूगी, तो मन बहला रहेगा। बैठे-बैठे तो रोने के सिवा और कुछ न होगा।

शिवदास ने समझाया—बेटा, दैवगति से तो किसी का वस नही, रोने-धोने से हलकानी के सिवा और क्या हाथ आएगा ? घर मे भी तो बीसो काम हैं। कोई साधु-सन्त आ जाएँ, कोई पहुना ही आ पहुचे, तो उनके सेवा-सत्कार के लिए किसी को घर पर रहना ही पडेगा।

बहू ने बहुत-से हीले किए, पर शिवदास ने एक न सुनी।

2

शिवदास के बाहर चले जाने पर रामप्यारी ने कुंजी उठायी, तो उसे मन मे अपूर्व गौरव और उत्तरदायित्व का अनुभव हुआ। जरा देर के लिए पति-वियोग का दुःख उसे भूल गया। उसकी छोटी बहिन और देवर दोनो काम करने गए हुए थे। शिवदास बाहर था। घर बिल्कुल खाली था। इस वक्त वह निश्चित होकर भंडारे को खोल सकती है। उसमें क्या-क्या समान है, क्या-क्या विभूति है, यह देखने के लिये उसका मन लालायित हो उठा। इस घर मे वह कभी न आयी थी। जब कभी किसी को कुछ देना या किसी से कुछ लेना होता था, तभी शिवदास आकर इस कोठरी को खोला करता था। फिर उसे बन्द कर वह ताली अपनी कमर मे रख लेता था।

रामप्यारी कभी-कभी द्वार की दराजो से भीतर झाँकती थी, पर अंधेरे में कुछ न दिखाई देता। सारे घर के लिये वह कोठरी तिलिस्म या रहस्य था, जिसके विषय मे भाँति-भाँति की कल्पनाएं होती रहती थी। आज रामप्यारी को वह रहस्य खोलकर देखने का अवसर मिल गया। उसने बाहर का द्वार बन्द कर दिया कि कोई उसे भंडार खोलते न देख ले, नही सोचेगा, बेजरूरत इसने क्यो खोला। तब आकर काँपते हुए हाथो से ताला खोला। उसकी छाती धडक रही थी कि कोई द्वार न खटखटाने लगे। अन्दर पाँव रखा तो उसे कुछ उसी प्रकार का, लेकिन उससे कही तीव्र आनन्द हुआ, जो उसे अपने गहने-कपडे की पिटारी खोलने मे होता था। मटको मे गुड, शक्कर, गेहूं, जौ आदि चीजें रखी हुई थी। एक किनारे बडे-बडे बरतन धरे थे, जो शादी-ब्याह के अवसर पर निकाले जाते थे, या माँगे दिये जाते थे। एक आले पर मालगुजारी की रसीदें और लेन-देन के पुरजे बंधे हुए रखे थे। कोठरी मे एक विभूति-सी छायी थी, मानो लक्ष्मी अज्ञात रूप से विराज रही हो। उस विभूति की छाया मे राम-प्यारी आध घन्टे तक बैठी अपनी आत्मा को तृप्त करती रही। प्रतिक्षण उसके हृदय पर ममत्व का नशा-सा छाया जा रहा था। जब वह उस कोठरी से

निकली, तो उसके मन के संस्कार बदल गये थे, मानो किसी ने उस पर मन्त्र डाल दिया हो।

उसी समय द्वार पर किसी ने आवाज दी। उसने तुरन्त भंडारे का द्वार बन्द किया और जाकर सदर दरवाजा खोल दिया। देखा तो पडोसिन झुनिया खडी है और एक रुपया उधार माँग रही है।

रामप्यारी ने रुखाई से कहा—अभी तो एक पैसा घर मे नही है जीजी, क्रिया-कर्म मे सब खरच हो गया।

झुनिया चकरा गई। चौधरी के घर मे इस समय एक रुपया भी नही है, यह विश्वास करने की बात न थी। जिसके यहा सैकडो का लेन-देन है, वह सब कुछ क्रिया-कर्म मे नही खर्च कर सकता। अगर शिवदास ने बहाना किया होता, तो उसे आश्चर्य न होता। प्यारी तो अपने सरल स्वभाव के लिए गाँव मे मशहूर थी। अक्सर शिवदास की आँखें बचाकर पडोसियो की इच्छित वस्तुएँ दे दिया करती थी। अभी कल ही उसने जानकी को सेर-भर दूध दिया। यहाँ तक कि अपने गहने तक माँगे दे देती थी। कृपण शिवदास के घर मे ऐसी सखरच बहू का आना गाँव वाले अपने सौभाग्य की बात समझते थे।

झुनिया ने चकित होकर कहा—ऐसा न कहो जीजी, बडे गाढे मे पडकर आयी हू, नही तुम जानती हो, मेरी आदत ऐसी नही है। बाकी का एक रुपया देना है। प्यादा द्वार पर खडा बकझक रहा है। रुपया दे दो, तो किसी तरह यह विपत्ति टले। मैं आज के आठवें दिन आकर दे जाऊगी। गाँव मे और कौन घर है, जहाँ माँगने जाऊँ?

प्यारी टस से मस न हुई।

उसके जाते ही प्यारी साँझ के लिए रसोई-पानी का इन्तजाम करने लगी। पहले चावल-दाल बिनना अपाढ लगता था और रसोई मे जाना तो सूली पर चढने से कम न था। कुछ देर दोनो बहनो मे झाँव-झाँव होती, तब शिवदास आकर कहते, क्या आज रसोई न बनेगी, तो दो मे से एक उठती और मोटे-मोटे टिक्कड लगाकर रख देती, मानो बैलो का रातिब हो। आज प्यारी तन-मन से रसोई के प्रबन्ध मे लगी हुई है। अब वह घर की स्वामिनी है।

तब उसने बाहर निकलकर देखा, कितना कूडा करकट पडा हुआ है! बुढऊ दिन भर मक्खी मारा करते हैं। इतना भी नही होता कि जरा झाडू ही लगा दें। अब क्या इनसे इतना भी न होगा? द्वार ऐसा चिकना चाहिए कि देखकर आदमी का मन प्रसन्न हो जाये। यह नही कि उबकाई आने लगे। अभी कह दूं तो तिनक उठेंगे। अच्छा, मुन्नी नाँद से अलग क्यो खडी है?

उसने मुन्नी के पास जाकर नाँद मे झाँका। दुर्गन्ध आ रही थी। ठीक! मालूम होता है, महीनो से पानी ही नही बदला गया। इस तरह तो गाय रह

चुकी ! अपना पेट भर लिया, छुट्टी हुई, और किसी से क्या मतलब ? हाँ, दूध सबको अच्छा लगता है । दादा द्वार पर बैठे चिलम पी रहे हैं, वह भी तीन कौडी का । खाने को डेढ सेर, काम करते नानी मरती है । आज आता है तो पूछती हू, नाँद मे पानी क्यो नही बदला । रहना हो, रहे या जाए । आदमी बहुत मिलेंगे । चारो ओर तो लोग मारे-मारे फिर रहे हैं ।

आखिर उससे न रहा गया । घडा उठाकर पानी लाने चली ।

शिवदास ने पुकारा—पानी क्या होगा बहू ? इसमे पानी भरा हुआ है ।

प्यारी ने कहा—नाँद का पानी सड गया है । मुन्नी भूसे मे मुंह नही डालती । देखते नही हो, कोस-भर पर खडी है ।

शिवदास मार्मिक भाव से मुस्कराए और आकर बहू के हाथ से घडा ले लिया ।

3

कई महीने बीत गये । प्यारी के अधिकार मे आते ही उस घर मे जैसे वसंत आ गया । भीतर-बाहर जहाँ देखिए, किसी निपुण प्रबन्धक के हस्त-कौशल, सुविचार और सुरुचि के चिन्ह दीखते थे । प्यारी ने गृहयत्र की ऐसी चाभी कस दी थी कि सभी पुरजे ठीक-ठीक चलने लगे थे । भोजन पहले से अच्छा मिलता है और समय पर मिलता है । दूध ज्यादा होता है । घी ज्यादा होता है, और काम ज्यादा होता है । प्यारी न खुद विश्राम लेती है, न दूसरो को विश्राम लेने देती है । घर मे कुछ ऐसी बरकत आ गई है कि जो चीज माँगो, घर ही में निकल आती है । आदमी से लेकर जानवर तक सभी स्वस्थ दिखाई देते हैं । अब वह पहले की-सी दशा नही है कि कोई चिथड़े लपेटे घूम रहा है, किसी को गहने की धुन सवार है । हाँ, अगर कोई रुग्ण और चिंतित तथा मलिन वेष मे है, तो वह प्यारी है, फिर भी सारा घर उससे जलता है । यहाँ तक कि बूढे शिवदास भी कभी-कभी उसकी बदगोई करते है । किसी को पहर रात रहे उठना अच्छा नही लगता । मेहनत से सभी जी चुराते हैं । फिर भी यह सब मानते हैं कि प्यारी न हो, तो घर का काम न चले । और तो और, दोनो बहनों मे भी अब उतना अपनापन नही ।

प्रातःकाल का समय था । दुलारी ने हाथो के कडे लाकर प्यारी के सामने पटक दिए और भुन्नाई हुई बोली—लेकर इसे भी भडारे मे बन्द कर दे ।

प्यारी ने कड़े उठा लिए और कोमल स्वर मे कहा—कह तो दिया, हाथ मे रुपये आने दे, बनवा दूंगी । अभी ऐसा घिस नही गया है कि आज ही उतारकर फेंक दिया जाए ।

दुलारी लड़ने को तैयार होकर आयी थी। बोली—तेरे हाथ में काहे को कभी रुपये आएंगे और काहे को कड़े बनेंगे। जोड़-जोड़ रखने मे मजा आता है न ?

प्यारी ने हँसकर कहा—जोड़-जोड़ रखती हूं, तो तेरे ही लिए कि मेरे कोई और बैठा हुआ है, कि मैं सबसे ज्यादा खा-पहन लेती हूं। मेरा अनन्त कब का टूटा पड़ा है।

दुलारी—तुम न खाओ-न पहनो, जस तो पाती हो। यहाँ खाने-पहनने के सिवा और क्या है ? मैं तुम्हारा हिसाब-किताब नही जानती, मेरे कड़े आज बनने को भेज दो।

प्यारी ने सरल विनोद के भाव से पूछा—रुपये न हो, तो कहाँ से लाऊं ?

दुलारी ने उद्दंडता के साथ कहा—मुझे इससे कोई मतलब नही। मैं तो कड़े चाहती हू।

इसी तरह घर के सब आदमी अपने-अपने अवसर पर प्यारी को दो-चार खोटी-खरी सुना जाते थे, और वह गरीब सबकी धौंस हँसकर सहती थी। स्वामिनी का यह धर्म ही है कि सबकी धौंस सुन ले और करे वही, जिसमे घर का कल्याण हो। स्वामित्व के कवच पर धौंस, ताने, धमकी—किसी का असर न होता। उसकी स्वामिनी की कल्पना इन आघातो मे और भी स्वस्थ होती थी। वह गृहस्थी की सचालिका है। सभी अपने-अपने दुःख उसी के सामने रोते हैं, पर जो कुछ वह करती है, वही होता है। इतना उसे प्रसन्न करने के लिए काफी था।

गाँव मे प्यारी की सराहना होती थी। अभी उम्र ही क्या है, लेकिन सारे घर को सँभाले हुए है। चाहती तो सगाई करके चैन से रहती। इस घर के पीछे अपने को मिटाए देती है। कभी किसी से हँसती-बोलती भी नही, जैसे कायापलट हो गई।

कई दिन बाद दुलारी के कड़े बनकर आ गए। प्यारी खुद सुनार के घर दौड़-दौड़ गयी।

सध्या हो गई थी। दुलारी और मथुरा हाट से लौटे। प्यारी ने नये कड़े दुलारी को दिये। दुलारी निहाल हो गइ। चटपट कड़े पहने और दौडी हुई बरौठे मे जाकर मथुरा को दिखाने लगी। प्यारी बरौठे के द्वार पर छिपी खड़ी यह दृश्य देखने लगी। उसकी आखें सजल हो गईं। दुलारी उससे कुल तीन ही साल तो छोटी है। पर दोनो मे कितना अतर है। उसकी आँखें मानो उस दृश्य पर जम गईं, दम्पत्ति का वह सरल आनंद, उनका प्रेमालिगन, उनकी मुग्ध मुद्रा—प्यारी की टकटकी-सी बँध गई, यहाँ तक कि दीपक के धुधले प्रकाश मे वे दोनो उसकी नजरो से गायब हो गए और अपने ही अतीत जीवन की एकलीला

आँखो के सामने बार-बार नए-नए रूप मे आने लगी।

सहसा शिवदास ने पुकारा—वडी वहू ! एक पैसा दो। तमाखू मँगवाऊँ।

प्यारी की समाधि टूट गई। आँसू पोछती हुई भंडारे मे पैसा लेने चली गई।

एक-एक कर प्यारी के गहने उसके हाथ से निकलते जाते थे। वह चाहती थी, मेरा घर गाँव मे सबसे सम्पन्न समझा जाए, और इस महत्त्वाकाक्षा का मूल्य देना पडता था। कभी घर की मरम्मत के लिए और कभी वैलो की नयी गोई खरीदने के लिए, कभी नातेदारो के व्यवहारो के लिए, कभी वीमारो की दवा-दारू के लिए रुपये की जरूरत पडती रहती थी, और जव बहुत कतरव्योत करने पर भी काम न चलता, तो वह अपनी कोई-न-कोई चीज निकाल देती। और चीज एक वार हाथ से निकलकर फिर न लौटती थी। वह चाहती, तो इनमे से कितने ही खर्चो को टाल जाती, पर जहाँ इज्जत की वात आ पडती थी, वह दिल खोलकर खर्च करती। अगर गाँव मे हेठी हो गई, तो क्या बात रही ! लोग उसी का नाम तो धरेंगे। दुलारी के पास भी गहने थे। दो-एक चीजें मथुरा के पास भी थी, लेकिन प्यारी उनकी चीजें न छूती। उनके खाने-पहनने के दिन हैं। वे इस जंजाल मे क्यो फसें।

दुलारी को लडका हुआ, तो प्यारी ने धूम से जन्मोत्सव मनाने का प्रस्ताव किया।

शिवदास ने विरोध किया—क्या फायदा ? जव भगवान् की दया से सगाई-व्याह के दिन आएगे, तो धूम-धाम कर लेना।

प्यारी का हौसलो भरा दिल भला क्यो मानता ? वोली—कैसी वात कहते हो दादा ? पहलौंठी लडके के लिए भी धूम-धाम न हुई तो कव होगी ? मन तो नही मानता। फिर दुनिया क्या कहेगी ? नाम वडे, दर्शन थोडे। मैं तुमसे कुछ नही माँगती। अपना सारा सरजाम कर लूंगी।

'गहनो के माथे जाएगी, और क्या !' शिवदास ने चिंतित होकर कहा—इस तरह एक दिन धागा भी न वचेगा। कितना समझाया, वेटा, भाई-भौजाई किसी के नही होते। अपने पास दो चीजें रहेगी, तो सव मुँह जोहेंगे, नही कोई सीधे वात भी न करेगा।

प्यारी ने ऐसा मुँह वनाया, मानो वह ऐसी वूढी वाते वहुत सुन चुकी है, और वोली—जो अपने है, वे भी न पूछें, तो भी अपने ही रहते है। मेरा धरम मेरे साथ है, उनका धरम उनके साथ है। मर जाऊँगी तो क्या छाती पर लाद ले जाऊँगी ?

धूम-धाम से जन्मोत्सव मनाया गया। वरही के दिन सारी विरादरी का भोज हुआ। लोग खा-पीकर चले गये, प्यारी दिन-भर की थकी-माँदी आँगन मे एक टाट का टुकड़ा विछाकर कमर सीधी करने लगी। आँखें झपक गईं। मथुरा

उसी वक्त घर मे आया। नवजात पुत्र को देखने के लिए उसका चित्त व्याकुल हो रहा था। दुलारी सौर-गृह से निकल चुकी थी। गर्भावस्था मे उसकी देह क्षीण हो गई थी, मुँह भी उतर गया था, पर आज स्वस्थता की लालिमा मुख पर छाई हुई थी। मातृत्व के गर्व और आनन्द ने आँखो मे सजीवनी सी भर रखी थी। सौर के सयम और पौष्टिक भोजन ने देह को चिकना कर दिया था। मथुरा उसे आंगन मे देखते ही समीप आ गया और एक वार प्यारी की ओर ताककर उसके निद्रामग्न होने का निश्चय करके उसने शिशु को गोद मे ले लिया और उसका मुँह चूमने लगा।

आहट पाकर प्यारी की आँखें खुल गईं, पर उसने नीद का वहाना किया और अधखुली आँखो से यह आनन्द-क्रीडा देखने लगी। माता और पिता दोनो वारी-वारी से बालक को चूमते, गले लगाते और उसके मुख को निहारते थे।

कितना स्वर्गीय आनन्द था! प्यारी की तृषित लालसा एक क्षण के लिए स्वामिनी को भूल गई। जैसे लगाम मुखवद्ध, वोझ से लदा हुआ, हाँकनेवाले के चावुक से पीडित, दौडते-दौडते वेदम तुरग हिनहिनाने की आवाज सुनकर कनोतियाँ खडी कर लेता है और परिस्थिति को भूलकर एक दवी हुई हिनहिनाहट से उसका जवाव देता है, कुछ वही दशा प्यारी की हुई। उसका मातृत्व जो पिजरे मे वन्द, मूक, निश्चेष्ट पडा हुआ था, समीप से आनेवाली मातृत्व की चहकार सुनकर जैसे जाग पडा और चिन्ताओ के उस पिंजरे से निकलने के लिए पंख फड़फडाने लगा।

मथुरा ने कहा – यह मेरा लडका है।

दुलारी ने बालक को गोद मे चिपटाकर कहा—हा, क्यो नही। तुम्ही ने तो नौ महीने पेट मे रखा है? साँसत तो मेरी हुई, वाप कहलाने के लिए तुम कूद पडे।

मथुरा—मेरा लडका न होता, तो मेरी सूरत का क्यो होता! चेहरा-मोहरा, रूप-रग सब मेरा ही-सा है कि नही?

दुलारी—इससे क्या होता है। बीज बनिये के घर से आता है। खेत किसान का होता है। उपज वनिये की नही होती, किसान की होती है।

मथुरा—वातो में तुमसे कोई न जीतेगा। मेरा लड़का हो जाएगा, तो मैं द्वार पर वैठकर मजे से हुक्का पिया करूँगा।

दुलारी—मेरा लडका पढे-लिखेगा, कोई वडा हुद्दा पाएगा। तुम्हारी तरह दिन-भर वैल के पीछे न चलेगा। मालकिन से कहना है, कल एक पालना वनवा दें।

मथुरा—अव बहुत सवेरे न उठा करना और छाती फाडकर काम भी न करना।

दुलारी—यह महारानी जीने देंगी।

मथुरा—मुझे तो वेचारी पर दया आती है। उसके कौन वैठा हुआ है? हमी लोगो के लिए मरती है। भैया होते, तो अव तक दो-तीन वच्चो की मा हो गई होती।

प्यारी के कठ मे आसुओ का ऐसा वेग उठा कि उसे रोकने मे सारी देह काप उठी। अपना वचित जीवन उसे मरुस्थल-सा लगा, जिसकी सूखी रेत पर वह हरा-भरा वाग लगाने की निष्फल चेष्टा कर रही थी।

सहसा शिवदास ने भीतर आकर कहा—वडी वहू, क्या सो गई? वाजेवालों को अभी परोसा नही मिला। क्या कह दू?

5

कुछ दिनो के वाद शिवदास भी मर गया। उधर दुलारी के दो वच्चे और हुए। वह भी अधिकतर वच्चो के लालन-पालन मे व्यस्त रहने लगी। खेती का काम मजदूरो पर आ पड़ा। मथुरा मजदूर तो अच्छा था, सचालक अच्छा न था। उसे स्वतत्र रूप से काम लेने का कभी अवसर न मिला। खुद पहले भाई की निगरानी मे काम करता रहा, वाद को वाप की निगरानी मे करने लगा। खेती का तार भी न जानता था। वही मजूर उसके यहाँ टिकते थे, जो मेहनत नही, खुशामद करने मे कुशल होते थे, इसलिए प्यारी को अव दिन मे दो-चार चक्कर हार का भी लगाता पडना। कहने को तो वह अव भी मालकिन थी, पर वास्तव मे घर-भर की सेविका थी। मजूर भी उससे त्योरियाँ वदलते, जमीदारों का प्यादा भी उसी पर धौंसा जमाता। भोजन मे किफायत करनी पडती, लडकों को तो जितनी वार मागें, उतनी वार कुछ-न-कुछ चाहिए। दुलारी तो लडकौरी थी, उसे भी भरपूर भोजन चाहिए। मथुरा घर का सरदार था, उसके इस अधिकार को कौन छीन सकता था? मजूर भला क्यो रियायत करने लगे थे। सारी कसर वेचारी प्यारी पर निकलती थी। वही एक फालतू चीज थी, अगर आधा ही पेट खाए, तो किसी को कोई हानि न हो सकती थी। तीस वर्ष की अवस्था मे उसके वाल पक गए, कमर झुक गई, आँखो की जोत कम हो गई, मगर वह प्रसन्न थी। स्वामित्व का गौरव इन सारे जख्मो पर मरमम्त का काम करता था।

एक दिन मथुरा ने कहा—भाभी, अव तो कही परदेश जाने का जी होता है। यहाँ तो कमाई मे कोई वरक्कत नही। किसी तरह पेट की रोटी चल जाती है। वह भी रो-धोकर। कई आदमी पूरव से आये हैं। वे कहते हैं, वहाँ दो-तीन रुपये रोज की मजदूरी हो जाती है। चार-पाँच साल भी रह गया। तो मालामाल

हो जाऊँगा। अब आगे लडके-वाले हुए, इनके लिए कुछ तो करना ही चाहिए
दुलारी ने समर्थन किया—हाथ मे चार पैसे होंगे, लडको को पढाएँगे
लिखाएँगे। हमारी तो किसी तरह कट गई, लडको को तो आदमी बनाना है।
प्यारी यह प्रस्ताव सुनकर अवाक् रह गई। उनका मुह ताकने लगी। इस
पहले इस तरह की बातचीत कभी न हुई थी। यह धुन कैसे सवार हो गई
उसे संदेह हुआ, शायद मेरे कारण यह भावना उत्पन्न हुई। बोली—मैं तो जा
को न कहूँगी, आगे जैसी तुम्हारी इच्छा हो। लडको को पढाने-लिखाने के लि
यहाँ भी तो मदरसा है। फिर क्या नित्य यही दिन बने रहेंगे? दो-तीन सा
भी खेती बन गई, तो सब कुछ हो जाएगा।

मथुरा—इतने दिन खेती करते गए, जब अब तक न बनी, तो अब क्या ब
जाएगी! इस तरह एक दिन चल देंगे, मन-की-मन मे रह जाएगी। फिर अ
पौरुख भी तो थक रहा है। यह खेती कौन सँभालेगा? लडको को मैं चक्की
जोतकर उनकी जिन्दगी नही खराब करना चाहता।

प्यारी ने आँखो मे आँसू लाकर कहा—भैया, घर पर जब तक आधी मिले
सारी के लिए न धावना चाहिए, अगर मेरी ओर से कोई बात हो, तो अपन
घर-बार अपने हाथ मे करो, मुझे एक टुकडा दे देना, पडी रहूगी।

मथुरा आर्द्र-कंठ होकर बोला—भाभी, यह तुम क्या कहती हो! तुम्हा
ही सँभाले यह घर अब तक चला है, नही रसातल को चला गया होता। इ
गिरस्ती के पीछे तुमने अपने को मिट्टी मे मिला दिया, अपनी देह घुला डाली
मैं अंधा नही हूँ। सब कुछ समझता हूँ। हम लोगो को जाने दो। भगवान्
चाहा, तो घर फिर सँभल जाएगा! तुम्हारे लिए हम बराबर खरच-बरच भेज
रहेंगे।

प्यारी ने कहा—ऐसा ही है तो तुम चले जाओ, बाल-बच्चो को कहाँ-कह
बाँधे फिरोगे?

दुलारी बोली—यह कैसे हो सकता है बहन, यहाँ देहात मे लडके क्या पढे
लिखेंगे। बच्चो के बिना इनका जी भी वहाँ न लगेगा। दौड-दौडकर घर आएँ
और सारी कमाई रेल खा जाएगी। परदेश मे अकेले जितना खरचा होगा, उत
मे सारा घर आराम से रहेगा।

प्यारी बोली—तो मैं ही यहाँ रहकर क्या करूँगी? मुझे भी लेते चलो।

दुलारी उसे साथ ले चलने को तैयार न थी। कुछ दिन का आनंद उठान
चाहती थी, अगर परदेश मे भी यह बंधन रहा, तो जाने से फायदा ही क्या
बोली—बहन, तुम चलती तो क्या बात थी, लेकिन फिर यहाँ का सारा कारोब
तो चौपट हो जाएगा। तुम तो कुछ-न-कुछ देखभाल करती ही रहोगी।

प्रस्थान की तिथि के एक दिन पहले ही रामप्यारी ने रात-भर जागक

हलुआ और पूरियाँ पकायी। जव से इस घर में आयी, कभी एक दिन के लिए भी अकेले रहने का अवसर नही आया। दोनो वहनें सदा साथ रही। आज उस भयंकर अवसर को सामने आते देखकर प्यारी का दिल वैठा जाता था। वह देखती थी, मथुरा प्रसन्न है, वाल-वृन्द यात्रा के आनद मे खाना-पीना तक भूले हुए हैं, तो उसके जी मे आता, वह भी इसी भाँति निर्द्वन्द्व रहे, मोह और ममता को पैरो से कुचल डाले, किन्तु वह ममता जिस खाद्य को खा-खाकर पली थी, उसे अपने सामने से हटाए जाते देखकर क्षुब्ध होने से न रुकती थी। दुलारी तो इस तरह निश्चित होकर वैठी थी, मानो कोई मेला देखने जा रही है। नई-नई चीजो को देखने, नई दुनिया मे विचरने की उत्सुकता ने उसे क्रियाशून्य-सा कर दिया था। प्यारी के सिर सारे प्रवध का भार था। धोवी के घर से सव कपडे आए है या नही, कौन-कौन से वरतन जाएँ, सफर-खर्च के लिए कितने रुपयो की जरूरत होगी। एक वच्चे को खाँसी आ रही थी, दूसरे को कई दिन से दस्त आ रहे थे, उन दोनो की औषधियो को पीसना-कूटना आदि सैकडों ही काम व्यस्त किए हुए थे। लड़कौरी न होकर भी वह वच्चो के लालन-पालन मे दुलारी से कुशल थी। 'देखो, वच्चो को वहुत मारना-पीटना मत। मारने से वच्चे जिद्दी या वेहया हो जाते है। वच्चो के साथ आदमी को वच्चा वन जाना पडता है। कभी उनके साथ खेलना पडता है, कभी हँसना पडता है। जो तुम चाहो कि तुम आराम से पडे रहो और वच्चे चुपचाप वैठे रहे, हाथ-पैर न हिलाएँ, तो यह हो नही सकता। वच्चे तो स्वभाव के चचल होते हैं। उन्हे किसी-न-किसी काम मे फँसाए रखो। धेले का खिलौना हजार घुडकियो से वढकर होता है।' दुलारी इन उपदेशो को इस तरह वेमन होकर सुनती थी, मानो कोई सनक-कर वक रहा हो।

विदाई का दिन प्यारी के लिए परीक्षा का दिन था। उसके जी मे आता था कही चली जाए, जिसमे वह दृश्य देखना न पडे। हा! घडी भर मे यह घर सूना हो जाएगा! वह दिन भर घर मे अकेली पडी रहेगी। किससे हँसेगी-वोलेगी? यह सोचकर उसका हृदय काप रहा था। ज्यो-ज्यो समय निकट आता था उसकी वृत्तियाँ ,शिथिल हो जाती थी। वह कोई काम करते-करते जैसे खो जाती थी और अपलक नेत्रो से किसी वस्तु की ओर ताकने लगती। कभी अव-सर पाकर एकाँत मे जाकर थोडा सा रो आती थी। मन को समझा रही थी, वह लोग अपने होते तो क्या इस तरह चले जाते? यह तो मानने का नाता है, किसी पर कोई जवरदस्ती है। दूसरों के लिए कितना ही मरो, तो भी अपने नहीं होते। पानी तेल मे कितना ही मिले, फिर भी अलग ही रहेगा।

वच्चे नए-नए कुरते पहने, नवाव वने घूम रहे थे। प्यारी उन्हे प्यार करने के लिए गोद लेना चाहती, तो रोने-सा मुह वनाकर छुडाकर भाग जाते। वह

क्या जानती थी कि ऐसे अवसर पर बहुधा अपने बच्चे भी निष्ठुर हो जाते हैं।

दस बजते-बजते द्वार पर बैलगाड़ी आ गई। लडके पहले ही से उस पर जा बैठे। गाव के कितने स्त्री-पुरुष मिलने आये। प्यारी को इस समय उनका आना बुरा लग रहा था। वह दुलारी से थोडी देर एकात मे गले मिलकर रोना चाहती थी, मथुरा से हाथ जोडकर कहना चाहती थी, मेरी खोज-खबर लेते रहना, तुम्हारे सिवा मेरा ससार मे कौन है, लेकिन इस भम्भड मे इसको इन बातो का मौका न मिला। मथुरा और दुलारी दोनो गाडी मे जा बैठे और प्यारी द्वार पर रोती खडी रह गई। वह इतनी विह्वल थी कि गाँव के बाहर तक पहुँचाने की भी उसे सुधि न रही।

6

कई दिन तक प्यारी मूर्च्छित सी पडी रही। न घर से निकली, न चूल्हा जलाया, न हाथ-मुँह धोया। उसका हलवाहा जोखू बार-बार आकर कहता—'मालकिन उठो, मुँह-हाथ धोओ, कुछ खाओ-पियो। कब तक इस तरह पडी रहोगी?' इस तरह की तसल्ली गाँव की और स्त्रियाँ भी देती थी, पर उनकी तसल्ली मे एक प्रकार की ईर्ष्या का भाव छिपा हुआ जान पडता था।

जोखू के स्वर मे सच्ची सहानुभूति झलकती थी। जोखू कामचोर, बातूनी और नशेबाज था। प्यारी उसे बराबर डाँटती रहती थी। दो-एक बार उसे निकाल भी चुकी थी। पर मथुरा के आग्रह से फिर रख लिया था। आज भी जोखू की सहानुभूति भरी बातें सुनकर झुझलाती, यह काम करने क्यो नही जाता? यहाँ मेरे पीछे क्यो पडा हुआ है, मगर उसे झिडक देने को जी न चाहता था। उसे इस समय सहानुभूति की भूख थी। फल काँटेदार वृक्ष से भी मिलें तो क्या उन्हे छोड दिया जाता है?

धीरे-धीरे क्षोभ का वेग कम हुआ। जीवन के व्यापार होने लगे। अब खेती का सारा भार प्यारी पर था। लोगो ने सलाह दी, एक हल तोड दो और खेतो को उठा दो, पर प्यारी का गर्व यो ढोल बजाकर अपनी पराजय स्वीकार न कर सकता था। सारे काम पूर्ववत् चलने लगे। उधर मथुरा के चिट्ठी-पत्री न भेजने से उसके अभिमान को और भी उत्तेजना मिली। वह समझता है, मैं उसके आसरे बैठी हूँ, यहाँ उसको भी खिलाने का दावा रखती हूँ। उसके चिट्ठी भेजने से मुझे कोई निधि न मिल जाती। उसे अगर मेरी चिंता नही है, तो मैं कब उसकी परवाह करती हूँ।

घर मे तो विशेष कोई काम रहा नही, प्यारी सारे दिन खेती बारी के कामो मे लगी रहती। खरबूजे बोए थे। वह खूब फले और खूब बिके। पहले सारा

दूध घर मे खर्च हो जाता था, अब विकने लगा। प्यारी की मनोवृत्तियों मे ही एक विचित्र परिवर्तन आ गया। वह अब साफ-सुथरे कपडे पहनती, माँग चोटी की ओर से भी उतनी उदासीन न थी। आभूषणो मे भी रुचि हुई। रुपये हाथ मे आते ही उसने अपने गिरवी गहने छुड़ाए और भोजन भी संयम से करने लगी। सागर पहले खेतो को सीचकर खुद खाली हो जाता था। अब निकास की नालियाँ बन्द हो गई थीं। सागर मे पानी जमा होने लगा और अब उसमे हल्की-हल्की लहरें भी थी, खिले हुए कमल भी थे।

एक दिन जोखू हार से लौटा तो अँधेरा हो गया था। प्यारी ने पूछा—अब तक वहाँ क्या करता रहा?

जोखू ने कहा—चार क्यारियाँ बच रही थी। मैंने सोचा, दस मोट और खीच दू। कल का झझट कौन रखे?

जोखू अब कुछ दिनो से काम मे मन लगाने लगा था। जब तक मालिक उसके सिर पर सवार रहते थे, वह हाले-बहाने करता था। अब सब-कुछ उसके हाथ मे था। प्यारी सारे दिन हार मे थोड़े ही रख सकती थी, इसलिए अब उसमे जिम्मेदारी आ गई थी।

प्यारी ने लोटे का पानी रखते हुए कहा—अच्छा, हाथ-मुँह डालो। आदमी जान रखकर काम करता है, हाय-हाय करने से कुछ नही होता। खेत आज न होते, कल होते, क्या जल्दी थी।

जोखू ने समझा, प्यारी विगड रही है। उसने तो अपनी समझ मे कर-गुजारी की थी और समझा था, तारीफ होगी। यहाँ आलोचना हुई। चिढकर बोला—मालकिन, दाहने-बाएँ दोनो ओर चलती हो। जो बात नही समझती हो, उसमे क्यो कूदती हो? कल के लिए तो उँचवा के खेत पडे सूख रहे हैं। आज बडी मुश्किल से कुआँ खाली हुआ। सवेरे मैं पहुचता, तो कोई और आकर न छेंक लेता? फिर अठवारे तक राह देखनी पडती। तब तक तो सारी ऊख विदा हो जाती।

प्यारी उसकी सरलता पर हँसकर बोली—अरे, तो मै तुझे कुछ कह थोडी रही हूँ, पागल! मैं तो कहती हूँ कि जान रखकर काम कर। कही बीमार पड गया, तो लेने के देने पड़ जाएँगे।

जोखू—कौन बीमार पड जाएगा, मैं? बीस साल मे कभी सिर तक तो दुखा नही, आगे की नही जानता। कहो रात-भर काम करता हूँ।

प्यारी—मैं क्या जानू, तुम्ही अँतरे दिन बैठे रहते थे, और पूछा जाता था तो कहते थे—जुर आ गया था, पेट मे दरद था।

जोखू झेंपता हुआ बोला—वह बातें जब थी, मालिक लोग चाहते थे कि इसे पीस डालें। अब तो जानता हूँ, मेरे ही माथे है। मैं न करूँगा तो सब

चौपट हो जाएगा।

प्यारी—मैं क्या देख-भाल नहीं करती?

जोखू—तुम बहुत करोगी, दो बेर चली जाओगी। सारे दिन तुम वहाँ बैठी नहीं रह सकती।

प्यारी को उनके निष्कपट व्यवहार ने मुग्ध कर दिया। बोली—तो इतनी रात गए चूल्हा जलाओगे। कोई सगाई क्यों नहीं कर लेते?

जोखू ने मुँह धोते हुए कहा—तुम भी खूब कहती हो मालकिन! अपने पेट-भर को तो होता नहीं, सगाई कर लूँ! सवा सेर खाता हूँ एक जून—पूरा सवा सेर! दोनों जून के लिए दो सेर चाहिए!

प्यारी—अच्छा, आज मेरी रसोई मे खाओ, देखूँ कितना खाते हो?

जोखू पुलकित होकर कहा—नहीं मालकिन, तुम बनाते-बनाते थक जाओगी। हाँ, आध-आध सेर के दो रोटा बनाकर खिला दो, तो खालूँ। मैं तो यही करता हूँ। बस, आटा सानकर दो लिट बनाता हूँ और उपले पर सेंक लेता हूँ। कभी मठे से, कभी नमक से, कभी प्याज से खा लेता हूँ और आकर पड़ रहता हूँ।

प्यारी—मैं तुम्हे आज फुलके खिलाऊँगी।

जोखू—तब तो सारी रात खाते ही बीत जाएगी।

प्यारी—बको मत, चटपट आकर बैठ जाओ।

जोखू—जरा बैलों को सानी-पानी देता आऊँ तो बैठूँ।

7

जोखू और प्यारी मे ठनी हुई थी।

प्यारी ने कहा—मैं कहती हूँ, धान रोपने की कोई जरूरत नहीं। झड़ी लग-जाए, तो खेत डूब जाए। बर्खा बन्द हो जाए, तो खेत सूख जाए। जुआर, बाजरा, सन, अरहर सब तो हैं, धान न सही।

जोखू ने अपने विशाल कंधे पर फावड़ा रखते हुए कहा—जब सबका होगा, तो मेरा भी होगा। सबका डूब जाएगा; तो मेरा भी डूब जाएगा। मैं क्यों किसी से पीछे रहूँ? बाबा के जमाने मे पाँच बीघा से कम नहीं रोपा जाता था, बिरजू भैया ने उसमे एक-दो बीघे और बढा दिए। मथुरा ने भी थोड़ा-बहुत हर साल रोपा, तो मैं क्या सबसे गया बीता हूँ? मैं पाँच बीघे से कम न लाऊँगा।

'तब घर मे दो जवान काम करनेवाले थे।'

'मैं अकेला उन दोनों के बराबर खाता हूँ। दोनों के बराबर काम क्यों न करूँगा?'

'चल, झूठा कहीं का। कहते थे, दो सेर खाता हूं, चार सेर खाता हूँ। आध-

सेर मे रह गए।'

'एक दिन तौलो तव मालूम हो।,

'तौला है। वडे खानेवाले! मैं कहे देती हूँ, धान न रोपो। मजूर मिलेंगे नही, अकेले हलकान होना पडेगा।'

'तुम्हारी वला से, मैं ही हलकान हूँगा न? यह देह किस दिन काम आएगी।'

प्यारी ने उसके कधे पर से फावड़ा ले लिया और वोली—तुम पहर रात से पहर रात तक ताल मे रहोगे, अकेले मेरा जी ऊवेगा।

जोखू को जी ऊवने का अनुभव न था। कोई काम न हो, तो आदमी पड कर सो रहे। जी क्यो ऊवे? वोला—जी ऊवे तो सो रहना। मैं घर रहूँगा, तव तो और जी ऊवेगा। मैं खाली वैठता हूँ तो वार-वार खाने की सूझती है। वातो मे देर हो रही है और वादल घिर आते हैं।

प्यारी ने हारकर कहा—अच्छा, कल से जाना, आज वैठो।

जोखू ने मानो वंधन मे पडकर कहा—अच्छा वैठ गया, कहो क्या कहती हो?

प्यारी ने विनोद करते हुए पूछा—कहना क्या है, मैं तुमसे पूछती हूँ, अपनी सगाई क्यो नही कर लेते? अकेली मरती हूँ। तव एक से दो हो जाऊँगी।

जोखू शरमाता हुआ वोला—तुमने फिर वही वेवात की वात छेड दी, मालकिन? किससे सगाई कर लूं यहाँ? ऐसी मेहरिया लेकर क्या करूँगा, जो गहनों के लिए मेरी जान खाती रहे।

प्यारी—यह तो तुमने वडी कडी शर्त लगाई। ऐसी औरत कहां मिलेगी, जो गहने भी न चाहे?

जोखू—यह मैं थोडे ही कहता हूँ कि वह गहने न चाहे, हाँ मेरी जान न खाए। तुमने तो कभी गहनो के लिए हठ न किया, वल्कि अपने सारे गहने दूसरों के ऊपर लगा दिए।

प्यारी के कपोलो पर हल्का-सा रंग आ गया। वोली अच्छा, और क्या चाहते हो?

जोखू—मैं कहने लगूंगा, तो विगड जाओगी।

प्यारी की आँखो मे लज्जा की एक रेखा नजर आई, वोली—विगडने की वात कहोगे, तो जरूर विगडूंगी।

जोखू—तो मैं न कहूँगा।

प्यारी ने उसे पीछे की ओर ढकेलते हुए कहा—कहोगे कैसे नही, मैं कहला के छोडूंगी।

जोखू—मैं चाहता हूँ कि वह तुम्हारी तरह हो, ऐसी गंभीर हो, ऐसी ही

बातचीत मे चतुर हो, ऐसा ही अच्छा खाना पकाती हो, ऐसी ही किफायती हो, ऐसी ही हँसमुख हो। बस, ऐसी औरत मिलेगी, तो करूँगा, नही इस तरह पडा रहूगा।

प्यारी का मुख लज्जा से आरक्त हो गया। उसने पीछे हटकर कहा—तुम बड़े नटखट हो! हँसी-हँसी मे सब कुछ कह गए।

ठाकुर का कुआँ

जोखू ने लोटा मुंह से लगाया तो पानी मे सख्त बदबू आई। गगी से बोला—यह कैसा पानी है ? मारे बास के पिया नही जाता। गला सूखा जा रहा है और तू सडा पानी पिलाए देती है !

गगी प्रतिदिन शाम को पानी भर लिया करती थी। कुआँ दूर था, बार-बार जाना मुश्किल था। कल वह पानी लायी, तो उसमे बू बिलकुल न थी; आज पानी से बदबू कैसी ! लोटा नाक से लगाया, तो सचमुच बदबू थी। जरूर कोई जानवर कुएँ में गिरकर मर गया होगा, मगर दूसरा पानी आवे कहा से ?

ठाकुर के कुएँ पर कौन चढ़ने देगा ? दूर से लोग डांट बताएँगे। साहू का कुआँ गाव के उस सिरे पर है, परन्तु वहाँ भी कौन पानी भरने देगा ? कोई कुआँ गाव मे है नही।

जोखू कई दिन से बीमार है। कुछ देर तक तो प्यास रोके चुप पडा रहा, फिर बोला—अब तो मारे प्यास के रहा नही जाता। ला, थोडा पानी नाक बद करके पी लूं।

गंगी ने पानी न दिया। खराब पानी पीने से बीमारी बढ़ जायेगी—इतना जानती थी, परन्तु यह न जानती थी कि पानी को उबाल देने से उसकी खराबी जाती रहती है। बोली—यह पानी कैसे पियोगे ? न जाने कौन जानवर मरा है। कुएँ से मैं दूसरा पानी लाए देती हूँ।

जोखू ने आश्चर्य से उसकी ओर देखा—दूसरा पानी कहाँ से लाएगी ?

'ठाकुर और साहू के दो कुएँ तो हैं। क्या एक लोटा पानी न भरने देंगे ?'

'हाथ-पाँव तुड़वा आएगी और कुछ न होगा। बैठ चुपके से। ब्राह्मण-देवता आशीर्वाद देंगे, ठाकुर लाठी मारेंगे, साहूजी एक के पाँच लेंगे। गरीबी का दर्द कौन समझता है। हम तो मर भी जाते हैं, तो कोई दुआर पर झांकने नही आता, कंधा देना तो बड़ी बात है। ऐसे लोग कुएँ से पानी भरने देंगे ?'

इन शब्दों मे कड़वा सत्य था। गगी क्या जवाब देती; किन्तु उसने वह बदबूदार पानी पीने को न दिया।

2

रात के नौ बजे थे। थके-माँदे मजदूर तो सो चुके थे, ठाकुर के दरवाजे पर दस-पाँच बेफिक्रे जमा थे। मैदानी बहादुरी का तो न अब जमाना रहा है, न मौका। कानूनी बहादुरी की बातें हो रही थी। कितनी होशियारी से ठाकुर ने थानेदार को एक खास मुकदमे मे रिश्वत दे दी और साफ निकल गये। कितनी अक्लमदी से एक मार्के के मुकदमे की नकल ले आए। नाजिर और मोहतिमिम, सभी कहते थे, नकल नही मिल सकती। कोई पचास माँगता, कोई सौ। यहाँ बे पैसे-कौडी नकल उडा दी। काम करने का ढग चाहिए।

इसी समय गगी कुएँ से पानी लेने पहुची।

कुप्पी की धुंधली रोशनी कुएं पर आ रही थी। गगी जगत की आड मे बैठी मौके का इन्तजार करने लगी। इस कुएं का पानी सारा गाँव पीता है। किसी के लिए रोक नही, सिर्फ ये बदनसीब नही भर सकते।

गंगी का विद्रोही दिल रिवाजी पाबदियो और मजबूरियो पर चोटें करने लगा—हम क्यो नीच हैं और ये लोग क्यो ऊँच हैं? इसलिए कि ये लोग गले मे तागा डाल लेते हैं? यहाँ तो जितने हैं, एक-से-एक छटे हैं। चोरी ये करें, जाल-फरेब ये करें, झूठे मुकदमे ये करें। अभी इस ठाकुर ने तो उस दिन बेचारे गड-रिये की एक भेड चुरा ली थी और बाद को मारकर खा गया। इन्ही पडित के घर मे तो बारहो मास जुआ होता है। यही साहूजी तो घी मे तेल मिलाकर बेचते हैं। काम करा लेते हैं, मजूरी देते नानी मरती है। किस-किस बात मे है हमसे ऊँचे? हाँ, मुह से हमसे ऊँचे हैं, हम गली-गली चिल्लाते नही कि हम ऊँचे हैं, हम ऊँचे! कभी गाँव मे आ जाती हू, तो रस-भरी आँख से देखने लगते हैं। जैसे सबकी छाती पर साँप लोटने लगता है, परन्तु घमण्ड यह कि हम ऊँचे हैं!

कुएं पर किसी के आने की आहट हुई। गगी की छाती धक्-धक् करने लगी। कही देख ले तो गजब हो जाये। एक लात भी तो नीचे न पडे। उसने घड़ा और रस्सी उठा ली और झुककर चलती हुई। एक वृक्ष के अंधेरे साए मे जा खड़ी हुई। कब इन लोगो को दया आती है किसी पर! बेचारे महँगू को इतना मारा कि महीनो लहू थूकता रहा। इसीलिए तो कि उसने बेगार न दी थी! इस पर ये लोग ऊँचे बनते हैं?

कुएं पर दो स्त्रिया पानी भरने आयी थी। इनमे बातें हो रही थी।

'खाना खाने चले और हुक्म हुआ कि ताजा पानी भर लाओ। घडे के लिए पैसे नही है।'

'हम लोगो को आराम से बैठे देखकर जैसे मरदों को जलन होती है।'

'हा, यह तो न हुआ कि कलसिया उठाकर भर लाते। बस, हुकुम चला

दिया कि ताजा पानी लाओ, जैसे हम लौंडियां ही तो हैं !'

'लौंडिया नही तो और क्या हो तुम ? रोटी-कपड़ा नही पाती ? दस-पांच रुपये भी छीन-झपटकर ले ही लेती हो। और लौंडियां कैसी होती हैं !'

'मत लजाओ, दीदी ! छिन-भर आराम करने को जी तरसकर रह जाता है। इतना काम किसी दूसरे के घर कर देती, तो इससे कही आराम से रहती। ऊपर से वह एहसान मानता। यहाँ काम करते-करते मर जाओ, पर किसी ताक मुह ही सीधा नही होता।'

दोनो पानी भरकर चली गई, तो गगी वृक्ष की छाया से निकली और कुएँ के जगत के पास आयी। वेफिक्रे चले गये थे। ठाकुर भी दरवाजा वन्द कर अन्दर आँगन मे सोने जा रहे थे। गगी ने क्षणिक सुख की साँस ली। किसी तरह मैदान तो साफ हुआ। अमृत चुरा लाने के लिए जो राजकुमार किसी जमाने मे गया था, वह भी शायद इतनी सावधानी के साथ और समझ-वूझकर न गया होगा। गगी दवे पाँव कुएँ के जगत पर चढी। विजय का ऐसा अनुभव उसे पहले कभी न हुआ।

उसने रस्सी का फदा घडे मे डाला। दाएँ-वाएँ चौकन्नी दृष्टि से देखा, जैसे कोई सिपाही रात को शत्रु के किले मे सुराख कर रहा हो। अगर इस समय वह पकड ली गई, तो फिर उसके लिए माफी या रियायत की रत्ती-भर उम्मीद नही। अन्त मे देवताओ को याद करके उसने कलेजा मजवूत किया और घड़ा कुएँ मे डाल दिया।

घड़े ने पानी में गोता लगाया, वहुत ही आहिस्ता। जरा भी आवाज न हुई गंगी ने दो-चार हाथ जल्दी-जल्दी मारे। घडा कुएँ के मुँह तक आ पहुचा। कोई वड़ा शहजोर पहलवान भी इतनी तेजी से उसे न खीच सकता था।

गगी झुकी कि घडे को पकडकर जगत पर रखे कि एकाएक ठाकुर साहव का दरवाजा खुल गया। शेर का मुँह इससे अधिक भयानक न होगा !

गगी के हाथ से रस्सी छूट गई। रस्सी के साथ घड़ा धड़ाम से पानी में गिरा और कई क्षण तक पानी मे हलकोरे की आवाजें सुनाई देती रही।

ठाकुर 'कौन है, कौन है ?' पुकारते हुए कुएँ की तरफ जा रहे थे और गंगी जगत से कूदकर भागी जा रही थी।

घर पहुचकर देखा कि जोखू लोटा मुँह से लगाए वही मैला गंदा पानी पी रहा है।

□

घरजमाई

हरिधन जेठ की दुपहरी मे ऊख मे पानी देकर आया और बाहर बैठा रहा। घर मे से धुआँ उठता नजर आता था। छन-छन की आवाज भी आ रही थी। उसके दोनो साले उसके बाद आये और घर मे चले गये। दोनो सालो के लडके भी आये और उसी तरह अन्दर दाखिल हो गये, पर हरिधन अन्दर न जा सका। इधर एक महीने से उसके साथ यहाँ जो बरताव हो रहा था और विशेपकर कल उसे जैसी फटकार सुननी पडी थी, वह उसके पाव मे बेडिया-सी डाले हुए था। कल उसकी सास ही ने तो कहा था, मेरा जी तुमसे भर गया, मैं तुम्हारी जिन्दगी भर का ठीका लिए बैठी हू क्या—और सबसे बढकर अपनी स्त्री की निठुरता ने उसके हृदय के टुकडे कर दिए थे। वह बैठी यह फटकार सुनती रही, पर एक बार भी तो उसके मुह से न निकला, अम्माँ, तुम क्यो उनका अपमान कर रही हो? बैठी गट-गट सुनती रही। शायद मेरी दुर्गति पर खुश हो रही थी। इस घर मे वह कैसे जाए? क्या फिर वही गालियाँ खाने, वही फटकार सुनने के लिए? और आज इस घर मे जीवन के दस साल गुजर जाने पर यह हाल हो रहा है! मैं किसी से कम काम करता हू? दोनो साले मीठी नीद सोते रहते है और मैं बैलो को सानी-पानी देता हूँ, छाँटी काटता हू। वहाँ सब लोग पल-पल पर चिलम पीते हैं, मैं आँखें बन्द किये अपने काम मे लगा रहता हूँ। संध्या समय घर वाले गाने-बजाने चले जाते हैं। मैं घडी रात तक गायें-भैंसें दुहता हू। उसका यह पुरस्कार मिल रहा है कि कोई खाने को भी नही पूछता। उलटे और गालियाँ मिलती हैं।

उसकी स्त्री घर मे से डोल लेकर निकली और बोली—जरा इसे कुएँ से खीच लो, एक बूद पानी नही है।

हरिधन ने डोल लिया और कुएं से पानी भर लाया। उसे जोर की भूख लगी हुई थी। समझा, अब खाने को बुलाने आएगी, मगर स्त्री डोल लेकर अन्दर गयी तो वही की हो रही। हरिधन थका-माँदा, क्षुधा से व्याकुल पडा-पडा सो रहा।

सहसा उसकी स्त्री गुमानी ने आकर उसे जगाया।

हरिधन ने पडे-पडे कहा—क्या है ? क्या पडा भी न रहने देगी या और पानी चाहिये ?

गुमानी कटु स्वर मे वोली—गुर्राते क्या हो, खाने को वुलाने आई हू ।

हरिधन ने देखा, उसके दोनो साले और वडे साले के दोनो लडके भोजन किए चले जा रहे थे । उसकी देह मे आग लग गई । मेरी अव यह नौवत पहुच गई कि इन लोगो के साथ वैठकर खा भी नही सकता । ये लोग मालिक हैं । मैं इनकी जूठी थाली चाटने वाला हू । मैं इनका कुत्ता हू, जिसे खाने के वाद टुकड़ा रोटी डाल दी जाती है । यही घर है, जहाँ आज के दस साल पहले उसका कितना आदर-सत्कार होता था ! साले गुलाम वने रहते थे । सास मु ह जोहती रहती थी । स्त्री पूजा करती थी । तव उसके पास रुपये थे, जायदाद थी । अव वह दरिद्र है । उसकी सारी जायदाद को इन्ही लोगो ने कूडा कर दिया । अव उसे रोटियो के भी लाले हैं । उसके जी मे एक ज्वाला-सी उठी कि इसी वक्त अन्दर जाकर सास को और साली को भिगो-भिगोकर लगाए, पर जब्त करके रह गया । पडे-पडे वोला—मुझे भूख नही है । आज न खाऊँगा ।

गुमानी ने कहा—न खाओगे मेरी वला से, हां नही तो ! खाओगे, तुम्हारे ही पेट मे जाएगा, कुछ मेरे पेट मे थोडे ही चला जाएगा ।

हरिधन का क्रोध आसू वन गया । यह मेरी स्त्री है, जिसके लिए मैंने अपना सर्वस्व मिट्टी मे मिला दिया । मुझे उल्लू वनाकर यह सव अव निकाल देना चाहते हैं । वह अव कहां जाए ! क्या करे ।

उसकी सास आकर वोली—चलकर खा क्यो नही लेते जी, रूठते किस पर हो ? यहां तुम्हारे नखरे सहने का किसी मे वूता नही है । जो देते हो, वह मत देना और क्या करोगे ! तुमसे वेटी व्याही है, कुछ तुम्हारी जिन्दगी का ठीका नही लिया है ।

हरिधन ने मर्माहत होकर कहा—हा अम्मा, मेरी भूल थी कि मैं यही समझ रहा था । अव मेरे पास क्या है कि मेरी जिन्दगी का ठीका लोगी ? जव मेरे पास भी धन था, तव सव कुछ आता था । अव दरिद्र हूँ, तुम क्यो वात पूछोगी ?

वूढ़ी सास भी मुँह फुलाकर भीतर चली गयी ।

2

वच्चो के लिए वाप एक फालतू-सी चीज—एक विलास की वस्तु—है, जैसे घोड़े के लिए चने या वावुओ के लिए मोहनभोग । रोटी-दाल, मोहनभोग उम्र-भर न मिले, तो किसका नुकसान है; मगर एक दिन रोटी-दाल के दर्शन न हों, तो फिर देखिए, क्या हाल होता है ! पिता के दर्शन कभी-कभी शाम-सवेरे हो

जाते हैं, वह बच्चे को उछालता है, दुलारता है, कभी गोद में लेकर या उँगली पकडकर सैर कराने ले जाता है और बस, यही उसके कर्त्तव्य की इति है। वह परदेश चला जाए, बच्चे को परवा नही होती, लेकिन माँ तो बच्चे का सर्वस्व है। बालक एक मिनट के लिए भी उसका वियोग नही सह सकता। पिता कोई हो, उसे परवा नही केवल एक उछालने-कुदाने वाला आदमी होना चाहिए, लेकिन माता तो अपनी ही होनी चाहिए, सोलहो-आने अपनी। वही रूप, वही रग, वही प्यार, वही सब-कुछ। वह अगर नही है, तो बालक के जीवन का स्रोत मानो सूख जाता है, फिर वह शिव का नन्दी है, जिस पर फूल या जल चढाना लाजिमी नही, अख्तियारी है।

हरिधन की माता का आज दस साल हुए देहान्त हो गया था। उस वक्त उसका विवाह हो चुका था। वह सोलह साल का कुमार था। पर माँ के मरते ही उसे मालूम हुआ, मैं कितना निस्सहाय हूँ। जैसे उस घर पर उसका कोई अधिकार ही न रहा हो। बहनो के विवाह हो चुके थे। भाई कोई दूसरा न था। बेचारा अकेले घर मे जाते भी डरता था। माँ के लिए रोता था, पर माँ की परछाईं से डरता था। जिस कोठरी मे उसने देह-त्याग किया था, उधर वह आँखें तक न उठाता। घर मे एक बुआ थी, वह हरिधन का बहुत दुलार करती। हरिधन को अब दूध ज्यादा मिलता, काम भी कम करना पडता। बुआ बार-बार पूछती—बेटा! कुछ खाओगे? बाप भी अब से उसे ज्यादा प्यार करता। उसके लिए अलग एक गाय मँगवा दी। कभी-कभी उसे कुछ पैसे देता कि जैसे चाहे खर्च करे। पर इन मरहमो मे वह घाव न पूरा होता था, जिसने उसकी आत्मा को आहत कर दिया था। वह दुलार और प्यार उसे बार-बार माँ की याद दिलाता। माँ की घुडकियो मे जो मजा था, वह क्या इस दुलार मे था? माँ से माँगकर, लडकर, ठुनककर, रूठकर लेने मे जो आनन्द था, वह क्या इस भिक्षा-दान मे था? पहले वह स्वस्थ था, माँग-माँगकर खाता था, लड-लडकर खाता, अब वह बीमार था, अच्छे-से-अच्छे पदार्थ उसे दिये जाते थे, पर भूख न थी।

साल-भर तक वह इस दशा मे रहा। फिर दुनिया बदल गई। एक नई स्त्री, जिसे लोग उसकी माता कहते थे, उसके घर मे आयी और देखते-देखते एक काली घटा की तरह उसके सकुचित भूमडल पर छा गई—सारी हरियाली, सारे प्रकाश पर अधकार का परदा पड गया। हरिधन ने इस नकली माँ से बात तक न की, कभी उसके पास गया तक नही। एक दिन घर से निकला और ससुराल चला आया।

बाप ने बार-बार बुलाया, पर उनके जीते जी वह फिर उस घर मे न गया। जिस दिन उसके पिता के देहांत की सूचना मिली, उसे एक प्रकार का ईर्ष्यामय हर्ष हुआ। उसकी आँखो से आँसू की एक बूद भी न आई।

इस नए ससार मे आकर हरिधन को एक बार फिर मातृ-स्नेह का आनन्द मिला। उसकी सास ने ऋषि-वरदान की भाँति उसके शून्य जीवन को विभूतियो से परिपूर्ण कर दिया। मरुभूमि मे हरियाली उत्पन्न हो गई। सालियो की चुहल मे, सास के स्नेह मे, सालो के वाक्-विलास मे और स्त्री के प्रेम मे उसके जीवन की सारी आकाक्षाएँ पूरी हो गईं। सास कहती—वेटा, तुम इस घर को अपना ही समझो, तुम्ही मेरी आँख के तारे हो। वह उससे अपने लडको की, वहुओ की शिकायत करती। वह दिल मे समझता था, सासजी मुझे अपने वेटो से भी ज्यादा चाहती हैं।

वाप के मरते ही वह घर गया और अपने हिस्से की जायदाद को कूडा करके रुपयो की थैली लिये फिर आ गया। अव उसका दूना आदर-सत्कार होने लगा। उसने अपनी सारी सम्पत्ति सास के चरणो पर अर्पण करके अपने जीवन को सार्थक कर दिया। अव तक उसे कभी-कभी घर की याद आ जाती थी, अव भूलकर भी उसकी याद न आती, मानो वह उसके जीवन का कोई भीषण काड था, जिसे भूल जाना ही उसके लिए अच्छा था। वह सवमे पहले उठता, सवसे ज्यादा काम करता। उसका मनोयोग, उसका परिश्रम देखकर गाँव के लोग दाँतो उँगली दवाते थे। उसके ससुर का भाग वखानते, जिसे ऐसा दामाद मिल गया!

लेकिन ज्यो-ज्यो दिन गुजरते गए, उसका मान-सम्मान घटता गया। पहले देवता था, फिर घर का आदमी अन्त मे घर का दास हो गया। रोटियो मे भी वाधा पड गई। अपमान होने लगा। अगर घर के लोग भूखो मरते और साथ ही उसे भी मरना पडता, तो उसे जरा भी शिकायत न होती। लेकिन जव वह देखता, और लोग मूछो पर ताव दे रहे हैं, केवल मैं ही दूध की मक्खी वना दिया गया हूँ, तो उसके अन्तस्तल से एक लम्वी, ठढी आह निकल आती। अभी उसकी उम्र कुल पच्चीस ही साल की तो थी। इतनी उम्र इस घर मे कैसे गुजरेगी? और तो और, उसकी स्त्री ने भी आँखें फेर ली! यह उस विपत्ति का सवसे क्रूर दृश्य था?

3

हरिधन तो उधर भूखा-प्यासा चिन्ता दाह मे जल रहा था, इधर घर मे सासजी और दोनो सालो मे वाते हो रही थी। गुमानी भी हाँ-मे-हाँ मिलाती जाती थी।

वडे साले ने कहा—हम लोगो की वरावरी करते हैं। यह नही समझते कि किसी ने उनकी जिन्दगी-भर का वीड़ा थोड़े ही लिया है। दस साल हो गए।

इतने दिनो मे क्या दो-तीन हजार न हडप गए होगे ?

छोटे साले वोले—मजूर हो तो आदमी घुड़के भी, डाँटे भी, अव इनसे कोई क्या कहे । न जाने इनसे कभी पिण्ड छूटेगा भी या नही ? अपने दिल मे समझते होगे, मैंने दो हजार रुपये नही दिये है ? यह नही समझते कि उनके दो हजार कव के उड चुके । सवा सेर तो एक जून को चाहिए ।

सास ने गम्भीर भाव से कहा—वडी भारी खोराक है ।

गुमानी माता के सिर मे जू निकाल रही थी । सुलगते हुए हृदय से वोली—निकम्मे आदमी को खाने के सिवा और काम ही क्या रहता है !

वड़े— खाने की कोई वात नही है । जिसको जितनी भूख हो उतना खाय, लेकिन कुछ पैदा करना चाहिए । यह नही समझते कि पहुनई मे किसी के दिन कटे हैं ।

छोटे—मैं तो एक दिन कह दूगा, अव आप अपनी राह लीजिए, आपका करजा नही खाया है ।

गुमानी घरवालो की ऐसी-ऐसी बाते सुनकर अपने पति से द्वेष करने लगी थी । अगर वह वाहर से चार पैसे लाता, तो इस घर मे उसका कितना मान-सम्मान होता, वह भी रानी वनकर रहती । न जाने क्यो कही वाहर जाकर कमाते उनकी नानी मरती है । गुमानी की मनोवृत्तियाँ अभी तक विलकुल वाल-पन की-सी थी । उसका अपना कोई घर न था । उसी घर का हित-अहित उसके लिए भी प्रधान था । वह भी उन्ही शब्दो मे विचार करती, इस समस्या को उन्ही आखो से देखती, जैसे उसके घरवाले देखते थे । सच तो है, दो हजार रुपये मे क्या किसी को मोल ले लेंगे ? दस साल मे दो हजार होते ही क्या हैं ? दो सौ ही तो साल-भर के हुए । क्या दो आदमी साल-भर मे दो सौ भी न खाएंगे ? फिर कपडे-लत्ते, दूध-घी सभी कुछ तो है । दस साल हो गए, एक पीतल का छल्ला नही वना । घर से निकलते तो जैसे इनके प्रान निकलते हैं । जानते हैं, जैसे पहले पूजा होती थी, वैसे ही जन्म-भर होती रहेगी । यह नही सोचते कि पहले और वात थी, अव और वात है । वहू ही पहले ससुराल जाती है, तो उसका कितना महातम होता है । उसके डोली से उतरते ही वाजे वजते हैं गाव, मुहल्ले की औरतें उसका मुँह देखने आती है और रुपये देती है । महीनो उसे घर-भर से अच्छा खाने को मिलता है, अच्छा पहनने को, कोई काम नही लिया जाता, लेकिन छः महीने वाद कोई उसकी वात भी नही पूछता, वह घर-भर की लौंडी हो जाती है । उनके घर मे मेरी भी तो वही गति होती । फिर काहे का रोना । जो यह कहो कि मैं तो काम करता हूँ, तो तुम्हारी भूल है, मजूर की और वात है । उसे आदमी डाँटता भी है, मारता है, जव चाहता है रखता है, जव जी जाहता है निकाल देता है । कसकर काम लेता है । यह नही कि जव जी

मे आया, कुछ काम किया, जब आया, पड़कर सो रहे।

4

हरिधन अभी पडा अन्दर ही अन्दर सुलग रहा था कि दोनों साले वाहर आये और वडे साहव वोले—भैया, उठो, तीसरा पहर ढल गया, कव तक सोते रहोगे? सारा खेत पडा हुआ है।

हरिधन चट उठ बैठा और तीव्र स्वर मे वोला—क्या तुम लोगों ने मुझे उल्लू समझ लिया है?

दोनो साले हक्का-वक्का हो गए। जिस आदमी ने कभी जवान नही खोली, हमेशा गुलामो की तरह हाथ वाधे हाजिर रहा, वह आज एकाएक इतना आत्माभिमानी हो जाए, यह उनको चौंका देने के लिए काफी था। कुछ जवाव न सूझा।

हरिधन ने देखा, इन दोनो के कदम उखड गये हैं, तो एक धक्का और देने की प्रवल इच्छा को न रोक सका। उसी ढंग से वोला—मेरी भी आखें है, अन्धा नहीं हूँ, न वहरा ही हूँ। छाती फाडकर काम करूँ और उस पर भी कुत्ता समझा जाऊँ, ऐसे गधे कही और होगे।

अव वडे साले भी गर्म पडे—तुम्हें किसी ने यहाँ वांध तो नही रखा है।

अवकी हरिधन लाजवाव हुआ। कोई वात न सूझी।

वडे ने फिर उसी ढग से कहा—अगर तुम यह चाहो कि जन्म-भर पाहुने वने रहो और तुम्हारा वैसा ही आदर-सत्कार होता रहे, तो यह हमारे वस की वात नही है।

हरिधन ने आखें निकालकर कहा—क्या मैं तुम लोगो से कम काम करता हूँ?

वडे—यह कौन कहता है?

हरिधन—तो तुम्हारे घर की यही नीति है कि जो सवसे ज्यादा काम करे, वही भूखो मारा जाए?

वड़े—तुम खुद खाने नही गये। क्या कोई तुम्हारे मुँह में कौर डाल देता?
हरिधन ने ओठ चवाकर कहा—मैं खुद खाने नही गया! कहते तुम्हें लाज नही आती।

'नही आयी थी वहन तुम्हे वुलाने?'

हरिधन की आखो मे खून उतर आया, दांत पीसकर रह गया।

छोटे साले ने कहा—अम्मां भी आयी थी। तुमने कह दिया, मुझे भूख नही है, तो क्या करती।

सास भीतर से लपकी चली आ रही थी। यह बात सुनकर बोली—कितना कहकर हार गई, कोई उठे न तो मैं क्या करू।

हरिधन ने विष, खून और आग से भरे हुए स्वर मे कहा—मैं तुम्हारे लडकों का जूठा खाने के लिए हूँ! मैं कुत्ता हूँ कि तुम लोग खाकर मेरे सामने रूखी रोटी का एक टुकडा फेंक दो?

बुढिया ने ऐंठकर कहा—तो क्या तुम लडको की बराबरी करोगे?

हरिधन परास्त हो गया! बुढिया ने एक ही वाक्प्रहार मे उसका काम तमाम कर दिया। उसकी तनी हुई भवें ढीली पढ गईं, आँखो की आग बुझ गई, फडकते हुए नथुने शांत हो गए। किसी आहत मनुष्य की भाँति वह जमीन पर गिर पडा। 'क्या तुम मेरे लडको की बराबरी करोगे?' यह वाक्य एक लम्बे भाले की तरह उसके हृदय मे चुभता चला जाता था—न हृदय का अन्त था, न उस भाले का!

5

सारे घर ने खाया, पर हरिधन न उठा। सास ने मनाया, सालियो ने मनाया, ससुर ने मनाया, दोनो साले मनाकर हार गए। हरिधन न उठा, वही द्वार पर एक टाट पडा था। उसे उठाकर सबसे अलग कुएँ पर ले गया और जगत पर बिछाकर पड रहा।

रात भीग चुकी थी। अनन्त आकाश मे उज्ज्वल तारे बालको की भाति क्रीडा कर रहे थे। कोई नाचता था, कोई उछलता था, कोई हँसता था, कोई आखें मीचकर फिर खोल देता था। रह-रहकर कोई साहसी बालक सपाटा भर कर एक पल मे उस विस्तृत क्षेत्र को पार कर लेता था और न जाने कहा छा जाता था। हरिधन को अपना बचपन याद आया, जब वह भी इसी तरह क्रीडा करता था। उसकी बाल-स्मृतियां उन्ही चमकीले तारो की भाति प्रज्ज्वलित हो गईं। वह अपना छोटा-सा घर, वह आम का बाग, जहा वह केरिया चुना करता था, वह मैदान जहा वह कबड्डी खेला करता था, सब उसको याद आने लगे। फिर अपनी स्नेहमयी माता की सदय मूर्ति उसके सामने खडी हो गई। उन आंखो मे कितना करुणा थी, कितनी दया थी। उसे ऐसा जान पड़ा, मानो माता आँखो मे आँसू भरे, उसे छाती से लगा लेने के लिऐ हाथ फैलाए उनकी ओर चली आ रही है। वह उस मधुर भावना मे अपने को भूल गया। ऐसा जान पडा, मानो माता ने उसे छाती से लगा लिया है और उसके सिर पर हाथ फेर रही है। वह रोने लगा, फूट-फूटकर रोने लगा। आत्म-सम्मोहित दशा मे उसके मुँह से यह शब्द निकले—अम्माँ, तुमने मुझे इतना भुला दिया। देखो, तुम्हारे

प्यारे लाल की क्या दशा हो रही ! कोई उसे पानी को भी नही पूछता। क्या जहाँ तुम हो, वहाँ मेरे लिए जगह नहीं है !

सहसा गुमानी ने आकर पुकारा—क्या सो गए तुम, नौज किसी को ऐसी राच्छसी नीद आये ! चलकर खा क्यो नही लेते ? कब तक कोई तुम्हारे लिए बैठा रहे।

हरिधन उस कल्पना-जगत् से क्रूर प्रत्यक्ष मे आ गया। वही कुएँ की जगत थी, वही फटा हुआ टाट और गुमानी सामने खडी कह रही थी—कब तक कोई तुम्हारे लिए बैठा रहे !

हरिध उठा बैठा और मानो तलवार म्यान से निकालकर बोला—भला, तुम्हें मेरी सुध तो आई ! मैंने तो कह दिया था, मुझे भूख नही है।

गुमानी—तो कै दिन न खाओगे ?

'अब इस घर का पानी भी न पीऊँगा। तुझे मेरे साथ चलना है या नही ?'

दृढ सकल्प से भरे हुए इन शब्दो को सुनकर गुमानी सहम उठी। बोली—कहाँ जा रहे हो ?

हरिधन ने मानो नशे मे कहा—तुझे इससे क्या मतलब ? मेरे साथ चलेगी या नही ? फिर पीछे से न कहना, मुझसे कहा नही।

गुमानी आपत्ति के भाव से बोली—तुम बताते क्यो नही, कहाँ जा रहे हो ?

'तू मेरे साथ चलेगी या नही ?'

'जब तक तुम बता न दोगे, मैं न जाऊँगी।'

'तो मालूम हो गया, तू नही जाना चाहती। मुझे इतना ही पूछना था, नही अब तक मैं आधी दूर निकल गया होता।

यह कहकर उठा और अपने घर की ओर चला। गुमानी पुकारती रही—'सुन लो, सुन लो पर उसने फिरकर भी न देखा।

6

तीस मील की मजिल हरिधन ने पाँच घंटो मे तय की। जब वह अपने गाँव की अमराइयो के सामने पहुचा, तो उसकी मातृ-भावना उषा की सुनहरी गोद मे खेल रही थी। उन वृक्षो को देखकर उसका विह्वल हृदय नाचने लगा। मन्दिर का सुनहरा कलश देखकर वह इस तरह दौडा, मानो एक छलाँग मे उसके ऊपर जा पहुचेगा। वह वेग मे दौडा जा रहा था, मानो उसकी माता गोद फैलाए उसे बुला रही हो। जब वह आमो के बाग मे पहुचा, जहाँ डालियो पर बैठकर वह हाथी की सवारी का आनन्द पाता था, जहाँ की कच्ची बेरो और लिसोडो मे एक स्वर्गीय स्वाद था, तो वह बैठ गया और भूमि पर सिर झुका कर रोने लगा,

मानो अपनी माता को अपनी विपत्ति-कथा सुना रहा हो। वहाँ की वायु मे, वहाँ की प्रकाश मे, मानो उसकी विराट्-रूपिणी माता व्याप्त हो रही थी। वहाँ की अगुल-अगुल भूमि माता के पद-चिन्हो से पवित्र थी, माता के स्नेह मे डूबे हुए शब्द अभी तक मानो आकाश मे गूंज रहे थे। इस वायु और इस आकाश मे न जाने कौन-सी सजीवनी थी, जिसने उसके शोकार्त्त हृदय को फिर बालोत्साह से भर दिया। वह एक पेड पर चढ गया और अधर से आम तोड़-तोडकर खाने लगा। सास के वह कठोर शब्द, स्त्री का वह निष्ठुर आघात, वह सारा अपमान उसे भूल गया। उसके पाँव फूल गए थे, तलवो मे जलन हो रही थी, पर इस आनद मे उसे किसी बात का ध्यान न था।

सहसा रखवाले ने पुकारा—वह कौन ऊपर चढा है रे ? उतर अभी, नही तो ऐसा पत्थर खीचकर मारूँगा कि वही ठडे हो जाओगे।

उसने कई गालियाँ भी दी। इस फटकार और इन गालियो मे इस समय हरिधन को अलौकिक आनद मिल रहा था। वह डालियो मे छिप गया, कई आम काट-काट नीचे गिराए, और जोर से ठट्ठा मारकर हँसा। ऐसी उल्लास से भरी हुई हँसी उसने बहुत दिन से न हँसी थी।

रखवाले को यह हँसी परिचित मालूम हुई। मगर हरिधन यहाँ कहाँ ? वह ससुराल की रोटियाँ तोड रहा है ? पेड की डाल से तालाब मे कूद पडता था। अब गाँव मे ऐसा कौन है ?

डाँटकर बोला—वहाँ से बैठे-बैठे हँसोगे, तो आकर सारी हँसी निकाल दूंगा, नही सीधे उतर आओ।

वह गालियाँ देते जा रहा था कि एक गुठली आकर उसके सिर पर लगी। सिर हिलाता हुआ बोला—यह कौन शैतान है, नही मानता। ठहर तो, मैं आकर तेरी खबर लेता हूँ।

उसने अपनी लकडी नीचे रख दी और बदरो की तरह चट-पट ऊपर चढ गया। देखा तो हरिधन बैठा मुस्करा रहा है। चकित होकर बोला—अरे हरि-धन ! तुम यहा कब आये ? इस पेड पर कब से बैठे हो ?

दोनो बचपन के सखा वही गले मिले।

'यहा कब आये ? चलो, घर चलो। भले आदमी, क्या वहाँ आम भी मयस्सर न होते थे ?'

हरिधन ने मुस्कराकर कहा—मँगरू, इन आमो मे जो स्वाद है, वह और कही के आमो मे नही है। गाँव का क्या रग-ढग है ?

मगरू—सब चैनचान है भैया ! तुमने जैसे नाता ही तोड लिया। इस तरह कोई अपना गाँव-घर छोड देता है ? जब से तुम्हारे दादा मरे, सारी गिरस्ती चौपट हो गई। दो छोटे-छोटे लडके हैं। उनके किए क्या होता है।

हरिधन—अव उस गिरस्ती से क्या वास्ता है भाई ? मैं तो अपना ले-दे चुका। मजूरी तो मिलेगी न ? तुम्हारी गैया मैं ही चरा दिया करूँगा; मुझे खाने को दे देना।

मँगरू ने अविश्वास के भाव से कहा—अरे भैया, कैसी बातें करते हो, तुम्हारे लिए जान हाजिर है। क्या ससुराल मे अब न रहोगे ? कोई चिन्ता नही। पहले तो तुम्हारा घर ही है। उसे सँभालो ? छोटे-छोटे वच्चे हैं, उनको पालो। तुम नई अम्माँ से नाहक डरते थे। वडी सीधी है वेचारी। वस, अपनी माँ समझो। तुम्हें पाकर तो निहाल हो जाएगी। अच्छा, घरवाली को भी तो लाओगे ?

हरिधन—उसका अव मुह न देखूँगा। मेरे लिए वह मर गई।

मगरू—तो दूसरी सगाई हो जाएगी। अवकी ऐसी महेरिया ला दूंगा कि उसके पैर धो-धो पियोगे, लेकिन कही पहली भी आ गई तो ?

हरिधन—वह न आएगी।

7

हरिधन अपने घर पहुचा तो दोनो भाई, 'भैया आये ? भैया आये ?' कह कर भीतर दौडे और माँ को खवर दी।

उस घर मे कदम रखते ही हरिधन को ऐसी शाति महिमा का अनुभव हुआ, मानो वह अपनी माँ की गोद मे बैठा हुआ है। इतने दिनो ठोकरें खाने से उसका हृदय कोमल हो गया था। जहाँ पहिले अभिमान था, आग्रह था, हेकडी थी, वहाँ अव निराशा थी, पराजय और याचना थी। बीमारी का जोर कम हो चला था, अव उस पर मामूली दवा भी असर कर सकती थी। किले की दीवारें छिद चुकी थीं अव उसमे घुस जाना असाध्य न था। वही घर जिससे वह एक दिन विरक्त हो गया था, अव गोद फैनाए उसे आश्रय देने को तैयार था। हरिधन निरवलम्ब मन यह आश्रय पाकर मानो तृप्त हो गया।

शाम को विमाता ने कहा—वेटा, तुम घर आ गए, हमारे धन भाग। अव इन वच्चो को पालो। माँ का नाता न सही, वाप का नाता तो है ही। मुझे एक रोटी दे देना, खाकर एक कोने मे पडी रहूँगी। तुम्हारी अम्माँ से मेरी वहन का नाता है। उस नाते से तुम लडके होते हो।

हरिधन ने मातृ-विह्वल आँखो से विमाता के रूप मे अपनी माता के दर्शन किए। घर के एक-एक कोने मे मातृ-स्मृतियो की छटा चाँदनी की भाति छिटकी हुई थी, विमाता का प्रौढ मुखमडल भी उसी छटा से रजित था।

दूसरे दिन हरिधन फिर कधे पर हल रखकर खेत को चला गया। उसके मुख पर उल्लास था और आँखो मे गर्व। वह अव किसी का आश्रित नही,

आश्रयदाता था, किसी के द्वार का भिक्षुक नही, घर का रक्षक था।

एक दिन उसने सुना, गुमानी ने दूसरा घर कर लिया। माँ से बोला—तुमने सुना काकी ! गुमानी ने घर कर लिया।

काकी ने कहा—घर क्या कर लेगी, ठट्ठा है ! विरादरी मे ऐसा अँधेर ? पचायत नही, अदालत तो है ?

हरिधन ने कहा—नही काकी, वहुत अच्छा हुआ। ला, महावीरजी को लड्डू चढा आऊँ। मैं तो डर रहा था, कही मेरे गले न आ पड़े। भगवान् ने मेरी सुन ली। मैं वहाँ से यही ठानकर चला था, अव उसका मुँह न देखूगा।

पूस की रात

हल्कू ने आकर स्त्री से कहा—सहना आया है। लाओ, जो रुपये रखे हैं, उसे दे दूं, किसी तरह गला तो छूटे।

मुन्नी झाड लगा रही थी। पीछे फिरकर वोली—तीन ही तो रुपये हैं, दे दोगे तो कम्मल कहाँ से आवेगा? माघ-पूस की रात हार मे कैसे कटेगी? उससे कह दो, फसल पर दे देंगे। अभी नही।

हल्कू एक क्षण अनिश्चित दशा मे खडा रहा। पूस सिर पर आ गया, कम्मल के विना रात को वह किसी तरह सो नहीं सकता। मगर सहना मानेगा नही, घुडकियाँ जमावेगा, गालियाँ देगा। वला से जाडो मे मरेंगे, वला तो सिर से टल जाएगी। यह सोचता हुआ वह अपना भारी भरकम डील लिये हुए (जो उसके नाम को झूठ सिद्ध करता था) स्त्री के समीप आ गया और खुशामद करके वोला—ला दे दे, गला तो छूटे। कम्मल के लिए कोई दूसरा उपाय सोचूगा।

मुन्नी उसके पास से दूर हट गयी और आँखें तरेरती हुई वोली—कर चुके दूसरा उपाय! जरा सुनूं तो कौन उपाय करोगे? कोई खैरात दे देगा कम्मल? न जाने कितनी वाकी है, जो किसी तरह चुकने ही नही आती। मैं कहती हूँ, तुम क्यो नही खेती छोड देते? मर-मर काम करो, उपज हो तो वाकी दे दो, चलो छुट्टी हुई। वाकी चुकाने के लिए ही तो हमारा जन्म हुआ है। पेट के लिए मजूरी करो। ऐसी खेती से वाज आये। मैं रुपये न दूगी!

हल्कू उदास होकर वोला—तो क्या गाली खाऊँ!

मुन्नी ने तडपकर कहा—गाली क्यो देगा, क्या उसका राज है?

मगर यह कहने के साथ ही उसकी तनी हुई भौंहे ढीली पड गई। हल्कू के उस वाक्य मे जो कठोर सत्य था, वह मानो एक भीषण जतु की भाँति उसे घूर रहा था।

उसने जाकर आले पर से रुपये निकाले और लाकर हल्कू के हाथ पर रख दिये फिर बोली—तुम छोड़ दो अवकी से खेती। मजूरी मे सुख से एक रोटी खाने को तो मिलेगी। किसी की धौंस तो न रहेगी। अच्छी खेती है! मजूरी करके लाओ, वह भी उसी मे झोक दो, उस पर धौंस।

हल्कू ने रुपये लिये और इस तरह बाजार चला, मानो अपना हृदय निकाल कर देने जा रहा हो। उसने मजूरी से एक-एक पैसा काट-काटकर तीन रुपये कम्बल के लिए जमा किए थे। वह आज निकले जा रहे थे। एक-एक पग के साथ उसका मस्तक अपनी दीनता के भार से दबा जा रहा था।

2

पूस की अँधेरी रात! आकाश पर तारे भी ठिठुरते हुए मालूम होते थे। हल्कू अपने खेत के किनारे ऊख के पत्तो की एक छतरी के नीचे बास के खटोले पर अपनी पुरानी गाढे की चादर ओढे पडे काँप रहा था। खाट के नीचे उनका संगी कुत्ता जबरा पेट मे मुंह डाले सर्दी से कू-कू कर रहा था। दो मे मे एक को भी नीद न आती थी।

हल्कू ने घुटनियो को गरदन मे चिपकाते हुए कहा—क्यो जबरा, जाडा लगता है? कहता तो था, घर मे पुआल पर लेट रह, तो यहाँ क्या लेने आये थे। अब खाओ ठड, मै क्या करूँ। जानते थे, मै वहाँ हलुवा-पूरी खाने आ रहा हूँ, दौड़े-दौडे आगे-आगे चले आये। अब रोओ नानी के नाम को।

जबरा ने पडे-पडे दुम हिलायी और अपनी कू-कूँ को दीर्घ बनाता हुआ एक बार जम्हाई लेकर चुप हो गया। उसकी श्वान बुद्धि ने शायद ताड लिया, स्वामी को मेरी कू-कू से नीद नही आ रही है।

हल्कू ने हाथ निकालकर जबरा की ठडी पीठ सहलाते हुए कहा—कल मे मत आना मेरे साथ, नही तो ठडे हो जाओगे। यह रॉड पछुआ न जाने कहां से बरफ लिये आ रही है उठूं, फिर एक चिलम भरू। किसी तरह रात तो कटे! आठ चिलम तो पी चुका। यह खेती का मजा है! और एक भगवान् ऐसे पड़े हैं, जिनके पास जाडा जाए तो गरमी से घबडाकर भागे! मोटे-मोटे गद्दे, लिहाफ, कम्बल, मजाल है, जाडे का गुजर हो जाए। तकदीर की खूबी है। मजूरी हम करें, मजा दूसरे लूटें!

हल्कू उठा, गड्ढे मे से जरा-सी आग निकालकर चिलम भरी। जबरा भी उठ बैठा।

हल्कू ने चिलम पीते हुए कहा—पिएगा चिलम, जाड़ा तो क्या जाता है, हाँ जरा, मन बदल जाता है!

जबरा ने उसके मुँह की ओर प्रेम से छलकती हुई आँखो से देखा।

हल्कू—आज और जाडा खा ले। कल से मैं यहाँ पुआल बिछा दूँगा। उसी मे घुसकर बैठना, तब जाडा न लगेगा।

जबरा ने अपने पजे उसकी घुटनियो पर रख दिए और उसके मुँह के पास अपना मुँह ले गया। हल्कू को उसकी गर्म सांस लगी।

चिलम पीकर हल्कू फिर लेटा और निश्चय करके लेटा कि चाहे कुछ हो अबकी सो जाऊँगा, पर एक ही क्षण मे उसके हृदय मे कम्पन होने लगा। कभी इस करवट लेटता, कभी उस करवट, पर जाडा किसी पिशाच की भाँति उसकी छाती को दबाए हुए था।

जब किसी तरह न रहा गया, उसने जबरा को धीरे से उठाया और उसके सिर को थप-थपाकर उसे अपनी गोद मे सुला लिया। कुत्ते की देह से जाने कैसी दुर्गन्ध आ रही थी, पर वह उसे अपनी गोद मे चिमटाए हुए ऐसे सुख का अनुभव कर रहा था, जो इधर महीनो से उसे न मिला था। जबरा शायद समझ रहा था कि स्वर्ग यही है, और हल्कू की पवित्र आत्मा मे तो उस कुत्ते के प्रति घृणा की गध तक न थी। अपने किसी अभिन्न मित्र या भाई को भी वह इतनी ही तत्परता से गले लगाता। वह अपनी दीनता से आहत न था, जिसने आज उसे इस दशा को पहुचा दिया। नही, इस अनोखी मैत्री ने जैसे उसकी आत्मा के सब द्वार खोल दिए थे और उसका एक-एक अणु प्रकाश से चमक रहा था।

सहसा जबरा ने किसी जानवर की आहट पाई। इस विशेष आत्मीयता ने उसमे एक नई स्फूर्ति पैदा कर दी थी, जो हवा के ठंडे झोको को तुच्छ समझती थी। वह झपटकर उठा और छपरी के बाहर आकर भूंकने लगा। हल्कू ने उसे कई बार चुमकारकर बुलाया, पर वह उसके पास न आया। हार मे चारो तरफ दौड़-दौड़कर भूँकता रहा। एक क्षण के लिए आ भी जाता, तो तुरन्त ही फिर दौड़ता। कर्तव्य उसके हृदय मे अरमान की भाति उछल रहा था।

3

एक घटा और गुजर गया। रात ने शीत को हवा से धधकाना शुरू किया। हल्कू उठ बैठा और दोनो घुटनो को छाती से मिलाकर सिर को उसमे छिपा लिया, फिर भी ठंड कम न हुई। ऐसा जान पड़ता था, सारा रक्त जम गया है, धमनियो मे रक्त की जगह हिम बह रही है। उसने झुककर आकाश की ओर देखा, अभी कितनी रात बाकी है! सप्तर्षि अभी आकाश मे आधे भी नही चढ़े। ऊपर आ जाएँगे तब कही सवेरा होगा। अभी पहर से ऊपर रात है।

हल्कू के खेत से कोई एक गोली के टप्पे पर आमो का एक बाग था। पत-झड़ शुरू हो गई थी। बाग मे पत्तियो का ढेर लगा हुआ था। हल्कू ने सोचा, चलकर पत्तियां बटोरूँ और उन्हे जलाकर खूब तापूँ। रात को कोई मुझे पत्तियाँ बटोरते देखे तो समझे; कोई भूत है। कौन जाने, कोई जानवर ही छिपा बैठा हो, मगर अब तो बैठे नही रहा जाता।

उसने पास के अरहर के खेत मे जाकर कई पौधे उखाड़ लिए और उनका

एक झाड़ बनाकर हाथ मे सुलगता हुआ उपला [illegible]
जबरा ने उसे आते देखा, पास आया और दुम हिला[illegible]

हल्कू ने कहा—अब तो नही रहा जाता जबरू। [illegible]
बटोरकर तापें। टाटे हो जाएँगे, तो फिर आकर सोएँगे। [illegible]

जबरा ने कूँ-कूँ करके सहमति प्रकट की और आगे [illegible]

बगीचे मे खूब अँधेरा छाया हुआ था और अँधकार मे [illegible]
को कुचलता हुआ चला जाता था। वृक्षो से ओस की बूँदें टपटप [illegible]
रही थी।

एकाएक एक झोका मेहदी के फूलो की खुशबू लिये हुए आया।

हल्कू ने कहा—कैसी अच्छी महक आई जबरू। तुम्हारी नाक में भी [illegible]
सुगंध आ रही है?

जबरा को कही जमीन पर एक हड्डी पडी मिल गई थी। उसे [illegible]
रहा था।

हल्कू ने आग जमीन पर रख दी और पत्तियाँ बटोरने लगा। जरा देर में
पत्तियो का ढेर लग गया। हाथ ठिठुरे जाते थे। नगे पाव गले जाते थे। और
वह पत्तियो का पहाड़ खडा कर रहा था। इसी अलाव मे वह ठड को जलाकर
भस्म कर देगा।

थोडी देर मे अलाव जल उठा। उसकी लौ ऊपरवाले वृक्ष की पत्तियो को
छू-छूकर भागने लगी। उस अस्थिर प्रकाश मे बगीचे के विशाल वृक्ष ऐसे मालूम
होते थे, मानो उस अथाह अन्धकार को अपने सिरो पर सँभाले हुए हो। अन्ध-
कार के उस आनन्द सागर से यह प्रकाश एक नौका के समान हिलता, मचलता
हुआ जान पडता था।

हल्कू अलाव के सामने बैठा आग ताप रहा था। एक क्षण मे उसने दोहर
उतारकर बगल मे दबा ली, दोनो पाँव फैला दिए, मानो ठड को ललकार रहा
हो, 'तेरे जी मे आए सो कर।' ठड की असीम शक्ति पर विजय पाकर वह
विजय-गर्व को हृदय मे छिपा न सकता था।

उसने जबरा से कहा—क्यो जब्बर, अब ठड नही लग रही है?

जब्बर ने कूँ-कूँ करके मानो कहा—अब क्या ठंड लगती ही रहेगी?

'पहले से यह उपाय न सूझा, नही इतनी ठंड क्यो खाते।'

जब्बर ने पूँछ हिलायी।

'अच्छा आओ, इस अलाव को कूदकर पार करें। देखें, कौन निकल जाता
है। अगर जल गए बचा, तो मैं दवा न करूँगा।'

जब्बर ने उस अग्नि-राशि की ओर कातर नेत्रो से देखा!

'मुन्नी से कल न कह देना, नही लड़ाई करेगी।'

यह कहता हुआ वह उछला और उस अलाव के ऊपर से साफ निकल गया ! र मे जरा लपट लगी, पर वह कोई बात न थी । जबरा आग के गिर्द घूमकर उसके पास आ खड़ा हुआ ।

हल्कू ने कहा—चलो-चलो, इसकी सही नही ! ऊपर से कूदकर आओ। वह फिर कूदा और अलाव के इस पार आ गया !

4

पत्तियाँ जल चुकी थी । बगीचे मे फिर अन्धेरा छाया था। राख के नीचे कुछ-कुछ आग बाकी थी, जो हवा का झोका आ जाने पर जरा जाग उठती थी, पर एक क्षण मे फिर आँखें बन्द कर लेती थी ।

हल्कू ने फिर चादर ओढ़ ली और गर्म राख के पास बैठा हुआ एक गीत गुनगुनाने लगा । उसके बदन मे गर्मी आ गई थी, पर ज्यो-ज्यो शीत बढती जा ती थी, उसे आलस्य दबाए लेता था ।

जबरा जोर से भूँककर खेत की ओर भागा । हल्कू को ऐसा मालूम हुआ कि जानवरो का एक झुण्ड उसके खेत मे आया है। शायद नीलगायो का झुण्ड था । उनके कूदने-दौड़ने की आवाजें साफ कान मे आ रही थी । फिर ऐसा मालूम हुआ कि खेत मे चर रही हैं । उनके चबाने की आवाज चर-चर सुनाई देने लगी ।

उसने दिल मे कहा—नही, जबरा के होते कोई जानवर खेत मे नही आ सकता । नोच ही डाले । मुझे भ्रम हो रहा है । कहाँ ! अब तो कुछ नही सुनाई देता । मुझे भी कैसा धोखा हुआ ।

उसने जोर से आवाज लगायी—जबरा, जबरा ।

जबरा भूंकता रहा । उसके पास न आया ।

फिर खेत के चरे जाने की आहट मिली । अब वह अपने को धोखा न दे सका । उसे अपनी जगह से हिलना जहर लग रहा था । कैसा ददाया हुआ बैठा था । इस जाडे-पाले में खेत मे जाना, जानवरो के पीछे दौडना असह्य जान पडा । वह अपनी जगह से न हिला ।

उसने जोर से आवाज लगायी—हिलो ! हिलो !! हिलो !!

जबरा फिर भूँक उठा । जानवर खेत चर रहे थे । फसल तैयार है। कैसी अच्छी खेती थी, पर ये दुष्ट जानवर उसका सर्वनाश किए डालते है !

हल्कू पक्का इरादा करके उठा और दो-तीन कदम चला, पर एकाएक हवा का ऐसा ठडा, चुभनेवाला, बिच्छू के डक का-सा झोका लगा कि वह फिर बुझते हुए अलाव के पास आ बैठा और राख को कुरेदकर अपनी ठडी देह को

गर्माने लगा।

जबरा अपना गला फाड़े डालता था, नीलगायें खेत का सफाया किए डालती थी और हल्कू गर्म राख के पास शांत बैठा हुआ था। अकर्मण्यता ने रस्सियों की भाँति उसे चारो तरफ से जकड़ रखा था।

उसी राख के पास गर्म जमीन पर वह चादर ओढ़कर सो गया।

सवेरे जब उसकी नींद खुली, तब चारो तरफ धूप फैल गई थी और मुन्नी कह रही थी—क्या आज सोते ही रहोगे? तुम यहाँ आकर रम गए और उधर सारा खेत चौपट हो गया।

हल्कू ने उठकर कहा—क्या तू खेत से होकर आ रही है?

मुन्नी बोली—हाँ, सारे खेत का सत्यानाश हो गया। भला, ऐसा भी कोई सोता है। तुम्हारे यहाँ मँडैया डालने से क्या हुआ?

हल्कू ने बहाना किया—मैं मरते-मरते बचा, तुझे अपने खेत की पड़ी है। पेट मे ऐसा दरद हुआ, ऐसा दरद हुआ कि मैं ही जानता हूँ!

दोनो फिर खेत के डाँड पर आये। देखा, सारा खेत रौंदा पड़ा हुआ है और जबरा मँडैया के नीचे चित लेटा है, मानो प्राण ही न हो।

दोनो खेत की दशा देख रहे थे। मुन्नी के मुख पर उदासी छायी थी, पर हल्कू प्रसन्न था।

मुन्नी ने चिंतित होकर कहा—अब मजूरी करके मालगुजारी भरनी पड़ेगी।

हल्कू ने प्रसन्न मुख से कहा—रात को ठंड मे यहाँ सोना तो न पड़ेगा।

झाँकी

कई दिन से घर मे कलह मचा हुआ था। माँ अलग मुँह फुलाए बैठी थी, स्त्री अलग। घर की वायु मे जैसे विष भरा हुआ था। रात को भोजन नही वना, दिन को मैंने स्टोव पर खिचड़ी डाली, पर खाया किसी ने नही। वच्चों को भी आज भूख न थी। छोटी लडकी मेरे पास आकर खडी हो जाती, कभी माता के पास, कभी दादी के पास, पर कही उसके लिए प्यार की बातें न थी। कोई उसे गोद मे न उठाता था, मानो उसने भी कोई अपराध किया हो। लडका शाम को स्कूल से आया। किसी ने उसे खाने को न दिया, न उससे वोला, न कुछ पूछा। दोनो वरामदे मे मन मारे वैठे हुए थे और शायद सोच रहे थे—घर मे आज क्यो लोगो के हृदय उनसे इतने फिर गए है। भाई-वहिन दिन मे कितनी वार लडते हैं, रोना-पीटना भी कई वार हो जाता है, पर ऐसा कभी नही होता कि घर मे खाना न पके या कोई किसी से वोले नही। यह कैसा झगड़ा है कि चौवीस घटे गुजर जाने पर भी शांत नही होता, यह शायद उनकी समझ मे न आता था।

झगडे की जड कुछ न थी। अम्माँ ने मेरी वहन के घर तीजा भेजने के लिए जिन सामानो की सूची लिखायी, वह पत्नीजी को घर की स्थिति देखते हुए अधिक मालूम हुई। अम्माँ खुद समझदार हैं। उन्होंने थोडी-वहुत काट-छाँट कर दी थी, लेकिन पत्नीजी के विचार से और काट-छाँट होनी चाहिए थी। पाच साडियो की जगह तीन रहे, तो क्या वुराई है। खिलौने इतने क्यो होगे, इतनी मिठाई की क्या जरूरत! उनका कहना था—जव रोजगार मे कुछ मिलता नही दैनिक कार्यों से खीच-तान करनी पडती है, दूध-घी के वजट मे तकलीफ हो गई, तो फिर तीजे मे क्यो इतनी उदारता की जाए? पहले घर मे दिया जलाकर तव मसजिद मे जलाते हैं। यह नहीं कि मसजिद मे तो दिया जला दें और घर अँधेरा पड़ा रहे। इसी वात पर सास-वहू मे तकरार हो गई, फिर शाखें फूट निकली। वात कहाँ से कहां जा पहुची, गड़े हुए मुर्दे उखाडे गए। अन्योक्तियो की वारी आई, व्यंग्य का दौर शुरू हुआ और मौनालंकार पर समाप्त हो गया।

मैं वड़े संकट मे था। अगर अम्माँ की तरफ से कुछ कहता हूँ, तो पत्नीजी

रोना-धोना शुरू करती हैं, अपने नसीबो को कोसने लगती हैं। पत्नी की-सी कहता हूँ, तो जनमुरीद की उपाधि मिलती है। इसलिए वारी-वारी से दोनो पक्षो का समर्थन करता जाता था, पर स्वार्थवश मेरी सहानुभूति पत्नी के साथ ही थी। मेरे सिनेमा का वजट साल-भर से विलकुल गायव हो गया, पान-पत्ते के खर्च मे भी कमी करनी पडी थी, वाजार की सैर वद हो गई थी। खुल कर तो अम्मां से कुछ न कह सकता था, पर दिल मे समझ रहा था कि ज्यादती उन्ही की है। दुकान का यह हाल है कि कभी-कभी वोहनी भी नही होती। असामियो से टका वसूल नही होता, तो इन पुरानी लकीरो को पीटकर क्यो अपनी जान सकट मे डाली जाए!

वार-वार इस गृहस्थी के जजाल पर तवीयत झुंझलाती थी। घर मे तीन तो प्राणी हैं और उनमे भी प्रेम भाव नही! ऐसी गृहस्थी मे तो आग लगा देनी चाहिए। कभी-कभी ऐसी सनक सवार हो जाती थी कि सवको छोडछाड़कर कही भाग जाऊँ। जव अपने सिर पडेगा तव उनको होश आएगा। तव मालूम होगा कि गृहस्थी कैसे चलती है। क्या जानता था कि यह विपत्ति झेलनी पडेगी, नही विवाह का नाम ही न लेता। तरह-तरह के कुत्सित भाव मन मे आ रहे थे। कोई वात नही? अम्मां मुझे परेशान करना चाहती हैं। वहू उनके पाव नही दवाती, उनके सिर मे तेल नही डालती, तो इसमे मेरा क्या दोष? मैंने उसे मना तो नही कर दिया है। मुझे सच्चा आनन्द होगा, यदि सास-वहू मे इतना प्रेम हो जाए, लेकिन यह मेरी वश की वात नही कि दोनो मे प्रेम डाल दूं। अगर अम्मां ने अपनी सास की साडी धोई है, उनके पाव दवाए हैं, उनकी घुड-किया खाई हैं, तो आज वह पुराना हिसाव वहू से क्यो चुकाना चाहती हैं? उन्हे क्यो नही दिखाई देता कि अव समय वदल गया है। वहुएँ अव भयवश सास की गुलामी नही करती। प्रेम से चाहे उनके सिर के वाल नोच लो, लेकिन जो रोव दिखाकर उन पर शासन करना चाहो, तो वह दिन लद गए।

सारे शहर मे जन्माष्टमी का उत्सव हो रहा था। मेरे घर मे सग्राम छिडा हुआ था। सध्या हो गई थी, पर सारा घर अँधेरा पडा था। मनहूसियत छायी हुई थी। मुझे अपनी पत्नी पर क्रोध आया। लडती हो, लडो, लेकिन घर मे अँधेरा क्यो कर रखा है। जाकर कहा—क्या आज घर मे चिराग न जलेंगे?

पत्नी ने मुंह फुलाकर कहा—जला क्यो नही लेते? तुम्हारे हाथ नही हैं?

मेरी देह मे आग लग गई। वोला—तो क्या जव तुम्हारे चरण नही आये थे, तव घर मे चिराग न जलते थे?

अम्मां ने आग को हवा दी—नही, तव सव लोग अँधेरे ही मे पड रहते थे।

पत्नीजी को अम्मा की इस टिप्पणी ने जामे के वाहर कर दिया। वोली—जलाते होंगे मिट्टी की कुप्पी! लालटेन तो मैंने नही देखी। मुझे इस घर

मे आये दस साल हो गए।

मैंने डाँटा—अच्छा चुप रहो, वहुत वढो नही।

'ओहो ! तुम तो ऐसा डाँट रहे हो, जैसे मुझे मोल लाए हो?'

'मैं कहता हूँ, चुप रहो।'

'क्यो चुप रहूँ ? अगर एक कहोगे, तो दो सुनोगे।'

'इसी का नाम पातिव्रत है ?'

'जैसा मुँह होता है, वैसे ही वीड़े मिलते हैं।'

मैं परास्त होकर वाहर चला आया, और अँधेरी कोठरी मे वैठा हुआ, उस मनहूस घडी को कोसने लगा, जव इस कुलच्छनी से मेरा विवाह हुआ था। इस अधकार मे भी दस साल का जीवन सिनेमा-चित्रो की भाति मेरे स्मृति नेत्रों के सामने दौड गया। उसमे कही प्रकाश की झलक न थी, कहीं स्नेह की मृदुता न थी।

2

सहसा मेरे मित्र पंडित जयदेवजी ने द्वार पर पुकारा—अरे, आज यह अँधेरा क्यो कर रखा है जी ? कुछ सूझता ही नही। कहा हो ?

मैंने कोई जवाव न दिया। सोचा, यह आज कहाँ से आकर सिर पर सवार हो गए।

जयदेव ने फिर पुकारा—अरे, कहा हो भाई ? वोलते क्यो नही ? कोई घर मे है या नही ?

कही से कोई जवाव न मिला।

जयदेव ने द्वार को इतने जोर से झँझोडा कि मुझे भय हुआ, कही दरवाजा चौखट-वाजू समेत गिर न पडे। फिर भी मैं वोला नही। उसका आना खल रहा था।

जयदेव चले गये। मैंने आराम की साँस ली। वारे शैतान टला, नही घंटों सिर खाता।

मगर पाच ही मिनट मे फिर किसी के पैरो की आहट मिली और अवकी टार्च के तीव्र प्रकाश से मेरा सारा कमरा भर उठा। जयदेव ने मुझे वैठे देखकर कुतूहल से पूछा—तुम कहा गये थे जी ? घटो चीखा, किसी ने जवाव तक न दिया। यह आज क्या मामला है ? चिराग क्यो नही जले ?

मैंने वहाना किया—क्या जानें, मेरे सिर मे दर्द था, दुकान से आकर लेटे तो नीद आ गई।

'और सोए तो घोडा वेचकर, मुर्दों से शर्त लगाकर ?'

'हा यार, नीद आ गई ।'

'मगर घर मे चिराग तो जलाना चाहिए था या उसका रिट्रेंचमेंट कर दिया ?'

'आज घर मे लोग व्रत से हैं। न हाथ खाली होगा ।'

'खैर चलो, कही झाकी देखने चलते हो ? सेठ घूरेमल के मंदिर मे ऐसी झाकी है कि देखते ही बनता है। ऐसे-ऐसे शीशे और बिजली के सामान सजाए हैं कि आँखें झपक उठती है। अशोक के स्तम्भो मे लाल, हरी, नीली वत्तियो की अनोखी वहार है। सिंहासन के ठीक सामने ऐसा फौहारा लगाया है कि उनमे से गुलाबजल की फुहारें निकलती हैं। मेरा तो चोला मस्त हो गया। सीधे तुम्हारे पास दौडा आ रहा हूँ। बहुत झाकिया देखी होगी तुमने, लेकिन यह और ही चीज है। आलम फटा पडता है। सुनते है, दिल्ली मे कोई चतुर कारीगर आया है। उसी की यह करामात है।'

मैंने उदासीन भाव से कहा—मेरी तो जाने की इच्छा नही है भाई ! सिर मे जोर का दर्द है।

'तब तो जरूर चलो। दर्द भाग न जाए तो कहना ।'

'तुम तो यार बहुत दिक करते हो। इसी मारे मैं चुपचाप पडा था कि किसी तरह यह बला टले, लेकिन तुम सिर पर सवार ही हो गए। कह दिया, मैं न जाऊँगा।

'और मैंने कह दिया—मैं जरूर ले जाऊंगा ।'

मुझ पर विजय पाने का मेरे मित्रो को बहुत आसान नुस्खा याद है। यो हाथा-पाई, धींगा-मुश्ती, धौल-धप्पे मे किसी से पीछे रहनेवाला नही हूँ, लेकिन किसी ने मुझे गुदगुदाया और परास्त हुआ। फिर मेरी कुछ नही चलती। मैं हाथ जोडने लगता हूँ, घिघियाने लगता हूँ और कभी-कभी रोने लगता हूँ। जयदेव ने वही नुस्खा आजमाया और उसकी जीत हो गई। सधि की यही शर्त ठहरी कि मैं चुपके से झाकी देखने चला चलूं।

3

सेठ घूरेलाल उन आदमियो मे है, जिनका प्रात को नाम ले लो, तो दिन भर भोजन न मिले। उनके मक्खीचूसने की सैकडो ही दन्तकथाएँ नगर मे प्रचलित हैं। कहते हैं, एक बार मारवाड का एक भिखारी उनके द्वार पर डट गया कि भिक्षा लेकर ही जाऊँगा। सेठजी भी अड गए कि भिक्षा न दूंगा, चाहे कुछ हो। मारवाडी उन्ही के देश का था। कुछ देर तो उनके पूर्वजो का बखान करता रहा, फिर उनकी निंदा करने लगा, अत मे द्वार पर लेट रहा। सेठजी ने रत्ती

भर परवाह न की। भिक्षुक अपनी धुन का पक्का था। सारा दिन द्वार पर बे-दाना-पानी पडा रहा और अंत मे वही मर गया। तब सेठ जी पसीजे और उसकी क्रिया इतनी धूम-धाम से की कि बहुत काम किसी ने की होगी। एक लाख ब्राह्मणो को भोजन कराया और लाख ही उन्हे दक्षिणा मे दिया। भिक्षुक का सत्याग्रह सेठजी के लिए वरदान हो गया। उनके अन्त करण मे भक्ति का जैसे स्रोत खुल गया। अपनी सारी सम्पत्ति धर्मार्थ अर्पण कर दी।

हमलोग ठाकुरद्वारे मे पहुचे; तो दर्शको की भीड लगी हुई थी। कंधे से कधा छिलता था। आने और जाने के मार्ग अलग थे, फिर हमे आध घटे के बाद भीतर जाने का अवसर मिला। जयदेव सजावट देख-देखकर लोट-पोट हुए जाते थे, पर मुझे ऐसा मालूम होता था कि इस बनावट और सजावट के मेले मे कृष्ण की आत्मा कही खो गई है। उनकी वह रत्न-जटित, बिजली से जगमगाती मूर्ति देखकर मेरे मन मे ग्लानि उत्पन्न हुई। इस रूप मे भी प्रेम का निवास हो सकता है? उसने तो रत्नो मे दर्प और अहकार ही भरा देखा है। मुझे उस वक्त यही याद न रही, कि यह एक करोडपति सेठ का मन्दिर है और धनी मनुष्य धन मे लोटने वाले ईश्वर ही की कल्पना कर सकता है। धनी ईश्वर मे ही उसकी श्रद्धा हो सकती है। जिसके पास धन नही, वह उसकी दया का पात्र हो सकता है, श्रद्धा का कदापि नही।

मन्दिर मे जयदेव को सभी जानते है। उन्हें तो सभी जगह सभी जानते हैं। मन्दिर के आँगन मे सगीत-मडली बैठी हुई थी। केलकर जी अपने गधर्व-विद्यालय के शिष्यो के साथ तम्बूरा लिये बैठे थे। पखावज, सितार, सरोद, वीणा और जाने कौन-कौन से बाजे, जिनके नाम भी मैं नही जानता, उनके शिष्यो के पास थे। कोई गत बजाने की तैयारी हो रही थी। जयदेव को देखते ही केलकर जी ने पुकारा! मैं भी तुफैल मे जा बैठा। एक क्षण मे गत शुरू हुआ। समा बँध गया।

जहाँ इतना शोर-गुल था कि तोप की आवाज भी न सुनाई देती, वहाँ जैसे माधुर्य के उस प्रवाह ने सब किसी को अपने मे डुबा लिया। जो जहाँ था, वही मंत्र-मुग्ध-सा खडा था। मेरी कल्पना कभी इतनी सचित्र और सजीव न थी। मेरे सामने न वह बिजली की चकाचौंध थी, न वह रत्नो की जगमगाहट, न वह भौतिक विभूतियो का समारोह। मेरे सामने वही यमुना का तट था, गुल्म लताओ का घूंघट मुँह पर डाले हुए। वही मोहनी गउएँ थी, वही गोपियो की जल-क्रीडा, वही वंशी की मधुर ध्वनि, वही शीतल चाँदनी और वही प्यारा नन्दकिशोर! जिसकी मुख-छवि मे प्रेम और वात्सल्य की ज्योति थी, जिसके दर्शनो ही से हृदय निर्मल हो जाते थे।

4

मै इसी आनन्द-विस्मृति की दशा मे था कि कंसर्ट वन्द हो गया और आचार्य केलकर के एक किशोर शिष्य ने धुरपद अलापना शुरू किया। कलाकारो को आदत है कि वह शब्दो को कुछ इस तरह तोड-मरोड देते हैं कि अधिकाश सुनने वालो की समझ मे नही आता कि क्या गा रहे है। इस गीत का एक शब्द भी मेरी समझ मे न आया, लेकिन कण्ठ-स्वर मे कुछ ऐसा मादकता भरा लालित्य था कि प्रत्येक स्वर मुझे रोमाचित कर देता था। कठ-स्वर मे इतनी जादू शक्ति है, इसका मुझे आज कुछ अनुभव हुआ। मन मे एक नए ससार की सृष्टि होने लगी, जहाँ आनन्द-ही-आनन्द है, प्रेम-ही-प्रेम, त्याग-ही-त्याग है। ऐसा जान पडा, दु ख केवल चित्त की एक वृत्ति है, सत्य है केवल आनन्द। एक स्वच्छ, करुणा-भरी कोमलता, जैसे मन को मसोसने लगी। ऐसी भावना मन मे उठी कि वहाँ जितने सज्ज्जन वैठे हुए थे, सव मेरे अपने है, अभिन्न हैं। फिर अतीत के गर्भ से मेरे भाई की स्मृति-मूर्ति निकल आई।

मेरा छोटा भाई वहुत दिन हुए, मुझसे लडकर, घर की जमा-थमा लेकर रगून भाग गया था, और वही उसका देहान्त हो गया था। उसके पाशविक व्यवहारो को याद करके मै उन्मत्त हो उठता था। उसे जीता पा जाता हो शायद उसका खून पी जाता, पर इस समय स्मृति-मूर्ति को देखकर मेरा मन जैसे मुखरित हो उठा। उसे आलिगन करने के लिए व्याकुल हो गया। उसने मेरे साथ, मेरी स्त्री के साथ, माता के साथ, मेरे वच्चे के साथ, जो-जो कटु, नीच और घृणास्पद व्यवहार किए थे, वह सव मुझे भूल गए। मन मे केवल यही भावना थी—मेरा भैया कितना दुःखी है। मुझे इस भाई के प्रति कभी इतनी ममता न हुई थी, फिर तो मन की वह दशा हो गई, जिसे विह्वलता कह सकते हैं।

शत्रु-भाव जैसे मन से मिट गया हो। जिन-जिन प्राणियो मे मेरा वैर-भाव था, जिनसे गाली-गलौज, मार-पीट मुकदमावाजी सव कुछ हो चुकी थी, वह सभी जैसे मेरे गले मे लिपट-लिपटकर हँस रहे थे। फिर विद्या (पत्नी) की मूर्ति मेरे सामने आ खड़ी हुई—वह मूर्ति जिसे दस साल पहले मैंने देखा था—उन आँखो मे वही विकल कम्पन था, वही सदिग्ध विश्वास, कपोलो पर वही लज्जा-लालिमा, जैसे प्रेम सरोवर से निकला हुआ कोई कमल पुष्प हो। वही अनुराग, वही आवेश, वही याचना-भरी उत्सुकता, जिसमे मैंने उसे न भूलने वाली रात को उसका स्वागत किया था, एक वार फिर मेरे हृदय मे जाग उठी। मधुर स्मृतियो का जैसे स्रोत-सा खुल गया। जी ऐसा तडपा कि इसी समय जाकर विद्या के चरणो पर सिर रगडकर रोऊँ और रोते-रोते वेसुध हो जाऊँ। मेरी आखें सजल हो गईं। मेरे मुँह से जो कटु शब्द निकले थे, वह सव जैसे मेरे ही हृदय

मे गड़ने लगे । इसी दशा मे, जैसे ममतामयी माता ने आकर मुझे गोद मे उठा लिया। वालपन मे जिस वात्सल्य का आनन्द उठाने की मुझमे शक्ति न थी, वह आनद आज मैंने उठाया ।

गाना वन्द हो गया । सव लोग उठ-उठकर जाने लगे । मै कल्पना सागर मे ही डूवा वैठा रहा ।

सहसा जयदेव ने पुकारा—चलते हो, या वैठे ही रहोगे ?

गुल्ली-डडा

हमारे अँगरेजी दोस्त माने या न मानें, मैं तो यही कहूँगा कि गुल्ली-डडा सब खेलो का राजा है। अब भी कभी लडको को गुल्ली-डडा खेलते देखता हूँ, तो जी लोट-पोट हो जाता है कि इनके साथ जाकर खेलने लगूँ। न लान की जरूरत, न कोर्ट की, न नेट की, न थापी की। मजे से किसी पेड से एक टहनी काट ली, गुल्ली बना ली, और दो आदमी भी आ गए, तो खेल शुरू हो गया।

विलायती खेलो मे सबसे बडा ऐब है कि उनके सामान महँगे होते हैं। जब तक कम-से-कम एक सैकडा न खर्च कीजिए, खिलाडियो मे शुमार ही नही हो सकता। यहाँ गुल्ली-डडा है कि बिना हर्र-फिटकरी के चोखा रग देता है, पर हम अँगरेजी चीजो के पीछे ऐसे दीवाने हो रहे हैं कि अपनी सभी चीजो से अरुचि हो गई। स्कूलो मे हरेक लडके से तीन-चार रुपये सालाना केवल खेलने की फीस ली जाती है। किसी को यह नही सूझता कि भारतीय खेल खिलाएँ, जो बिना दाम-कौडी के खेले जाते हैं। अँगरेजी खेल उनके लिए हैं, जिनके पास धन है। गरीब लडको के सिर क्यो यह व्यसन मढते हो? ठीक है, गुल्ली से आँख फूट जाने का भय रहता है, तो क्रिकेट मे सिर फूट जाने, तिल्ली फट जाने, टाँग टूट जाने का भय नही रहता! अगर हमारे माथे मे गुल्ली का दाग आज तक बना हुआ है, तो हमारे कई दोस्त ऐसे भी है, जो थापी को बैशाखी मे बदल बैठे। यह अपनी-अपनी रुचि है। मुझे गुल्ली ही सब खेलो से अच्छी लगती है और बचपन की मीठी स्मृतियो मे गुल्ली ही सबसे मीठी है।

वह प्रातःकाल घर से निकल जाना, वह पेड पर चढकर टहनियाँ काटना और गुल्ली-डडे बनाना, वह लडाई-झगडे, वह सरल स्वभाव, जिससे छूत-अछूत, अमीर-गरीब का बिलकुल भेद न रहता था, जिसमे अमीराना चोचलो की, प्रदर्शन की, अभिमान की गुंजाइश ही न थी, यह उसी वक्त भूलेगा जब···जब··। घरवाले बिगड रहे हैं, पिताजी चौके पर बैठे वेग से रोटियो पर अपना क्रोध उतार रहे है, अम्माँ की दौड केवल द्वार तक है, लेकिन उनकी विचार-धारा मे मेरा अधकारमय भविष्य टूटी हुई नौका की तरह डगमगा रहा है, और मैं हूँ कि पदाने मे मस्त हूँ, न नहाने की सुधि है, न खाने की। गुल्ली है तो जरा-सी, पर उनमे

दुनिया भर की मिठाइयो की मिठास और तमाशो का आनंद भरा हुआ है ।

मेरे हमजोलियो मे एक लड़का गया नाम का था । मुझसे दो-तीन साल वडा होगा । दुवला, लम्वा, वंदरो की-सी लम्वी-लम्वी, पतली-पतली उँगलियाँ, वदरो की-सी ही चपलता, वही झल्लाहट । गुल्ली कैसी ही हो, उस पर इस तरह लपकता था, जैसे छिपकली कीडों पर लपकती है । मालूम नही, उसके माँ-वाप थे या नही, कहाँ रहता था, क्या खाता था, पर था हमारे गुल्ली-क्लव का चैम्पियन । जिसकी तरफ वह आ जाए, उसकी जीत निश्चित थी । हम सव उसे दूर से आते देख, उसका दौड़कर स्वागत करते थे और उसे अपना गोइयाँ बना लेते थे ।

एक दिन मैं और गया दो ही खेल रहे थे । वह पदा रहा था । मैं पद रहा था, मगर कुछ विचित्र वात है कि पदाने मे हमदिन-भर मस्त रह सकते हैं, पदना एक मिनट का भी अखरता है । मैंने गला छुडाने के लिए सव चालें चली, जो ऐसे अवसर पर शास्त्र-विहित न होने पर भी क्षम्य हैं, लेकिन गया अपना दाँव लिए वगैर मेरा पिंड न छोडता था ।

मैं घर की ओर भागा । अनुनय-विनय का कोई असर न हुआ ।

गया ने मुझे दौडकर पकड लिया और डंडा तानकर वोला—मेरा दाव देकर जाओ । पदाया तो वडे वहादुर वनके, पदने के वेर क्यो भागे जाते हो ?

'तुम दिन-भर पदाओ तो मैं दिन-भर पदता रहूँ !'

'हाँ, तुम्हे दिन-भर पदना पडेगा ।'

'न खाने जाऊँ, न पीने जाऊँ ?'

'हां ! मेरा दाँव दिये विना कही नही जा सकते ।'

'मैं तुम्हारा गुलाम हूँ ?'

'हाँ, मेर गुलाम हो ।'

'मैं घर जाता हूँ, देखू मेरा क्या कर लेते हो !'

'घर कैसे जाओगे, कोई दिल्लगी है । दाँव दिया है, दाँव लेंगे ।'

'अच्छा कल मैंने अमरूद खिलाया था । वह लौटा दो ।'

'वह तो पेट मे चला गया ।'

'निकालो पेट से । तुमने क्यो खाया मेरा अमरूद ?'

'अमरूद तुमने दिया, तव मैंने खाया । मैं तुमसे माँगने न गया था ।'

'जव तक मेरा अमरूद न दोगे, मैं दाव न दूंगा ।'

मैं समझता था, न्याय मेरी ओर है । आखिर मैंने किसी स्वार्थ से ही उसे अमरूद खिलाया होगा । कौन नि स्वार्थ किसी के साथ सलूक करता है । भिक्षा तक तो स्वार्थ के लिए ही देते हैं । जव गया ने अमरूद खाया, तो फिर उसे मुझसे दाँव लेने का क्या अधिकार है । रिश्वत देकर तो लोग खून पचा जाते हैं । यह

मेरा अमरूद यो ही हजम कर जाएगा ! अमरूद पैसे के पाँचवाले थे, जो गया के वाप को भी नसीव न होंगे । यह सरासर अन्याय था ।

गया ने मुझे अपनी ओर खीचते हुए कहा—मेरा दाँव देकर जाओ, अमरूद-समरूद मैं नही जानता ।

मुझे न्याय का वल था । वह अन्याय पर डटा हुआ था । मैं हाथ छुडाकर भागना चाहता था । वह मुझे जाने न देता ! मैंने उसे गाली दी, उसने उससे कडी गाली दी, और गाली ही नही, एक चाँटा जमा दिया । मैंने उसे दाँत काट लिया । उसने मेरी पीठ पर डडा जमा दिया । मैं रोने लगा । गया मेरे इस अस्त्र का मुकावला न कर सका । भागा । मैंने तुरन्त आँसू पोछ डाले, डडे की चोट भूल गया और हँसता हुआ घर जा पहुचा ! मैं थानेदार का लडका एक नीच जात के लौंडे के हाथो पिट गया, यह मुझे उस समय भी अपमानजनक मालूम हुआ, लेकिन घर मे किसी से शिकायत न की ।

2

उन्ही दिनो पिताजी का वहाँ से तवादला हो गया । नई दुनिया देखने की खुशी मे ऐसा फूला कि अपने हमजोलियो से विछुड जाने का विल्कुल दु ख न हुआ । पिताजी दुःखी थे । यह वडी आमदनी की जगह थी । अम्माँजी भी दु.खी थी, यहाँ सव चीजें सस्ती थी, और मुहल्ले की स्त्रियो से घराव-सा हो गया था, लेकिन मारे खुशी के फूला न समाता था । लडको से जीट उडा रहा था, वहाँ ऐसे घर थोडे ही होते हैं । ऐसे-ऐसे ऊँचे घर हैं कि आसमान से वातें करते हैं । वहाँ के अगरेजी स्कूल मे कोई मास्टर लड़को को पीटे, तो उसे जेहल हो जाए । मेरे मित्रो की फैली हुई आँखें और चकित मुद्रा वतला रही थी कि मैं उनकी निगाह मे कितना ऊँचा उठ गया हूँ । वच्चो मे मिथ्या को सत्य वना लेने की शक्ति है, जिसे हम, जो सत्य को मिथ्या वना लेते हैं, क्या समझेंगे ? उन वेचारो को मुझसे कितनी स्पर्द्धा हो रही थी । मानो कह रहे थे—तुम भगवान् हो भाई, जाओ । हमे तो इसी ऊजड ग्राम मे जीना भी है और मरना भी ।

वीस साल गुजर गए । मैंने इंजीनियरी पास की और उसी जिले का दौरा करता हुआ उसी कस्वे मे पहुचा और डाकवँगले मे ठहरा । उस स्थान को देखते ही इतनी मधुर वाल-स्मृतियाँ हृदय मे जाग उठी कि मैंने छडी उठायी और कस्वे की सैर करने निकला । आँखें किसी प्यासे पथिक की भाँति वचपन के उन क्रीडा-स्थलो को देखने के लिए व्याकुल हो रही थी, पर उस परिचित नाम के सिवा वहाँ और कुछ परिचित न था । जहाँ खंडहर था, वहाँ पक्के मकान खडे थे । जहाँ वरगद का पुराना पेड़ था, वहाँ अब एक सुन्दर वगीचा था । स्थान की

काया-पलट हो गई थी। अगर उसके नाम और स्थिति का ज्ञान न होता, तो मैं इसे पहचान भी न सकता। वचपन की सचित और अमर स्मृतियाँ बाँहे खोले अपने उन पुराने मित्रो से गले मिलने को अधीर हो रही थी, मगर वह दुनिया वदल गई थी। ऐसा जी होता था कि उस धरती से लिपटकर रोऊँ और कहूँ, तुम मुझे भूल गईं! मैं तो अव भी तुम्हारा वही रूप देखना चाहता हूँ।

सहसा एक खुली हुई जगह मे मैंने दो-तीन लड़को को गुल्ली-डडा खेलते देखा। एक क्षण के लिए मैं अपने को विल्कुल भूल गया। भूल गया कि मैं एक ऊँचा अफसर हूँ, साहवी ठाठ मे, रोव और अधिकार के आवरण मे।

जाकर एक लडके से पूछा—क्यो वेटे, यहाँ कोई गया नाम का आदमी रहता है?

एक लडके ने गुल्ली-डडा समेटकर सहमे हुए स्वर मे कहा—कौन गया? गया चमार?

मैंने यो ही कहा—हाँ-हाँ वही। गया नाम का कोई आदमी है तो? शायद वही हो।

'हाँ, है तो।'

'जरा उसे वुला सकते हो?'

लडका दौड़ता हुआ गया और एक क्षण मे एक पाँच हाथ के काले देव को साथ लिये आता दिखाई दिया। मैं दूर ही से पहचान गया। उसकी ओर लपकना चाहता था कि उसके गले लिपट जाऊँ, पर कुछ सोचकर रह गया। वोला—कहो, गया, मुझे पहचानते हो?

गया ने झुककर सलाम किया—हाँ मालिक, भला पहचानूंगा क्यो नही! आप मजे मे रहे?

'वहुत मजे मे। तुम अपनी कहो?'

'डिप्टी साहव का साईस हूँ।'

'मतई, मोहन, दुर्गा सव कहाँ हैं? कुछ खवर है?'

'मतई तो मर गया, दुर्गा और मोहन दोनो डाकिए हो गए हैं। आप?'

'मैं तो जिले का इंजीनियर हूँ।'

'सरकार तो पहले ही वडे जहीन थे।'

'अव कभी गुल्ली-डडा खेलते हो?'

गया ने मेरी ओर प्रश्न की आँखों से देखा—अव गुल्ली-डडा क्या खेलूंगा सरकार, अव तो धन्धे से छुट्टी नही मिलती।

'आओ, आज हम तुम खेलें। तुम पदाना, हम पदेंगे। तुम्हारा एक दाँव हमारे ऊपर है। वह आज ले लो।'

गया वड़ी मुश्किल से राजी हुआ। वह ठहरा टके का मजदूर, मैं एक वडा

[अ]फसर। हमारा और उसका क्या जोड ? बेचारा झेंप रहा था। लेकिन मुझे [भ]ी कुछ कम झेंप न थी, इसलिए नही कि मैं गया के साथ खेलने जा रहा था, [ब]ल्कि इसलिए कि लोग इस खेल को अजूबा समझकर इसका तमाशा बना लेंगे [औ]र अच्छी-खासी भीड लग जाएगी। उस भीड मे वह आनद कहाँ रहेगा, पर [ख]ेले बगैर तो रहा नही जाता। आखिर निश्चय हुआ कि दोनो जने बस्ती से [ब]हुत दूर एकात मे जाकर खेलें। वहा कौन देखनेवाला बैठा होगा। मजे से [ख]ेलेंगे और बचपन की उस मिठाई को खूब रस ले-लेकर खाएँगे। मैं गया को [ल]ेकर डाकबँगले पर आया और मोटर मे बैठकर दोनो मैदान की ओर चले। [स]ाथ मे एक कुल्हाडी ले ली। मैं गम्भीर भाव धारण किए हुए था, लेकिन गया [इ]से अभी तक मजाक ही समझ रहा था। फिर भी उसके मुख पर उत्सुकता या [आ]नन्द का कोई चिन्ह न था। शायद वह हम दोनो मे जो अन्तर हो गया था, [य]ही सोचने मे मगन था।

मैंने पूछा—तुम्हें कभी हमारी याद आती थी गया ? सच कहना।

गया झेंपता हुआ बोला—मैं आपको याद करता हुजूर, किस लायक हूँ। [भ]ाग मे आपके साथ कुछ दिन खेलना बदा था, नही मेरी क्या गिनती ?

मैंने कुछ उदास होकर कहा—लेकिन मुझे तो बराबर, तुम्हारी याद आती [थ]ी। तुम्हारा वह डडा, जो तुमने तानकर जताया था, याद है न ?

गया ने पछताते हुए कहा—वह लडकपन था सरकार, उसकी याद न [दि]लाओ।

'वाह ! वह मेरे बाल-जीवन की सबसे रसीली याद है। तुम्हारे उस डंडे मे [ज]ो रस था, वह तो अब न आदर-सम्मान मे पाता हूँ, न धन मे। कुछ ऐसी [मि]ठास थी उसमे कि आज तक उससे मन मीठा होता रहता है।'

इतनी देर मे हम बस्ती से कोई तीन मील निकल आये। चारो तरफ [स]न्नाटा है। पश्चिम ओर कोसो तक भीमताल फैला हुआ है, जहाँ आकर हम [क]िसी समय कमल पुष्प तोड ले जाते थे और उसके झूमक बनाकर कानो मे डाल [ल]ेते थे। जेठ की सध्या केसर मे डूबी चली आ रही है। मैं लपककर एक पेड [प]र चढ गया और एक टहनी काट लाया। चटपट गुल्ली-डडा बन गया। खेल [श]ुरू हो गया। मैंने गुच्ची मे गुल्ली रखकर उछाली। गुल्ली गया के सामने से [न]िकल गई। उसने हाथ लपकाया, जैसे मछली पकड रहा हो। गुल्ली उसके [प]ीछे जाकर गिरी। यह वही गया है, जिसके हाथो मे गुल्ली जैसे आप-ही आकर [ब]ैठ जाती थी। वह दाहने-बाएँ कही हो, गुल्ली उसकी हथेलियो मे ही पहुचती [थ]ी। जैसे गुल्लियो पर वशीकरण डाल देता हो। नयी गुल्ली, पुरानी गुल्ली, [छ]ोटी गुल्ली, बड़ी गुल्ली, नोकदार गुल्ली, सपाट गुल्ली सभी उससे मिल जाती [थ]ी। जैसे उसके हाथो मे कोई चुम्बक हो; गुल्लियो को खीच लेता हो, लेकिन

आज गुल्ली को उससे वह प्रेम नही रहा। फिर तो मैंने पदाना शुरू किया। मैं तरह-तरह की धाँधलियाँ कर रहा था। अभ्यास की कसर वेईमानी से पूरी कर रहा था। हुच जाने पर भी डंडा खेले जाता था, हालाकि शास्त्र के अनुसार गया की वारी आनी चाहिए थी। गुल्ली पर ओछी चोट पडती और वह जरा दूर पर गिर पड़ती, तो मैं झपटकर उसे खुद उठा लेता और दोबारा टाँड़ लगाता। गया यह सारी वे-कायदगियाँ देख रहा था, पर कुछ न वोलता था, जैसे उसे वह सव कायदे-कानून भूल गये। उसका निशाना कितना अचूक था। गुल्ली उसके हाथ से निकलकर टन से डडे मे आकर लगती थी। उसके हाथ से छूटकर उसका काम था डंडे से टकरा जाना, लेकिन आज वह गुल्ली डडे मे लगती ही नही! कभी दाहिने जाती है, कभी वाएँ, कभी आगे, कभी पीछे।

आध घंटे पदाने के वाद एक वार गुल्ली डण्डे मे आ लगी। मैंने धाँधली की-गुल्ली डण्डे मे नही लगी, विलकुल पास से गई, लेकिन लगी नही।

गया ने किसी प्रकार का असतोष नही प्रकट किया।

'न लगी होगी।'

'डण्डे मे लगती तो क्या मैं वेईमानी करता?'

'नही भैया, तुम भला वेईमानी करोगे!'

वचपन मे मजाल था कि मैं ऐसा घपला करके जीता वचता! यही गया गर्दन पर चढ वैठता, लेकिन आज मैं उसे कितनी आसानी से धोखा दिए चला जाता था। गधा है! सारी वातें भूल गया।

सहसा गुल्ली फिर डण्डे से लगी और इतने जोर से लगी, जैसे वन्दूक छूटी हो। इस प्रमाण के सामने अव किसी तरह की धांधली करने का साहस मुझे इस वक्त भी न हो सका, लेकिन क्यो न एक वार सवको झूठ वताने की चेष्टा करूँ? मेरा हरज ही क्या है। मान गया तो वाह-वाह, नही तो दो-चार हाथ पदना ही तो पटेगा। अन्धेरे का वहाना करके जल्दी से गला छुडा लूँगा। फिर कौन दांव देने आता है।

गया ने विजय के उल्लास मे कहा—लग गई, लग गई! टन से वोली।

मैंने अनजान वनने की चेष्टा करके कहा—तुमने लगते देखा? मैंने तो नही देखा।

'टन से वोली है सरकार!'

'और जो किसी ईंट मे लग गई हो?'

मेरे मुख से यह वाक्य उस समय कैसे निकला, इसका मुझे खुद आश्चर्य है। इस सत्य को झुठलाना वैसा ही था, जैसे दिन को रात वताना। हम दोनों ने गुल्ली को डण्डे मे जोर से लगते देखा था, लेकिन गया ने मेरा कथन स्वीकार कर लिया।

'हाँ, किसी ईट मे ही लगी होगी। डण्डे मे लगती तो इतनी आवाज न आती।

मैंने फिर पदाना शुरू कर दिया, लेकिन इतनी प्रत्यक्ष धाँधली कर लेने के बाद गया की सरलता पर मुझे दया आने लगी, इसलिए जब तीसरी बार गुल्ली डण्डे मे लगी, तो मैंने बडी उदारता से दाँव देना तय कर दिया।

गया ने कहा—अब तो अन्धेरा हो गया है भैया, कल पर रखो।

मैंने सोचा, कल बहुत-सा समय होगा, यह न जाने कितनी देर पदाए, इसलिए इसी वक्त मुआमला साफ कर लेना अच्छा होगा।

'नही, नही। अभी बहुत उजाला है। तुम अपना दाँव ले लो।'

'गुल्ली सूझेगी नही।'

'कुछ परवाह नही।'

गया ने पदाना शुरू किया, पर उसे अब बिल्कुल अभ्यास न था। उसने दो बार टाँड लगाने का इरादा किया, पर दोनो ही बार हुच गया। एक मिनिट से कम मे वह दाँव पूरा कर चुका। बेचारा घण्टा-भर पदा, पर एक मिनिट ही मे अपना दाँव खो बैठा। मैंने अपने हृदय की विशालता का परिचय दिया।

'एक दाँव और खेल लो। तुम तो पहले ही हाथ मे हुच गए।'

'नही भैया, अब अधेरा हो गया।'

'तुम्हारा अभ्यास छूट गया। कभी खेलते नही ?'

'खेलने का समय कहाँ मिलता है भैया !'

हम दोनो मोटर पर जा बैठे और चिराग जलते-जलते पड़ाव पर पहुच गए। गया चलते-चलते बोला—कल यहाँ गुल्ली-डडा होगा। सभी पुराने खिलाडी खेलेंगे। तुम भी आओगे ? जब तुम्हे फुरसत हो, तभी खिलाडियो को बुलाऊँ।

मैंने शाम का समय दिया और दूसरे दिन मैच देखने गया। कोई दस-दस आदमियो की मण्डली थी। कई मेरे लडकपन के साथी निकले ! अधिकाँश युवक थे, जिन्हे मैं पहचान न सका। खेल शुरू हुआ। मै मोटर पर बैठा-बैठा तमाशा देखने लगा। आज गया का खेल, उसका वह नैपुण्य देखकर मैं चकित हो गया। टाँड़ लगाता, तो गुल्ली आसमान से बात करती। कल की-सी वह झिझक, वह हिचकिचाहट, वह बेदिली आज न थी। लडकपन मे जो बात थी, आज उसने प्रौढता प्राप्त कर ली थी। कही कल इसने मुझे इस तरह पदाया होता, तो मैं जरूर रोने लगता। उसके डण्डे की चोट खाकर गुल्ली दो सौ गज की खबर लाती थी।

पदने वालो मे एक युवक ने कुछ धाँधली की। उसने अपने विचार मे गुल्ली लपक ली थी। गया का कहना था—गुल्ली जमीन मे लगकर उछली थी। इस पर दोनो मे ताल ठोकने की नौबत आई है। युवक दब गया। गया का तमतमाया हुआ चेहरा देखकर डर गया। अगर वह दब न जाता, तो जरूर

मार-पीट हो जाती।

मैं खेल मे न था, पर दूसरो के इस खेल मे मुझे वही लडकपन का आनन्द आ रहा था, जव हम सव-कुछ भूलकर खेल मे मस्त हो जाते थे। अव मुझे मालूम हुआ कि कल गया ने मेरे साथ खेला नही, केवल खेलने का वहाना किया। उसने मुझे दया का पात्र समझा। मैंने धाँधली की, वेईमानी की, पर उसे जरा भी क्रोध न आया। इसीलिए कि वह खेल न रहा था, मुझे खेला रहा था; मेरा मन रख रहा था। वह मुझे पदाकर मेरा कचूमर नही निकालना चाहता था। मैं अव अफसर हू। यह अफसरी मेरे और उसके वीच मे दीवार वन गई है। मैं अव उसका लिहाज पा सकता हू, अदव पा सकता हूँ, साहचर्य नही पा सकता। लडकपन था, तव मैं उसका समकक्ष था। हममे कोई भेद न था। यह पद पाकर अव मैं केवल उसकी दया के योग्य हूँ। वह मुझे अपना जोड़ नही समझता। वह वडा हो गया है, मैं छोटा हो गया हूँ।



ज्योति

विधवा हो जाने के बाद बूटी का स्वभाव बहुत कटु हो गया था। जब बहुत जी जलता तो अपने मृत पति को कोसती—आप तो सिधार गए, मेरे लिए यह सारा जंजाल छोड गए। जब इतनी जल्दी जाना था, तो ब्याह न जाने किस लिए किया। घर मे भूनी भाँग नही, चले थे ब्याह करने। वह चाहती तो दूसरी सगाई कर लेती। अहीरो मे इसका रिवाज है। देखने-सुनने मे भी बुरी न थी। दो-एक आदमी तैयार भी थे, लेकिन बूटी पतिव्रता कहलाने के मोह को न छोड सकी। और यह सारा क्रोध उतरता था, बडे लडके मोहन पर, जो अब सोलह साल का था। सोहन अभी छोटा था और मैना लडकी थी। ये दोनो अभी किसी लायक न थे। अगर यह तीनो न होते, तो बूटी को क्यो इतना कष्ट होता। जिसका थोडा-सा काम कर देती, वही रोटी-कपडा दे देता। जब चाहती किसी के सिर बैठ जाती। अब अगर वह कही बैठ जाए, तो लोग यही कहेगे कि तीन-तीन बच्चो के होते इसे यह क्या सूझी।

मोहन भरसक उसका भार हल्का करने की चेष्टा करता। गायो-भैसो की सानी-पानी, दुहना-मथना यह सब कर लेता, लेकिन बूटी का मुँह सीधा न होता था। वह रोज एक-न-एक खुचड निकालती रहती और मोहन ने भी उसकी घुड़कियो की परवाह करना छोड़ दिया था। पति उसके सिर गृहस्थी का यह भार पटककर क्यो चला गया, उसे यही मिला था। बेचारी का सर्वनाश ही कर दिया। न खाने का सुख मिला, न पहनने-ओढने का, न और किसी बात का इस घर मे क्या आयी, मानो भट्टी मे पड़ गई। उसकी वैधव्य साधना और अतृप्त भोग-लालसा मे सदैव द्वंद्व-सा मचा रहता था और उसकी जलन ने उसके हृदय की सारी मृदुता जलकर भस्म हो गई थी। पति के पीछे और कुछ नही तो बूटी के पास चार-पाच सौ के गहने थे, लेकिन एक-एक करके सब उसके हाथ से निकल गए।

उसी मुहल्ले मे उसकी बिरादरी, मे कितनी ही औरतें थी, जो उससे जेठी होने पर भी गहने झमकाकर, आखो मे काजल लगाकर माँग मे सेंदूर की मोटी सी रेखा डालकर मानो उसे जलाया करती थी, इसलिए जब उनमे से कोई

विधवा हो जाती, तो वूटी को खुशी होती और यह सारी जलन वह लड़को पर निकालती, विशेपकर मोहन पर। वह शायद सारे संसार की स्त्रियो को अपने ही रूप मे देखना चाहती थी। कुत्सा मे उसे विशेप आनन्द मिलता था। उसकी वंचित लालसा, जल न पाकर ओस चाट लेने ही मे संतुष्ट होती थी, फिर वह कैसे सम्भव था कि वह मोहन के विपय में कुछ सुने और पेट मे डाल ले। ज्यो ही मोहन संध्या समय दूध वेचकर घर आया, वूटी ने कहा—देखती हूँ, तू अब साड वनने पर उतारू हो गया है।

मोहन ने प्रश्न के भाव से देखा—कैसा साँड ! वात क्या है ?

'तू रुपिया से छिप-छिपकर नही हँसता-वोलता ? उस पर कहता है कैसा साँड ? तुझे लाज नही आती। घर मे पैसे-पैसे की तगी है और वहाँ उसके लिए पान लाये जाते हैं, कपडे रगाए जाते हैं।'

मोहन ने विद्रोह का भाव धारण किया—अगर उसने मुझसे चार पैसे के पान माँगे तो क्या करता ? कहता कि पैसे दे, तो लाऊगा। अपनी धोती रंगाने को दी, उससे रगाई माँगता ?

'महल्ले मे एक तू ही वड़ा धन्नासेठ है। और किसी से उसने क्यो न कहा ?'

'यह वह जाने, मैं क्या वताऊ।'

'तुझे अव छैला वनने की सूझती है। घर मे भी कभी एक पैसे का पान लाया ?'

'यहाँ पान किसके लिए लाता ?'

'क्या तेरे लेखे घर मे सव मर गये ?'

'मैं न जानता था, तुम पान खाना चाहती हो।'

'संसार मे एक रुपिया ही पान खाने जोग है ?'

'शोक-सिंगार की भी तो उमिर होती है।'

वूटी जल उठी। उसे वुढिया कह देना उसकी सारी साधना पर पानी फेर देना था। वुढापे मे उन साधनो का महत्व ही क्या ? जिस त्याग-कल्पना के वल पर वह स्त्रियो के सामने सिर उठाकर चलती थी, उस पर इतना कठोराघात ! इन्ही लड़को के पीछे उसने अपनी जवानी धूल मे मिला दी। उसके आदमी को मरे आज पाँच साल हुए। तव उसकी चढती जवानी थी। तीन वच्चे भगवान ने उसके गले मढ दिए, नही अभी वह है कै दिन की। चाहती तो आज वह भी ओठ लाल किए, पाँव मे महावर लगाये, अनवट-विछुए पहने मटकती फिरती। यह सव कुछ उसने इन लड़को के कारण त्याग दिया और आज मोहन उसे वुढिया कहता है ! रुपिया उसके सामने खडी कर दी जाए, तो चुहिया-सी लगे। फर भी वह जवान है, और वूटी वुढिया है !

बोली—हा और क्या। मेरे लिए तो अब फटे चीथडे पहनने के दिन हैं। जब तेरा बाप मरा तो मैं रुपिया से दो ही चार साल बडी थी। उस वक्त कोई घर कर लेती, तो तुम लोगो का कही पता न लगता। गली-गली भीख मांगते फिरते। लेकिन मैं कहे देती हूँ, अगर तू फिर उससे बोला तो या तो तू ही घर मे रहेगा या मैं ही रहूँगी।

मोहन ने डरते-डरते कहा—मैं उसे बात दे चुका हूँ अम्माँ!

"कैसी बात ?"

'सगाई की।'

'अगर रुपिया मेरे घर मे आयी तो झाडू मारकर निकाल दूँगी। यह सब उसकी मां की माया है। वही कुटनी मेरे लडके को मुझसे छीने लेती है। रांड से इतना भी नही देखा जाता। चाहती है कि उसे सौत बनाकर छाती पर बैठा दे।'

मोहन ने व्यथित कठ से कहा—अम्माँ, ईश्वर के लिए चुप रहो। क्यो अपना पानी आप खो रही हो। मैंने तो समझा था, चार दिन मे मैना अपने घर चली जाएगी, तुम अकेली पड जाओगी। इसलिए उसे लाने की बात सोच रहा था। अगर तुम्हे बुरा लगना है तो जाने दो।

'तू आज से यही आगन मे सोया कर।'

'और गायें-भैंसें बाहर पडी रहेगी ?'

'पडी रहने दे, कोई डाका नही पडा जाता ?

'मुझ पर तुझे इतना सन्देह है ?'

'हाँ!'

'तो मैं यहाँ न सोऊँगा।'

'तो निकल जा मेरे घर से।'

'हाँ, तेरी यही इच्छा है तो निकल जाऊँगा।'

मैना ने भोजन पकाया। मोहन ने कहा, मुझे भूख नही है! बूटी उसे मनाने न आयी। मोहन का युवक-हृदय माता के इस कठोर शासन को किसी तरह स्वीकार नही कर सकता। उसका घर है, ले ले। अपने लिए वह कोई दूसरा ठिकाना ढूंढ निकालेगा। रुपिया ने उसके रूखे जीवन मे एक स्निग्धता भर दी थी। जब वह एक अव्यक्त कामना मे चंचल हो रहा था, जीवन कुछ सूना-सूना लगता था, रुपिया ने नव-वसंत की भाँति आकर उसे पल्लवित कर दिया। मोहन को जीवन मे एक मीठा स्वाद मिलने लगा। कोई काम करता होता, पर ध्यान रुपिया की ओर लगा रहता। सोचता, उसे क्या दे दे कि वह प्रसन्न हो जाए! अब वह कौन मुँह लेकर उसके पास जाए? क्या उनसे कहे कि अम्माँ ने मुझे तुझसे मिलने को मना किया है? अभी कल ही तो बरगद के नीचे दोनो मे

कैसी-कैसी बातें हुई थी। मोहन ने कहा था, रूपा तुम इतनी सुन्दर हो, तुम्हारे सौ गाहक निकल आएगे। मेरे घर मे तुम्हारे लिए क्या रखा है? इस पर रुपिया ने जो जवाब दिया था, वह तो सगीत की तरह अब भी उसके प्राणो मे बसा हुआ था—मैं तो तुमको चाहती हूँ मोहन, अकेले तुमको। परगने के चौधरी हो जाव, तब भी मोहन हो, मजूरी करने लगो, तब भी मोहन हो। उसी रुपिया से आज वह जाकर कहे—मुझे अब तुमसे कोई सरोकार नही है।

नही, यह नही हो सकता। उसे घर की परवाह नही है। वह रुपिया के साथ माँ से अलग रहेगा। इस जगह न सही, किसी दूसरे मुहल्ले मे सही। इस वक्त भी रुपिया उसकी राह देख रही होगी। कैसे अच्छे बीडे लगाती है। कही अम्माँ सुन पावें कि यह रात को रुपिया के द्वार पर गया था, तो परान ही दे दे। दे दें परान। अपने भाग तो नही बखानती कि ऐसी देवी बहू मिली जाती है। न जाने क्यो रुपिया से इतना चिढती हैं। वह जरा पान खा लेती है, जरा साड़ी रँगकर पहनती है। बस यही तो।

चूडियो की झकार सुनाई दी। रुपिया आ रही है। हाँ, वही है।

रुपिया उसके सिरहाने आकर बोली सो गए क्या मोहन? घडी-भर से तुम्हारी राह देख रही हूँ। आये क्यो नही?

मोहन नीद का मक्कर किये पडा रहा?

रुपिया ने उसका सिर हिलाकर फिर कहा—क्या सो गए मोहन?

उन कोमल उँगलियो के स्पर्श मे क्या सिद्धि थी, कौन जाने। मोहन की सारी आत्मा उन्मत्त हो उठी। उसके प्राण मानो बाहर निकलकर रुपिया के चरणो मे समर्पित हो जाने के लिये उछल पडे। देवी वरदान के लिये सामने खडी है। सारा विश्व जैसे नाच रहा है। उसे मालूम हुआ, जैसे उसका शरीर लुप्त हो गया है, केवल वह एक मधुर स्वर की भाति विश्व की गोद से चिमटा हुआ उसके साथ नृत्य कर रहा है।

रुपिया ने फिर कहा—अभी से सो गए क्या जी?

मोहन बोला—हाँ, जरा नीद आ गई थी रूपा। तुम इस वक्त क्या करने आयी? कही अम्माँ देख लें, तो मुझे मार ही डाले।

'तुम आज आये क्यो नही?'

'आज अम्माँ मे लडाई हो गई।'

'क्या कहती थी?'

'कहती थी, रुपिया से बोलेगा तो मैं परान दे दूँगी।'

'तुमने पूछा नही, रुपिया से क्यो चिढती हो?'

'अब उनकी बात क्या कहूँ रूपा। वह किसी का खाना-पहनना नही देख सकती। अब मुझे तुमसे दूर रहना पडेगा।'

'मेरा जी तो न मानेगा ।'

'ऐसी वात करोगी, तो मैं तुम्हे लेकर भाग जाऊँगा ।'

'तुम मेरे पास एक वार रोज आया करो। वस, और मैं कुछ नही चाहती ।'

'और अम्माँ जो विगड़ेंगी ।'

'तो मै समझ गई । तुम मुझे प्यार नही करते ।'

'मेरा वस होता, तो तुमको अपने परान मे रख लेता ।'

इसी समय घर के किवाड खटके । रुपिया भाग गई ।

2

मोहन दूसरे दिन सोकर उठा तो उसके हृदय मे आनन्द का सागर-सा भरा हुआ था । वह सोहन को वरावर डाटता रहता था । सोहन आलसी था । घर के काम-धधे मे जी न लगाता था । आज भी वह आँगन मे वैठा अपनी धोती मे सावुन लगा रहा था । मोहन को देखते ही वह सावुन छिपाकर भाग जाने का अवसर खोजने लगा ।

मोहन ने मुस्कराकर कहा—धोती वहुत मैली हो गई है सोहन ? धोवी को क्यो नही देते ?

सोहन को इन शब्दो मे स्नेह की गँध आई ।

'धोविन पैसे मागती है ।'

'तो पैसे अम्माँ से क्यो नही माँग लेते ?'

'अम्माँ कौन पैसे दिये देती हैं ।'

'तो मुझसे ले लो ।'

यह कहकर उसने एक इकन्नी उसकी ओर फेक दी। सोहन प्रसन्न हो गया । भाई और माता दोनो ही उसे धिक्कारते रहते थे । वहुत दिनो वाद आज उसे स्नेह की मधुरता का स्वाद मिला । इकन्नी उठा ली और धोती को वही छोड़कर गाय को खोलकर ले चला ।

मोहन ने कहा—रहने दो, मैं इसे लिए जाता हूँ ।

सोहन ने पगहिया भाई को देकर फिर पूछा—तुम्हारे लिए चिलम रख लाऊँ ?

जीवन मे आज पहली वार सोहन ने भाई के प्रति ऐसा सदभाव प्रकट किया था । इसमे क्या रहस्य है, यह मोहन की समझ मे न आया । वोला—आग हो तो रख लाओ ।

मैना सिर के वाल खोले आँगन मे वैठी घरौंदा वना रही थी । मोहन को देखते ही उसने घरौंदा विगाड़ दिया और अचल से वाल छिपाकर रसोईघर मे

वरतन उठाने चली ।

मोहन ने पूछा—क्या खेल रही थी मैना ?

मैना डरी हुई बोली—कुछ तो नहीं ।

'तू तो वहुत अच्छे घरौंदे वनाती है । जरा वना, देखू ।'

मैना का रुँआसा चेहरा खिल उठा । प्रेम के शब्द मे कितना जादू है ! मुँह से निकलते ही जैसे सुगंध फैल गई । जिसने सुना, उसका हृदय खिल उठा । जहाँ भय था, वहाँ विश्वास चमक उठा । जहाँ कटुता थी, वहा अपनापा छलक पडा । चारो ओर चेतना दौड गई । कही आलस्य नही, कही खिन्नता नही । मोहन का हृदय आज प्रेम से भरा हुआ है । उसमे सुगध का विकर्षण हो रहा है ।

मैना घरौंदा वनाने वैठ गई ।

मोहन ने उसके उलझे हुए वालो को सुलझाते हुए कहा—तेरी गुडिया का व्याह कव होगा मैना, नेवता दे, कुछ मिठाई खाने को मिले ।

मैना का मन आकाश मे उडने लगा । अव भैया पानी माँगे, तो वह लोटे को राख से खूव चमाचम करके पानी ले जाएगी ।

'अम्मा पैसे नही देती । गुड्डा तो ठीक हो गया है । टीका कैसे भेजूं ।'

'कितने पैसे लेगी ?'

'एक पैसे के वतासे लूँगी और एक पैसे का रग । जोडे तो रग जाएँगे कि नही ।'

'तो दो पैसे मे तेरा काम चल जाएगा ?'

'हाँ, दो पैसे दे दो भैया, तो मेरी गुडिया का व्याह धूमधाम से हो जाये ।'

मोहन ने दो पैसे हाथ मे लेकर मैना को दिखाए । मैना लपकी, मोहन ने हाथ ऊपर उठाया, मैना ने हाथ पकडकर नीचे खीचना शुरू किया । मोहन ने उसे गोद मे उठा लिया । मैना ने पैसे ले लिये और नीचे उतरकर नाचने लगी । फिर अपनी सहेलियो को विवाह का नेवता देने के लिए भागी ।

उसी वक्त वूटी गोवर का झौवा लिये आ पहुँची । मोहन को खडे देखकर कठोर स्वर मे वोली—अभी तक मटरगस्ती ही हो रही है । भैस कव दुही जाएगी ?

आज वूटी को मोहन ने विद्रोह-भरा जवाव न दिया । जैसे उसके मन मे माधुर्य का कोई सोता-सा खुल गया हो । माता को गोवर का वोझ लिये देख-कर उसने झौवा उसके सिर से उतार लिया ।

वूटी ने कहा—रहने दे, रहने दे, जाकर भैस दुह, मै तो गोवर लिये जाती हूँ ।

'तुम इतना भारी वोझ क्यो उठा लेती हो, मुझे क्यो नही वुला लेती ?

माता का हृदय वात्सल्य से गद्गद हो उठा ।

'तू जा अपना काम देख। मेरे पीछे क्यो पडता है!'
'गोबर निकालने का काम मेरा है।'
'और दूध कौन दुहेगा ?'
'वह भी मै करूँगा !'
,तू इतना बडा जोधा है कि सारे काम कर लेगा !'
'जितना कहता हूँ, उतना कर लूँगा।'
'तो मैं क्या करूँगी ?'
'तुम लडको से काम लो, जो तुम्हारा धर्म है।'
'मेरी सुनता है कोई ?'

3

आज मोहन बाजार से दूध पहुचाकर लौटा, तो पान, कत्था, सुपारी, एक छोटा-सा पानदान और थोडी-सी मिठाई लाया। बूटी बिगडकर बोली—आज पैसे कही फालतू मिल गए थे क्या ? इस तरह उडावेगा तो कै दिन निवाह होगा ?

'मैने तो एक पैसा भी नही उड़ाया अम्मा। पहले मै समझता था, तुम पान खाती ही नही।'

'तो अब मै पान खाऊगी !'

'हाँ, और क्या। जिसके दो-दो जवान बेटे हो, क्या वह इतना शौक भी न करे।'

बूटी के सूखे कठोर हृदय मे कही से कुछ हरियाली निकल आई, एक नन्ही सी कोपल थी, लेकिन उसके अन्दर कितना जीवन, कितना रस था। उसने मैना और सोहन को एक-एक मिठाई दे दी और एक मोहन को देने लगी।

'मिठाई तो लडको के लिए लाया था अम्माँ।'

'और तू तो बूढा हो गया, क्यो ?'

'इन लडको के सामने तो बूढा ही हूँ।'

'लेकिन मेरे सामने तो लडका ही है।'

मोहन ने मिठाई ले ली। मैना ने मिठाई पाते ही गप से मुह मे डाल ली थी। वह केवल मिठाई का स्वाद जीभ पर छोडकर कब की गायब हो चुकी थी। मोहन की मिठाई को ललचाई आँखो से देखने लगी। मोहन ने आधा लड्डू तोडकर मैना को दे दिया। एक मिठाई देने मे बची थी। बूटी ने उसे मोहन की तरफ बढाकर कहा—लाया भी तो इतनी सी मिठाई। यह ले ले।

मोहन ने आधी मिठाई मुँह मे डालकर कहा—वह तुम्हारा हिस्सा है

अम्मा ।

'तुम्हे खाते देखकर मुझे जो आनद मिलता है, उसमे मिठास से ज्यादा स्वाद है ।'

उसने आधी मिठाई सोहन और आधी मोहन को दे दी; फिर पानदान खोल-कर देखने लगी। आज जीवन मे पहली बार उसे यह सौभाग्य प्राप्त हुआ। धन्य भाग कि पति के राज मे जिस विभूति के लिए तरसती रही, वह लडके के राज मे मिली। पानदान में कई कुल्हियाँ हैं। और देखो, दो छोटी-छोटी चिमनियाँ भी हैं, ऊपर कड़ा लगा हुआ है, जहाँ चाहो लटकाकर ले जाओ। ऊपर की तश्तरी मे पान रखे जाएँगे ।

ज्यो ही मोहन बाहर चला गया, उसने पानदान को माँज-धोकर उसमे चूना, कत्था भरा, सुपारी काटी, पान को भिगोकर तश्तरी मे रखा। तब एक बीडा लगाकर खाया। उसी बीडे के रस ने जैसे उसके वैधव्य की कटुता को स्निग्ध कर दिया। मन की प्रसन्नता व्यवहार मे उदारता बन जाती है। अब वह घर मे नही बैठ सकती। उसका मन इतना गहरा नही कि इतनी बडी विभूति उसमे जाकर गुम हो जाए। एक पुराना आईना पडा हुआ था। उसने उसमे मुँह देखा। ओठो पर लाली है। मुँह लाल करने के लिए उसने थोडे ही पान खाया है।

धनिया ने आकर कहा—काकी, तनिक रस्सी दे दो ? मेरी रस्सी टूट गई है।

कल बूटी ने साफ कह दिया होता, मेरी रस्सी गाँव-भर के लिए नही है। रस्सी टूट गई है तो बनवा लो। आज उससे धनिया को रस्सी निकालकर प्रसन्न मुख मे दे दी और सद्भाव से पूछा—लड़के के दस्त बद हुए कि नही धनिया ?

धनिया ने उदास मन से कहा—नही काकी, आज तो दिन-भर दस्त आए। जाने दाँत आ रहे हैं।

'पानी भर ले तो चल जरा देखूँ, दाँत ही है कि कुछ और फसाद है। किसी की नजर-बजर तो नही लगी ?'

'अब क्या जाने काकी, कौन जाने किसी की आँख फूटी हो ?'

'चोंचाल लड़को को नजर का बडा डर रहता है ।'

'जिसने चुमकारकर बुलाया, झट उसकी गोद मे चला आता है। ऐसा हँसता है कि तुमसे क्या कहूँ !'

'कभी-कभी माँ की नजर भी लग जाया करती है ।'

'ऐ नौज काकी, भला कोई अपने लडके को नजर लगाएगा !'

'यही तो तू समझती नही। नजर आप ही लग जाती है ।'

धनिया पानी लेकर आयी, तो बूटी उसके साथ बच्चे को देखने चली।

'तू अकेली है। आजकल घर के काम-धन्धे मे बड़ा अडस होता होगा ।'

'नही काकी, रुपिया आ जाती है, घर का कुछ काम कर देती है; नही अकेले तो मेरी मरन हो जाती।'

बूटी को आश्चर्य हुआ। रुपिया को उसने केवल तितली समझ रखा था।

'रुपिया !

'हाँ काकी' बेचारी बडी सीधी है। झाड लगा देती है, चौका-बरतन कर देती है, लडके को सँभालती है। गाढे समय कौन, किसी की बात पूछता है काकी !

'उसे तो अपने मिस्सी-काजल से छुट्टी न मिलती होगी।'

'यह तो अपनी-अपनी रुचि है काकी ! मुझे तो इस मिस्सी काजलवाली ने जितना सहारा दिया, उतना किसी भक्तिन ने न दिया। बेचारी रात-भर जागती रही। मैंने कुछ दे तो नही दिया। हाँ जब तक जीऊँगी, उसका जस गाऊँगी।

'तू उसके गुन अभी नही जानती धनिया। पान के लिए पैसे यहाँ से आते है, किनारदार साडियाँ कहाँ से आती है ?

'मैं इन बातो मे नही पडती काकी ! फिर शौक-सिंगार करने को किसका जी नही चाहता ? खाने-पहिनने की यही तो उमिर है।'

धनिया का घर आ गया। आँगन मे रुपिया बच्चे को गोद मे लिये थपक रही थी। बच्चा सो गया था।

धनिया ने बच्चे को खटोले पर सुला दिया। बूटी ने बच्चे के सिर पर हाथ रखा, पेट मे धीरे-धीरे उँगली गडाकर देखा। नाभी पर हीग का लेप करने को कहा। रुपिया बेनिया लाकर उसे झलने लगी।

बूटी ने कहा—ला बेनिया मुझे दे दे।

'मैं डुला दूँगी तो क्या छोटी हो जाऊँगी ?'

'तू दिन-भर यहाँ काम-धन्धा करती है। थक गई होगी।'

'तुम इतनी भलीमानस हो, और यहाँ लोग कहते थे, वह बिना गाली के बात नही करती। मारे डर के तुम्हारे पास न आयी।'

बूटी मुस्करायी।

'लोग झूठ तो नही कहते।'

'मैं आँखो की देखी मानू कि कानो की सुनी ? '

आज भी रुपिया आँखो मे काजल लगाए, पान खाए, रँगी साडी पहने हुए थी, किंतु आज बूटी को मालूम हुआ, इस फूल मे केवल रँग नही है, सुगंध भी है। उसके मन मे रुपिया से घृणा हो गई थी, वह किसी दैवी मन्त्र से छू-सी गई। कितनी सुशील लडकी है कितनी लज्जाधुर। बोली कितनी मीठी है। आजकल की लडकियाँ अपने बच्चो की तो परवाह नही करती, दूसरो के लिए कौन मरता है ! सारी रात धनिया के लड़के को लिये जागती रही ! मोहन ने

कल की वात इससे कह दी होगी। दूसरी लडकी होती, तो मेरी ओर से मुँह फेर लेती। मुझे जलाती, मुझसे ऐंठती। इसे तो जैसे कुछ मालूम ही न हो। हो सकता है कि मोहन ने इससे कुछ कहा ही न हो। हाँ, यही वात है।

आज रुपिया वूटी को वड़ी सुन्दर लगी। ठीक तो है, अभी शौक-शिगार न करेगी तो कव करेगी? शौक-सिंगार इसलिए वुरा लगता है कि ऐसे आदमी अपने भोग-विलास मे मस्त रहते हैं। किसी के घर मे आग लग जाए, उनसे मत-लव नही। उनका काम तो खाली दूसरो को रिझाना है। जैसे अपने रूप की दूकान सजाए, राह-चलतो को वुलाते हो कि जरा इस दूकान की सैर भी करते जाइए। ऐसे उपकारी प्राणियो का सिंगार वुरा नही लगता। नही, वल्कि और अच्छा लगता है। इससे मालूम होता है कि इसका रूप जितना सुन्दर है, उतना ही मन से सुन्दर है, फिर कौन नही चाहता है कि लोग उनके रूप का वखान करें। किसे दूसरो की आँखो मे छुप जाने की लालसा नही होती? वूटी का यौवन कव का विदा हो चुका, फिर भी यह लालसा उसे वनी हुई है। कोई उसे रस-भरी आँखो से देख लेता है, तो उसका मन कितना प्रसन्न हो जाता है। जमीन पर पाँव नही पडते। फिर रूपा तो अभी जवान है।

उस दिन से रुपिया प्राय दो-एक वार नित्य वूटी के घर आती। वूटी ने मोहन से आग्रह करके उसके लिए अच्छी-सी साडी मँगवा दी। अगर रूपा कभी विना काजल लगाए या वेरंगी साडी पहने आ जाती, तो वूटी कहती—वहू- वेटियो को यह जोगिया भेस अच्छा नही लगता। यह भेस तो हम-जैसी वूढियो के लिए है।

रुपिया ने एक दिन कहा। तुम वूढी काहे से हो गई अम्माँ! लोगो को इशारा मिल जाए, तो भौरो की तरह तुम्हारे द्वार पर धरना देने लगें।

वूटी ने मीठे तिरस्कार से कहा—चल, मैं तेरी माँ की सौत वनकर जाऊँगी?

'अम्माँ तो वूढ़ी हो गई।'

'तो क्या तेरे दादा अभी जवान वैठे हैं?'

'हाँ ऐसा, वडी अच्छी मिट्टी है उनकी।'

वूटी ने उसकी ओर रस-भरी आँखों से देखकर पूछा—अच्छा वता, मोहन से तेरा व्याह कर दूँ?

रुपिया लजा गई। मुख पर गुलाव कीआभा ड गई।

आज मोहन दूध वेचकर लौटा तो वूटी ने क —कुछ रुपये-पैसे जुटा, मैं रुपिया से तेरी वातचीत कर रही हूँ।

दिल की रानी

जिन वीर तुर्को के प्रखर प्रताप से ईसाई-दुनिया कांप रही थी, उन्ही का रक्त आज कुस्तुंतुनिया की गलियो मे वह रहा है। वही कुस्तुनतुनिया जो सौ साल पहले तुर्को के आतक से आहत हो रहा था, आज उनके गर्म रक्त से अपना कलेजा ठण्डा कर रहा है। सत्तर हजार तुर्क योद्धाओ की लाशे वासफरस की लहरो पर तैर रही हैं और तुर्की सेनापति एक लाख सिपाहियो के साथ तैमूरी तेज के सामने अपनी किस्मत का फैसला सुनने के लिए खडा है।

तैमूर ने विजय से भरी आँखें उठाईं और सेनापति यजदानी की ओर देख कर सिह के समान गरजा—क्या चाहते हो, जिन्दगी या मौत?

यजदानी ने गर्व से सिर उठाकर कहा—इज्जत की जिन्दगी मिले तो जिन्दगी, वरना मौत।

तैमूर का क्रोध प्रचड हो उठा। उसने वडे-वडे अभिमानियो का सिर नीचा कर दिया था। यह जवाव इस अवसर पर सुनने की उसे ताव न थी। इन एक लाख आदमियो की जान उसकी मुट्ठी मे है। इन्हे वह एक क्षण मे मसल सकता है। उस पर भी इतना अभिमान! इज्जत की जिन्दगी! इसका यही तो अर्थ हैं कि गरीवो का जीवन अमीरो के भोग-विलास पर वलिदान किया जाए। वही शराव की मजलिसें, वही अरमीनियाँ और काफ की परियाँ। नही, तैमूर ने खलीफा वायजीद का घमड इसलिए नहीं तोडा है कि तुर्कों को फिर उसी मदाध स्वाधीनता मे इस्लाम का नाम डुवाने को छोड दे। तव उसे इतना रक्त वहाने की क्या जरूरत थी? मानव-रक्त का प्रवाह संगीत का प्रवाह नही, रस का प्रवाह नही—एक वीभत्स दृश्य है, जिसे देखकर आंखें मुँह फेर लेती हैं, दृश्य सिर झुका लेता है। तैमूर हिसक पशु नही है, जो यह दृश्य देखने के लिए अपने जीवन की वाजी लगा दे।

वह अपने शब्दो मे धिक्कार भरकर वोला—जिसे तुम इज्जत की जिन्दगी कहते हो, वह गुनाह और जहन्नुम की जिन्दगी है।

यजदानी को तैमूर से दया या क्षमा की आशा न थी। उसकी या उसके योद्धाओ की जान किसी तरह नही वच सकती। फिर वह क्यो दवे और क्यो

न जान पर खेलकर तैमूर के प्रति उनके मन मे जो घृणा है, उसे प्रकट कर दे? उसने एक बार कातर नेत्रो मे उस रूपवान युवक की ओर देखा, जो उसके पीछे खडा, जैसे अपनी जवानी की लगाम खीच रहा था। सान पर चढें हुए, इसपात के समान उसके अग-अग से अतुल क्रोध की चिनगारियाँ निकल रही थी। यजदानी ने उसकी सूरत देखी और जैसे अपनी खीची हुई तलवार म्यान मे कर ली और खून के घूट पीकर वोला—जहाँपनाह इस वक्त फतहमद है, लेकिन अपराध क्षमा हो तो कह दू कि अपने जीवन के विषय मे तुर्को को तातारियो से उपदेश लेने की जरूरत नही। पर जहाँ खुदा ने नेमतो की वर्षा की हो' वहाँ उन नेमतो का भोग न करना नाशुक्री है। अगर तलवार ही सभ्यता की सनद होती, तो गाल कौम रोमनो से कही ज्यादा सभ्य होती।

तैमूर जोर से हँसा और उसके सिपाहियो ने तलवारो पर हाथ रख लिए। तैमूर का ठहाका मौत का ठहाका था या गिरनेवाले वज्र का तडाका।

'तातारवाले पशु हैं, क्यो ?'

'मै यह नही कहता।'

'तुम कहते हो, खुदा ने तुम्हे ऐश करने के लिए पैदा किया है। मै कहता हू यह कुफ्र है। खुदा ने इन्मान को वन्दिगी के लिए पैदा किया है और इसके खिलाफ जो कोई कुछ करता है, वह काफिर है, जहन्नुमी! रसूलेपाक हमारी जिन्दगी को पाक करने के लिए, हमे सच्चा इन्सान वनाने के लिए आये थे, हमे हराम की तालीम देने नही! तैमूर दुनिया को इस कुफ्र से पाक कर देने का वीडा उठा चुका है। रसूलेपाक के कदमो की कसम, मै वेरहम नही हूँ, खूँख्वार नही हूँ, लेकिन कुफ्र की सजा मेरे ईमान मे मौत के सिवा कुछ नही है।'

उसने तातारी सिपहसालार की तरफ कातिल नजरो से देखा और तत्क्षण एक देव-सा आदमी तलवार सौंतकर यजदानी के सिर पर आ पहुचा। तातारी सेना भी तलवारें खीच-खीचकर तुर्की सेना पर टूट पडी और दम-के-दम मे कितनी ही लाशें जमीन पर फडकने लगी।

सहसा वही रूपवान युवक, जो यजदानी से पीछे खडा था, आगे वढकर तैमूर के सामने आया और जैसे मौत को अपनी दोनो वँधी हुई मुट्ठियो मे मसलता हुआ वोला—ऐ अपने को मुसलमान कहनेवाले वादशाह! क्या यही वह इस्लाम है, जिसकी तवलीग का तूने वीड़ा उठाया है? इस्लाम की यही तालीम है कि तू उन वहादुरो का इस वेदर्दी से खून वहाए, जिन्होंने इसके सिवा कोई गुनाह नही किया कि अपने खलीफा और अपने मुल्क की हिमायत की?

चारो तरफ सन्नाटा छा गया? एक युवक जिसकी अभी, मसें भी न भीगी थी, तैमूर जैसे तेजस्वी वादशाह का इतने खुले हुए शब्दो मे तिरस्कार करे और उसकी जवान तालू से न खिचवा ली जाए! सभी स्तम्भित हो रहे थे और तैमूर

सम्मोहित-सा बैठा, उस युवक की ओर ताक रहा था।

युवक ने तातारी सिपाहियो की तरफ, जिनके चेहरो पर कुतूहलमय प्रोत्साहन झलक रहा था, देखा और बोला—तू इन मुसलमानो को काफिर कहता है और समझता है कि तू इन्हे कत्ल करके खुदा और इस्लाम की खिदमत कर रहा है ? मैं तुझसे पूछता हूँ, अगर वह लोग जो खुदा के सिवा और किसी के सामने सिजदा नही करते, जो रसूलेपाक को अपना रहबर समझते है, मुसलमान नही है तो कौन मुसलमान है ? मैं कहता हूँ, हम काफिर नही, लेकिन तेरे तो हैं ? क्या इस्लाम जजीर मे वँधे हुए कैदियो के कत्ल की इजाजत देता है ? खुदा ने अगर तुझे ताक़त दी है, अख्तियार दिया है, तो क्या इसलिए कि तू खुदा के बन्दो का खून बहाए ? क्या गुनहगारो को कत्ल करके तू उन्हे सीधे रास्ते पर ले जाएगा ? तूने कितनी बेरहमी से सत्तर हजार बहादुर तुर्को को धोखा देकर सुरग से उड़वा दिया और उनके मासूम बच्चो और निरपराध स्त्रियो को अनाथ कर दिया, तुझे अनुमान है ? क्या यही कारनामे हैं, जिन पर तू अपने मुसलमान होने का गर्व करता है ? क्या इसी कत्ल, खून और जुल्म की स्याही से तू दुनिया मे अपना नाम रोशन करेगा ? तूने तुर्को के खून के बहते दरिया मे अपने घोड़ो के सुम नही भिगोए हैं, बल्कि इस्लाम को जड मे खोदकर फेंक दिया है। यह वीर तुर्को का ही आत्मोत्सर्ग है, जिसने यूरोप मे इस्लाम की तौहीद फैलाई। आज सोफिया के गिरजे मे तुझे अल्लाह-अकवर की सदा सुनाई दे रही है, सारा यूरोप इस्लाम का स्वागत करने को तैयार है। क्या यह कारनामे इसी लायक हैं कि उनका यह इनाम मिले ? इस खयाल को दिल से निकाल दे कि तू खूँरेजी से इस्लाम की खिदमत कर रहा है। एक दिन तुझे भी परवरदिगार के सामने कर्मो का जवाब देना पडेगा और तेरा कोई उज्र न सुना जाएगा, क्योकि अगर तुझमे अव भी नेक और बद की तमीज बाकी है, तो अपने दिल से पूछ ! तूने यह जिहाद खुदा की राह मे किया या अपनी हविस के लिए, और मैं जानता हूँ, तुझे जो जवाब मिलेगा, वह तेरी गर्दन शर्म से झुका देगा।

खलीफा अभी सिर झुकाए ही था कि यजदानी ने काँपते हुए शब्दो मे अर्ज की—जहाँपनाह, यह गुलाम का लडका है। इसके दिमाग मे कुछ फितूर है। हुजूर इसकी गुस्ताखियो को मुआफ करे। मैं उसकी सजा झेलने को तैयार हूँ।

तैमूर उस युवक के चेहरे की तरफ स्थिर नेत्रो से देख रहा था। आज जीवन मे पहली बार उसे निर्भीक शब्दो के सुनने का अवसर मिला। उसके सामने बड़े-बड़े सेनापतियो, मन्त्रियो और बादशाहो की जबान न खुलती थी वह जो कुछ कहता था, वही कानून था, किसी को उसमे चूं करने की ताकत न थी। उसकी खुशामदो ने उसकी अहम्मन्यता को आसमान पर चढा दिया था। उसे विश्वास हो गया था कि खुदा ने इस्लाम को जगाने और सुधारने के लिए ही दुनिया मे

भेजा है। उसने पैंगम्वरी का दावा तो नही किया है पर उसके मन मे यह भावना दृढ हो गई थी, इसलिए जव आज एक युवक ने प्राणो का मोह छोडकर उसकी कीर्ति का परदा खोल दिया, तो उसकी चेतना जैसे जाग उठी। उसके मन मे क्रोध और हिंसा की जगह श्रद्धा का उदय हुआ। उसकी आँखो का एक इशारा इस युवक की जिन्दगी का चिराग गुल कर सकता था! उसकी ससार विजयिनी शक्ति के सामने यह दुधमुँहा वालक मानो अपने नन्हे-नन्हे हाथो से समुद्र के प्रवाह को रोकने के लिए खडा हो। कितना हास्यास्पद साहस था, उसके साथ ही कितना आत्मविश्वास से भरा हुआ! तैमूर को ऐसा जान पडा कि इस निहत्थे वालक के सामने वह कितना निर्वल है। मनुष्य मे ऐसे साहस का एक ही स्रोत हो सकता है और वह सत्य पर अटल विश्वास है। उसकी आत्मा दौड़कर उस युवक के दामन मे चिपट जाने के लिए अधीर हो गई। वह दार्शनिक न था, जो सत्य मे शका करता है। वह सरल सैनिक था, जो असत्य को भी अपने विश्वास से सत्य वना देता है।

यजदानी ने उसी स्वर मे कहा—जहाँपनाह, इसकी वदजवानी का खयाल न फरमावें।

तैमूर ने तुरंत तख्त से उठकर यजदानी को गले लगा लिया और वोला—काश, ऐसी गुस्ताखियो और वदजवानियो के सुनने का पहले इतफाक होता, तो आज इतने वेगुनाहो का खून मेरी गर्दन पर न होता। मुझे इस जवान मे किसी फरिश्ते की रूह का जलवा नजर आता है, जो मुझ-जैसे गुमराहो को सच्चा रास्ता दिखाने के लिए भेजी गई है। मेरे दोस्त, तुम खुशनसीव हो कि ऐसे फरिश्ता सिफत वेटे के वाप हो। क्या मैं उसका नाम पूछ सकता हूँ?

यजदानी पहले आतशपरस्त था, पीछे मुसलमान हो गया था; पर अभी तक कभी-कभी उसके मन मे शकाएँ उठती रहती थी कि उसने क्यो इस्लाम कवूल किया। जो कैदी फाँसी के तख्ने पर खड़ा सूखा जा रहा था कि एक क्षण मे रस्सी उसकी गर्दन मे पडेगी और वह लटकता रह जाएगा, उसे जैसे किसी फरिश्ते ने गोद मे ले लिया। वह गद्‌गद कठ से वोला—उसे हवीव कहते हैं।

तैमूर ने युवक के सामने जाकर उसका हाथ पकड लिया और उसे आँखो से लगाता हुआ वोला—मेरे जवान दोस्त, तुम सचमुच खुदा के हवीव हो, मैं वह गुनहगार हूँ, जिसने अपनी जहालत मे हमशा अपने गुनाहो को सवाव समझा, इसलिए कि मुझसे कहा जाता था, तेरी जात वेऐव है। आज मुझे मालूम हुआ कि मेरे हाथो इस्लाम को कितना नुकसान पहूँचा। आज से मैं तुम्हारा ही दामन पकड़ता हूँ! तुम्ही मेरे खिज्र, तुम्ही मेरे रहनुमा हो। मुझे यकीन हो गया कि तुम्हारे ही वसीले से मैं खुदा की दरगाह तक पहुच सकता हूँ।

यह कहते हुए उसने युवक के चेहरे पर नजर डाली तो उस पर शर्म की

लाली छायी हुई थी। उस कठोरता की जगह मधुर सकोच झलक रहा था।

युवक ने सिरे झुकाकर कहा—यह हुजूर की कदरदानी है, वरना मेरी क्या हस्ती है!

तैमूर ने उसे खीचकर अपनी बगल मे तख्त पर बिठा दिया और अपने सेनापति को हुक्म दिया, सारे तुर्क कैदी छोड़ दिये जाएँ, उनके हथियार वापस कर दिए जाएँ और जो माल लूटा गया है, वह सिपाहियो मे बराबर बांट दिया जाए।

वज़ीर तो उधर इस हुक्म की तामिल करने लगा, इधर तैमूर हबीब का हाथ पकडे हुए अपने खीमे मे गया और दोनो मेहमानो की दावत का प्रबन्ध करने लगा। और जब भोजन समाप्त हो गया, तो उसने अपने जीवन की सारी कथा रो-रोकर कह सुनाई, जो आदि से अन्त तक मिश्रित पशुता और बर्बरता के कृत्यो से भरी हुई थी। और उसने यह सब कुछ इस भ्रम मे किया कि वह ईश्वरीय आदेश का पालन कर रहा है। वह खुदा को कौन मुंह दिखाएगा? रोते-रोते उसकी हिचकियाँ बँध गईं।

अन्त मे उसने हबीब से कहा—मेरे जवान दोस्त, अब मेरा बेडा आप ही पार लगा सकते हैं। आपने राह दिखाई है तो मजिल पर पहुचाइए। मेरी बादशाहत को अब आप ही सँभाल सकते हैं। मुझे अब मालूम हो गया कि मैं उसे तबाही के रास्ते पर लिये जाता था। मेरी आपसे यही इल्तमास (प्रार्थना) है कि आप उसकी वजारत कबूल करें। देखिए, खुदा के लिए इनकार न कीजिएगा, वरना मैं कही का न रहूँगा।

यजदानी ने अरज की—हुजूर इतनी कदरदानी फरमाते हैं, यह आपकी इनायत है, लेकिन अभी इस लडके की उम्र ही क्या है। वजारत की खिदमत यह क्या अजाम दे सकेगा! अभी तो इसकी तालीम के दिन हैं।

इधर से इनकार होता रहा और और उधर तैमूर आग्रह करता रहा। यजदानी इनकार तो कर रहे थे, पर छाती फूली जाती थी। मूसा आग लेने गये थे। पैगम्बरी मिल गई। कहाँ मौत के मुँह में जा रहे थे, वजारत मिल गई, लेकिन यह शका भी थी कि ऐसे अस्थिर-चित्त आदमी का क्या ठिकाना? आज खुश हुए, वजारत देने को तैयार हैं, कल नाराज हो गए, तो जान की खैरियत नही। उन्हे हबीब की लियाकत पर भरोसा था, फिर भी जी डरता था कि बिराने देश मे न जाने कैसी पड़े, कैसी न पडे। दरबारवालो मे षड्यंत्र होते ही रहते हैं। हबीब नेक है, समझदार है, अवसर पहचानता है, लेकिन वह तजरबा कहाँ से लाएगा, जो उम्र ही से आता है।

उन्होंने इस प्रश्न पर विचार करने के लिए एक दिन की मुहलत मांगी और रुखसत हुए।

3

हवीव यजदानी का लडका नही, लडकी थी। उसका नाम उम्मतुल हवीव था। जिस वक्त यजदानी और उसकी पत्नी मुसलमान हुए, तो लडकी की उम्र कुल वारह साल की थी, पर प्रकृति ने उसे वुद्धि और प्रतिभा के साथ विचार-स्वातत्र्य भी प्रदान किया था। वह जव तक सत्यासत्य की परीक्षा न कर लेती, कोई वात स्वीकार न करती। माँ-वाप के धर्म-परिवर्तन से उसे अशाति तो हुई; पर जव तक इस्लाम का अच्छी तरह अध्ययन न कर ले, वह केवल माँ-वाप को खुश करने के लिए इस्लाम की दीक्षा न ले सकती थी। माँ-वाप भी उस पर किसी तरह का दवाव न डालना चाहते थे। जैसे उन्हे अपने धर्म को वदल देने का अधिकार है। वैसे ही उसे अपने धर्म पर आरूढ रहने का भी अधिकार है। लडकी को सतोष हुआ, लेकिन उसने इस्लाम और जरतुश्त धर्म—दोनो ही का तुलनात्मक अध्ययन किया, और पूरे दो साल के अन्वेपण और परीक्षण के वाद उसने भी इस्लाम की दीक्षा ले ली। माता-पिता फूले न समाए। लडकी उनके दवाव से मुसलमान नही हुई है, वल्कि स्वेच्छा से, स्वाध्याय से और ईमान से। दो साल तक उन्हे जो एक शका घेरे रहती थी, वह मिट गई।

यजदानी के कोई पुत्र न था और उस युग मे जव कि आदमी की तलवार ही सवसे वडी अदालत थी, पुत्र का न रहना संसार का सवसे वडा दुर्भाग्य था। यजदानी वेटे का अरमान वेटी से पूरा करने लगा। लड़को ही की भाँति उसकी शिक्षा-दीक्षा होने लगी। वह वालको के-से कपडे पहनती, घोडे पर सवार होती, शस्त्र-विद्या सीखती और अपने वाप के साथ अक्सर खलीफा वायजीद के महलो मे जाती और राजकुमारी के साथ शिकार खेलने जाती। इसके साथ ही वह दर्शन, काव्य, विज्ञान और अध्यात्म का भी अभ्यास करती थी। यहाँ तक कि सोलहवें वर्ष मे वह फौजी विद्यालय मे दाखिल हो गई और दो साल के अन्दर वहाँ की सवसे ऊँची परीक्षा पास करके फौज मे नौकर हो गई। शस्त्र-विद्या और सेना-संचालन कला मे वह इतनी निपुण थी और खलीफा वायजीद उसके चरित्र से इतना प्रसन्न था कि पहले ही पहल उसे एकहजारी मन्सव मिल गया।

ऐसी युवती के चाहनेवालो की क्या कमी? उसके साथ के कितने ही अफसर, राज-परिवार के कितने ही युवक उस पर प्राण देते थे, पर कोई उसकी नजरो मे न जँचता था। नित्य ही निकाह के पैगाम आते थे, पर वह हमेशा इनकार कर देती थी। वैवाहिक जीवन ही से उसे अरुचि थी। उसकी स्वाधीन प्रकृति इस वन्धन में न पडना चाहती थी। फिर नित्य ही वह देखती थी कि युवतियाँ कितने अरमानो से व्याह कर लायी जाती हैं और फिर कितने निरादर से महलों

मे वन्द कर दी जाती हैं । उसका भाग्य पुरुषो की दया के अधीन है ।

अक्सर ऊँचे घरानो की महिलाओ मे उसको मिलने-जुलने का अवसर मिलता था । उनके मुख से उनकी करुणा कथा सुनकर वह वैवाहिक पराधीनता मे और भी घृणा करने लगती थी । और यजदानी उसकी स्वाधीनता मे बिल्कुल वाधा न देता था । लडकी स्वाधीन है । उसकी इच्छा हो, विवाह करे या क्वाँरी रहे, वह अपनी-आप मुखतार है । उसके पास पैगाम आते, तो वह साफ जवाब दे देता—मैं इस वारे मे कुछ नही जानता । इसका फैसला वही करेगी ।

यद्यपि एक युवती का पुरुष वेप मे रहना, युवको मे मिलना-जुलना, समाज मे आलोचना का विषय था, पर यजदानी और उसकी स्त्री दोनो ही को उसके सतीत्व पर विश्वास था । हवीव के व्यवहार और आचार मे उन्हे कोई ऐसी वात नजर न आती थी, जिससे उन्हे किसी तरह की शका होती । यौवन की आँधी और लालसाओ के तूफान मे वह चौवीस वर्षो की वीरवाला अपने हृदय की सम्पत्ति लिये अटल और अजेय खडी थी, मानो सभी युवक उसके सगे भाई हैं ।

4

कुस्तुनतुनिया मे कितनी खुशियाँ मनाई गईं, हवीव का कितना सम्मान और स्वागत हुआ, उसे कितनी बधाइयाँ मिली, यह सब लिखने की बात नहीं । शहर तवाह हुआ जाता था । सम्भव था, आज उसके महलो और बाजारो मे आग की लपटें निकली होती । राज्य और नगर को उस कल्पनातीत विपत्ति से बचानेवाला आदमी कितने आदर, प्रेम, श्रद्धा और उल्लास का पात्र होगा, इसकी तो कल्पना भी नही की जा सकती । उस पर कितने फूलो और कितने लाल-जवाहरो की वर्षा हुई, इसका अनुमान तो कोई कवि ही कर सकता है और नगर की महिलाएँ हृदय के अक्षय भंडार से असीसें निकाल-निकालकर उस पर लुटाती थी और गर्व से फूली हुई उसका मुह निहारकर अपने को धन्य मानती थी । उसने देवियो का मस्तक ऊँचा कर दिया ।

रात को तैमूर के प्रस्ताव पर विचार होने लगा । सामने गद्देदार कुर्सी पर यजदानी था—सौम्य, विशाल और तेजस्वी । उसकी दाहिनी तरफ उसकी पत्नी थी, ईरानी लिवास मे, आँखो मे दया और विश्वास की ज्योति भरे हुए । वायी तरफ उम्मुतुल हवीव थी, जो इस समय रमणी-वेप मे मोहिनी बनी हुई थी' ब्रह्मचर्य के तेज से दीप्त ।

यजदानी ने प्रस्ताव का विरोध करते हुए कहा—मैं अपनी तरफ से कुछ नही कहना चाहता, लेकिन यदि मुझे सलाह देने का अधिकार है, तो मैं स्पष्ट कहता हूँ कि तुम्हे इस प्रस्ताव को कभी स्वीकार न करना चाहिए, तैमूर से यह

वात वहुत दिन तक छिपी नही रह सकती कि तुम क्या हो। उस वक्त क्या परिस्थिति होगी, मैं नही कहता। और यहाँ इस विषय मे जो कुछ टीकाएँ होगी, वह तुम मुझसे ज्यादा जानती हो। यहाँ मै मौजूद था और कुत्सा को मुँह न खोलने देता था, पर वहाँ तुम अकेली रहोगी और कुत्सा को मनमाने आरोप करने का अवसर मिलता रहेगा।

उसकी पत्नी स्वेच्छा को इतना महत्व न देना चाहती थी! वोली—मैंने सुना है, तैमूर निगाहो का अच्छा आदमी नही है। मै किसी तरह तुझे न जाने दूगी। कोई वात हो जाए तो सारी दुनिया हँसे। यो ही हँसनेवाले क्या कम हैं?

इसी तरह स्त्री-पुरुप वडी देर तक ऊँच-नीच सुझाते और तरह-तरह की शंकाएँ करते रहे, लेकिन हवीव मौन साधे वैठी हुई थी। यजदानी ने समझा, हवीव भी उनसे सहमत है। इनकार की सूचना देने के लिए ही था कि हवीव ने पूछा—आप तैमूर से क्या कहेंगे?

'यही, जो यहाँ तय हुआ।'

'मैंने तो अभी कुछ नही कहा।'

'मैंने तो समझा, तुम भी हमसे सहमत हो।'

'जी नही। आप उनसे जाकर कह दें, मै स्वीकार करती हूँ।'

माता ने छाती पर हाथ रखकर कहा—यह क्या गजव करती है वेटी! सोच तो दुनिया क्या कहेगी?

यजदानी भी सिर थामकर वैठ गए, मानो हृदय मे गोली लग गई हो। मुँह से एक शव्द भी न निकला।

हवीव त्योरियो पर वल डालकर वोली—अम्मीजान, मैं आपके हुक्म से जौ-भर भी मुँह नही फेरना चाहती। आपको पूरा अख्तियार है, मुझे जाने दें या न दें, लेकिन खल्क की खिदमत का ऐसा मौका शायद मुझे जिंदगी मे फिर न मिले। इस मौके को हाथ से खो देने का अफसोस मुझे उम्र-भर रहेगा। मुझे यकीन है कि अमीन तैमूर को मै अपनी दियानत, वेगरजी और सच्ची वफादारी से इन्सान वना सकती हूँ और शायद उसके हाथो के वदो का खून इतनी कस-रत से न वहे। वह दिलेर है, मगर वेरहम नही। कोई दिलेर आदमी वेरहम नही हो सकता। उसने अव तक जो कुछ किया है, मजहव के अंधे जोश मे किया है। आज खुदा ने मुझे वह मौका दिया है कि मैं उसे दिखा दू कि मजहव खिदमत का नाम है, लूट और कत्ल का नही। अपने वारे मे मुझे मुतलक अंदेशा नही है। मैं अपनी हिफाजत आप कर सकती हूँ। मुझे दावा है कि अपने फर्ज को नेक-नीयती से अदा करके मैं दुश्मनो की जवान भी वन्द कर सकती हूँ, और मान लीजिए, मुझे नाकामी भी हो, तो क्या सचाई और हक के लिए कुर्वान हो जाना जिन्दगी की सवसे शानदार फतह नही है? अव तक मैंने जिस उसूल पर जिन्दगी

बसर की है, उसने मुझे धोखा नही दिया और उसी के फैज से आज मुझे यह दर्जा हासिल हुआ है, जो बड़े-बडो के लिए जिन्दगी का ख्वाब है। ऐसे आजमाए हुए दोस्त मुझे कभी धोखा नही दे सकते। तैमूर पर मेरी हकीकत खुल भी जाए, तो क्या खौफ ? मेरी तलवार मेरी हिफाजत कर सकती है। शादी पर मेरे ख्याल आपको मालूम हैं। अगर मुझे कोई ऐसा आदमी मिलेगा, जिसे मेरी रूह कबूल करती हो, जिसकी जात अपनी हस्ती को खोकर मैं अपनी रूह को ऊँचा उठा सकूं, तो मै उसके कदमो पर गिरकर अपने को उसकी नजर कर दूंगी।

यजदानी ने खुश होकर बेटी को गले लगा लिया। उसकी स्त्री इतनी जल्द आश्वस्त न हो सकी। वह किसी तरह बेटी को अकेली न छोड़ेगी। उसके साथ वह भी जाएगी।

5

कई महीने गुजर गए। युवक हबीब तैमूर का वजीर है, लेकिन वास्तव मे वही बादशाह है। तैमूर उसी की आँखो से देखता है, उसी के कानो से सुनता है और उसी की अक्ल से सोचता है। वह चाहता है, हबीब आठो पहर उसके पास रहे। उसके समीप्य मे उसे स्वर्ग का-सुख मिलता है। समरकंद मे एक प्राणी भी ऐसा नही, जो उससे जलता हो। उसके बर्ताव ने सभी को मुग्ध कर लिया है, क्योकि वह इन्साफ से जौ-भर भी कदम नही हटाता। जो लोग उसके हाथो चलती हुई न्याय की चक्की में पिस जाते हैं, वे भी उससे सद्भाव ही रखते है, क्योकि वह न्याय को जरूरत से ज्यादा कटु नही होने देता।

सध्या हो गई थी। राज्य कर्मचारी जा चुके थे। शमादान मे मोम की बत्तियाँ जल रही थी। अगर की सुगध से सारा दीवानखाना महक रहा था। हबीब भी उठने ही को था कि चोबदार ने खबर दी—हुजूर, जहाँपनाह तशरीफ ला रहे हैं।

हबीब इस खबर से कुछ प्रसन्न नही हुआ। अन्य मन्त्रियो की भाँति वह तैमूर की मोहब्बत का भूखा नही है। वह हमेशा तैमूर से दूर रहने की चेष्टा करता है। ऐसा शायद ही कभी हुआ हो कि उसने शाही दस्तरख्वान पर भोजन किया हो। तैमूर की मजलिसो मे भी वह कभी शरीक नही होता। उसे जब शांति मिलती है, तब एकात मे अपनी माता के पास बैठकर दिन-भर का माजरा उससे कहता है और वह उस पर अपनी पसद की मुहर लगा देती है।

उसने द्वार पर जाकर तैमूर का स्वागत किया। तैमूर ने मसनद पर बैठते हुए कहा—मुझे ताज्जुब होता है कि तुम इस जवानी मे जाहिदो की-सी जिंदगी कैसे बसर करते हो हबीब! खुदा ने तुम्हे वह हुस्न दिया है कि हसीन-से-हसीन

नाजनीन भी तुम्हारी माशूक बनकर अपने को खुशनसीब समझेगी। मालूम नहीं तुम्हें खबर है या नहीं, जब तुम अपने मुश्की घोड़े पर सवार होकर निकलते हो, तो समरकंद की खिड़कियों पर हजारों आँखें तुम्हारी एक झलक देखने के मुंतजिर बैठी रहती हैं, पर तुम्हें किसी तरफ आँखें उठाते नहीं देखा! मेरा खुदा गवाह है, मैं कितना चाहता हूँ कि तुम्हारे कदमों के नक्श पर चलूं। मैं चाहता हूँ, जैसे तुम दुनिया में रहकर भी दुनिया से अलग रहते हो, वैसे मैं भी रहूँ, लेकिन मेरे पास न वह दिल है, न वह दिमाग। मैं हमेशा अपने-आप पर, सारी दुनिया पर दांत पीसता रहता हूँ। जैसे मुझे हरदम खून की प्यास लगी रहती है, जिसे तुम बुझने नहीं देते, और यह जानते हुए भी कि तुम जो करते हो, उससे बेहतर कोई दूसरा नहीं कर सकता, मैं अपने गुस्से को काबू में नहीं कर सकता। तुम जिधर से निकलते हो, मुरव्वत और रोशनी फैला देते हो। जिसको तुम्हारा दुश्मन होना चाहिए, वह भी तुम्हारा दोस्त है। मैं जिधर से निकलता हूँ नफरत और शुबहा फैलाता हुआ निकलता हूँ। जिसे मेरा दोस्त होना चाहिए, वह भी मेरा दुश्मन है। दुनिया में बस यही एक जगह है, जहाँ मुझे आफियत मिलती है। अगर तुम समझते हो, यह ताज और तख्त मेरे रास्ते के रोड़े हैं, तो खुदा की कसम, मैं आज इन पर लात मार दूं। मैं आज तुम्हारे पास यही दरख्वास्त लेकर आया हूँ कि तुम मुझे वह रास्ता दिखाओ, जिससे मैं खुशी पा सकूं। मैं चाहता हूँ, तुम इसी महल में रहो ताकि मैं तुमसे सच्ची जिंदगी का सबक सीखूं।

हबीब का हृदय धक् से हो उठा। कहीं अमीन पर उसके नारीत्व का रहस्य खुल तो नहीं गया? उसकी समझ में न आया कि उसे क्या जवाब दे? उसका कोमल हृदय तैमूर की इस करुण आत्मग्लानि पर द्रवित हो गया। जिसके नाम से दुनिया कांपती है, वह उसके सामने एक दयनीय प्रार्थी बना हुआ उसके प्रकाश की भिक्षा माँग रहा है! तैमूर की उस कठोर, विकृत, शुष्क, हिंसात्मक मुद्रा में उसे एक स्निग्ध मधुप ज्योति दिखाई दी, मानो उसका जागृत विवेक भीतर से झाँक रहा हो। उसे अपना स्थिर जीवन, जिसमें ऊपर उठने की स्फूर्ति ही न रही थी, इस विफल उद्योग के सामने तुच्छ जान पड़ा।

उसने मुग्ध कंठ से कहा—हुजूर इस गुलाम की इतनी कद्र करते हैं, यह मेरी खुशनसीबी है, लेकिन मेरा शाही महल में रहना मुनासिब नहीं।

तैमूर ने पूछा—क्यों?

'इसलिए कि जहां दौलत ज्यादा होती है, वहाँ डाके पड़ते हैं और जहां कद्र ज्यादा होती है, वहाँ दुश्मन भी ज्यादा होते हैं।'

'तुम्हारा दुश्मन भी कोई हो सकता है?'

'मैं खुद अपना दुश्मन हो जाऊँगा। आदमी का सबसे बड़ा दुश्मन गरूर है?

तैमूर को जैसे कोई रत्न मिल गया। उसे अपनी मन तुष्टि का आभास हुआ। 'आदमी का सबसे बडा दुश्मन गरूर है' इस वाक्य को मन-ही-मन दोहरा कर उसने कहा—तुम मेरे काबू मे कभी न आओगे हबीब। तुम वह परद हो, जो आसमान मे ही उड सकता है। उसे सोने के पिंजडे मे भी रखना चाहो तो फडफडाता रहेगा। खैर, खुदा हाफिज!

वह तुरंत अपने महल की ओर चला, मानो उस रत्न को सुरक्षित स्थान मे रख देना चाहता हो। यह वाक्य पहली बार उसने न सुना था, पर आज उससे जो ज्ञान, जो आदेश, जो सद्‌प्रेरणा उसे मिली, वह कभी न मिली थी।

6

इस्तखर के इलाके से बगावत की खबर आयी है। हबीब को शंका है कि तैमूर वहाँ पहुँचकर कही कत्लेआम न कर दे। वह शातिमय उपायो से इस विद्रोह को ठडा करके तैमूर को दिखाना चाहता है कि सद्‌भावना मे कितनी शक्ति है। तैमूर उसे इस मुहिम पर नही भेजना चाहता,लेकिन हबीब के आग्रह के सामने बेबस है। हबीब को जब और कोई युक्ति न सूझी, तो उसने कहा—गुलाम के रहते हुए हुजूर अपनी जान खतरे मे डाले, यह नही हो सकता।

तैमूर मुस्कराया—मेरी जान की तुम्हारी जान के मुकाबले मे कोई हकीकत नही है हबीब। फिर मैंने तो कभी जान की परवाह न की। मैंने दुनिया मे कत्ल और लूट के सिवा और क्या यादगार छोडी? मेरे मर जाने पर दुनिया मेरे नाम को रोएगी नही, यकीन मानो। मेरे जैसे लुटेरे हमेशा पैदा होते रहेंगे, लेकिन खुदा न करे' तुम्हारे दुश्मनो को कुछ हो गया, तो यह सल्तनत खाक मे मिल जाएगी और तब मुझे भी सीने मे खजर चुभा लेने के सिवा और कोई रास्ता न रहेगा। मैं नही कह सकता हबीब, तुममे मैंने कितना पाया। काश दस-पाँच साल पहले तुम मुझे मिल जाते, तो तैमूर तवारीख मे इतना रूसियाह न होता। आज अगर जरूरत पडे, तो मैं अपने जैसे सौ तैमूरो को तुम्हारे ऊपर निसार कर दूं। यही समझ लो कि तुम मेरी रूह को अपने साथ लिये जा रहे हो। आज मैं तुमसे कहता हूँ हबीब कि मुझे तुमसे इश्क है, वह इश्क जो मुझे आज तक किसी हसीना से नही हुआ। इश्क क्या चीज है, इसे मैं अब जान पाया हूँ। मगर इसमे क्या बुराई है कि मैं भी तुम्हारे साथ चलूं?

हबीब ने धडकते हुए हृदय से कहा—अगर मैं आपकी जरूरत समझूंगा, तो इत्तला दूंगा।

तैमूर ने दाढी पर हाथ रखकर कहा—जैसी तुम्हारी मर्जी, लेकिन रोजाना कासिद भेजते रहना, वरना शायद मैं बेचैन होकर चला आऊं।

तैमूर ने कितनी मुहब्बत से हबीब के सफर की तैयारियां की। तरह-तरह के

आराम और तकल्लुफी की चीजें उसके लिए जमा की । उस कोहिस्तान मे यह चीजे कहाँ मिलेंगी । वह ऐसा संलग्न था, मानो माता अपनी लड़की को ससुराल भेज रही हो ।

जिस वक्त हवीव फौज के साथ चला, तो सारा समरकद उसके साथ था और तैमूर आँखो पर रूमाल रखे, अपने तख्त पर ऐसा सिर झुकाए वैठा था, मानो कोई पक्षी आहत हो गया हो ।

7

इस्तखर अरमनी ईसाइयो का इलाका था । मुसलमानो ने उन्हे परास्त करके वहाँ अपना अधिकार जमा लिया था और ऐसे नियम वना दिए थे, जिससे ईसाइयो को पग-पग पर अपनी पराधीनता का स्मरण होता रहता था । पहला नियम जजिये का था, जो हरेक ईसाई को देना पडता था, जिससे मुसलमान मुक्त थे । दूसरा नियम यह था कि गिर्जो मे घंटा न वजे ! तीसरा नियम मदिरा का था, जिसे मुसलमान हराम समझते थे । ईसाइयो ने इन नियमो का क्रियात्मक विरोध किया और जव मुसलमान अधिकारियो ने शस्त्र-वल से काम लेना चाहा, तो ईसाइयो ने वगावत कर दी, मुसलमान सूवेदार को कैद कर लिया और किले पर सलीवी झडा उडने लगा ।

हवीव को यहाँ आज दूसरा दिन हैं, पर इस समस्या को कैसे हल करे ।

उसका उदार हृदय कहता था, ईसाइयो पर इन वधनो का कोई अर्थ नही । हरेक धर्म का समान रूप से आदर होना चाहिए, लेकिन मुसलमान इन कैदों को उठा देने पर कभी राजी न होगे । और यह लोग मान भी जाएँ तो तैमूर क्यो मानने लगा ? उसके धार्मिक विचारो मे कुछ उदारता आई है, फिर भी वह इन कैदो को उठाना कभी मजूर न करेगा; लेकिन क्या वह ईसाइयो को सजा दे कि वे अपनी धार्मिक स्वाधीनता के लिए लड रहे है । जिसे वह सत्य समझता है, उसकी हत्या कैसे करे ? नही, उसे सत्य का पालन करना होगा, चाहे इसका नतीजा कुछ भी हो । अमीन समझेंगे, मै जरूरत से ज्यादा वढा जा रहा हूँ । कोई मुजायका नही ।

दूसरे दिन हवीव ने प्रातःकाल डके की चोट ऐलान कराया—जजिया माफ किया गया, शराव और घण्टो पर कोई कैद नही है ।

मुसलमानो मे तहलका पड़ गया । यह कुफ्र है, हरामपरस्ती है । अमीन तैमूर ने जिस इस्लाम को अपने खून से सीचा, उसकी जड उन्ही के वजीर हवीव पाशा के हाथो खुद रही है ! पाँसा पलट गया । शाही फौज मुसलमानो से जा मिली । हवीव ने इस्तखर के किले मे पनाह ली । मुसलमानो की ताकत शाही फौज के मिल जाने से वहुत वढ गई थी । उन्होंने किला घेर लिया और यह समझकर

कि हबीब ने तैमूर से बगावत की है, तैमूर के पास इसकी सूचना देने और परिस्थिति समझने के लिए कासिद भेजा।

8

आधी रात गुजर चुकी थी। तैमूर को दो दिनो से इस्तखर की कोई खबर न मिली थी। तरह-तरह की शकाएँ हो रही थी। मन मे पछतावा हो रहा था। कि उसने क्यो हबीब को अकेला जाने दिया। माना कि वह लडका बडा नीति-कुशल है, पर बगावत कही जोर पकड गई, तो मुट्ठी-भर आदमियो से वह क्या कर सकेगा? और बगावत यकीनन जोर पकडेगी। वहाँ के ईसाई बला के सरकश है। जब उन्हे मालूम होगा कि तैमूर की तलवार मे जग लग गया और उसे अब महलो की जिन्दगी पसद है, तो उनकी हिम्मतें दूनी हो जाएँगी। हबीब कही दुश्मनो से घिर गया, तो बडा गजब हो जाएगा।

उसने अपने जानू पर हाथ मारा और पहलू बदलकर अपने ऊपर झुंझलाया। वह इतना पस्तहिम्मत क्यो हो गया? क्या उसका तेज और शौर्य उससे विदा हो गया? जिसका नाम सुनकर दुश्मनो मे कम्पन पड जाता था, वह आज अपना मुह छिपाकर महलो मे बैठा हुआ है। दुनिया की आँखो मे इसका यही अर्थ हो सकता है कि तैमूर अब मैदान का शेर नही, कालीन का शेर हो गया। हबीब फरिश्ता है, जो इन्सान की बुराइयो से वाफिक नही। जो रहम और नाफ़दिली और बेगरजो का देवता है, वह क्या जाने इन्सान कितना शैतान हो सकता है। अमन के दिनो मे तो ये बातें कौम और मुल्क को तरक्की के रास्ते पर ले जाती है, पर जंग मे, जबकि शैतानी जोश का तूफान उठता है, इन खूबियो की गुंजाइश नही, उस वक्त तो उसी की जीत होती है, जो इन्सानी खून का रग खेले, खेती-खलिहानो को जलाए जगलो को बसाए और बस्तियो को वीरान करे। अमन का कानून जग के कानून से जुदा है।

सहसा चोबदार ने इस्तखर से एक कासिद के आने की खबर दी। कासिद ने जमीन चूमी और एक किनारे अदब मे खडा हो गया। तैमूर का रौब ऐसा छा गया कि जो कुछ कहने आया था, वह भूल गया।

तैमूर ने त्योरियाँ चढाकर पूछा—क्या खबर लाया है। तीन दिन के बाद आया भी तो इतनी रात गए?

कासिद ने फिर जमीन चूमी और बोला—खुदावद, वजीर साहब ने जजिया मुआफ कर दिया।

तैमूर गरज उठा—क्या कहता है, जजिया माफ कर दिया?

'हाँ खुदावद।'

'किसने?'

'वजीर साहब ने ।'

'किसके हुक्म से ?'

'अपने हुक्म से हुजूर ।'

'हूँ !'

'और हुजूर, शराब का भी हुक्म दे दिया ।'

'हूँ !'

'गिरजों मे घण्टे बजाने का भी हुक्म हो गया है ।'

'हूँ ।'

'और खुदावद ईसाइयो से मिलकर मुसलमानो पर हमला कर दिया ।'

'तो मैं क्या करूँ ?'

'हुजूर हमारे मालिक है । अगर हमारी कुछ मदद न हुई, तो वहाँ एक मुसलमान भी जिन्दा न बचेगा ।'

'हबीब पाशा इस वक्त कहा है ?'

'इस्तखर के किले मे हुजूर ।'

'और मुसलमान क्या कर रहे हैं ?'

'हमने ईसाइयो को किले मे घेर लिया है ।'

'उन्ही के साथ हबीब को भी ?'

'हा हुजूर, वह हुजूर से बागी हो गए ।'

'और इसलिए मेरे वफादार इस्लाम के खादिमो ने उन्हे कैद कर रखा है ! मुमकिन है, मेरे पहुँचते-पहुँचते उन्हे कत्ल भी कर दें । बदजात, दूर हो जा मेरे सामने से । मुसलमान समझते हैं, हबीब मेरा नौकर है और मैं उसका आका हूँ ! यह गलत है, झूठ है । इस सल्तनत का मालिक हबीब है, तैमूर उसका अदना गुलाम है । उसके फैसले मे तैमूर दस्तंदाजी नही कर सकता । बेशक जजिया मुआफ होना चाहिए । मुझे मजाज नही कि दूसरे मजहब वालो से उनके ईमान का तावान लूँ । कोई मजाज नही है, अगर मस्जिद मे अजान होती है, तो कलीसा मे घण्टा क्यो न बजे ? घटे की आवाज मे कुफ्र नही है । सुनता है बदजात ! घटे की आवाज मे कुफ्र नही है ! काफिर वह है, जो दूसरो का हक छीन ले, जो गरीबो को सताए, दगाबाज हो, खुदगरज हो, काफिर वह नहीं; जो मिट्टी या पत्थर के एक टुकडे मे खुदा का नूर देखता हो, जो नदियो और पहाडो मे, दरख्तो और झाडियो मे खुदा का जलवा पाता हो । वह हमसे और तुझसे ज्यादा खुदापरस्त है, जो मस्जिद मे खुदा को बन्द समझता है ! तू समझता है, मैं कुफ्र बक रहा हूँ ? किसी को काफिर समझना ही कुफ्र है । हम सब खुदा के बन्दे हैं, सब । बस, जा और उन बागी मुसलमानो से कह दे, अगर फौरन मुहासरा न उठा लिया गया, तो तैमूर कयामत की तरह आ पहुचेगा ।'

कासिद हतबुद्धि-सा खडा ही था कि बाहर खतरे का बिगुल बज उठा और फौजे किसी समर-यात्रा की तैयारी करने लगी ।

9

तीसरे दिन तैमूर इस्तखर पहुँचा, तो किले का मुहासरा उठ चुका था। किले की तोपो ने उसका स्वागत किया । हबीब ने समझा, तैमूर ईसाइयो को सजा देने आ रहा है । ईसाइयो के हाथ-पाँव फूले हुए थे, मगर हबीब मुकाबले के लिए तैयार था । ईसाइयो के स्वप्न की रक्षा मे यदि उसकी जान भी जाए, तो कोई गम नही । इस मुआमले पर किसी तरह का समझौता नहीं हो सकता । तैमूर अगर तलवार से काम लेना चाहता है, तो उसका जवाब तलवार से दिया जाएगा ।

मगर यह क्या बात है ! शाही फौज सफेद झडा दिखा रही है । तैमूर लडने नही, सुलह करने आया है । उसका स्वागत दूसरी तरह का होगा । ईसाई सरदारो को साथ लिए हबीब किले के बाहर निकला । तैमूर अकेला घोडे पर सवार चला आ रहा था । हबीब घोडे से उतरकर आदाब बजा लाया । तैमूर घोडे से उतर पडा और हबीब का माथा चूम लिया और बोला—मैं सब सुन चुका हूँ हबीब ! तुमने बहुत अच्छा किया और वही किया, जो तुम्हारे सिवा दूसरा नहीं कर सकता था । मुझे जजिया लेने का या ईसाइयो के मजहबी हक छीनने का कोई मजाज न था । मैं आज दरबार करके इन बातो को तसदीक कर दूँगा और तब मैं एक ऐसी तजवीज बनाऊगा, जो कई दिन से मेरे जेहन मे आ रही है और मुझे उम्मीद है कि तुम उसे मजूर कर लोगे । मजूर करना पडेगा ।

हबीब के चेहरे का रग उड रहा था । कही हकीकत खुल तो नही गई ? वह क्या तजवीज है, उसके मन मे खलबली पड गई ।

तैमूर ने मुस्कराकर पूछा—तुम मुझसे लडने को तैयार थे ?

हबीब ने शरमाते हुए कहा—हक के सामने अमीन तैमूर की भी कोई हकीकत नही ।

'बेशक-बेशक ! तुममे फरिश्तो का दिल है, तो शेरो की हिम्मत भी है, लेकिन अफसोस यही है कि तुमने वह गुमान ही क्यो किया कि तैमूर तुम्हारे फैसले को मसूख कर सकता है ? यह तुम्हारी जात है, जिसने मुझे बतलाया है कि सल्तनत किसी आदमी की जायदाद नही; बल्कि एक ऐसा दरख्त है, जिसकी हरेक शाख और पत्ती एक-सी खुराक पाती है ।'

दोनो किले मे दाखिल हुए । सूरज डूब चुका था । आन-की-आन मे दरबार लग गया और उसमे तैमूर ने ईसाइयो के धार्मिक अधिकारो को स्वीकार किया ।

चारो तरफ से आवाज आई—खुदा हमारे शहंशाह की उम्र दराज करे ।

तैमूर ने उसी सिलसिले में कहा—दोस्तो, मैं इस दुआ का हकदार नही हूँ। जो चीज मैंने आपसे जवरन ली थी, उसे आपको वापस देकर मैं दुआ का काम नही कर रहा हूँ। इससे कही ज्यादा मुनासिव यह है कि आप मुझे लानत दें कि मैंने इतने दिनो तक आपके हको से आपको महरूम रखा।

चारो तरफ से आवाज आई—मरहवा ! मरहवा !!

'दोस्तो, उन हको के साथ-साथ मैं आपकी सल्तनत भी आपको वापस करता हूँ, क्योकि खुदा की निगाह मे सभी इन्सान वरावर हैं और किसी कौम या शख्स को दूसरी कौम पर हुकूमत करने का अख्तियार नही है। आज से आप अपने वादशाह हैं। मुझे उम्मीद है कि आप भी मुस्लिम आवादी को उसके जायज हको से महरूम न करेंगे। अगर कभी ऐसा मौका आए कि कोई जाविर कौम आपकी आजादी छीनने की कोशिश करे, तो तैमूर आपकी मदद करने को हमेशा तैयार रहेगा।'

10

किले मे जश्न खत्म हो चुका है। उमरा और हुक्काम रुखसत हो चुके हैं। दीवाने-खास मे सिर्फ तैमूर और हवीव रह गए हैं। हवीव के मुख पर आज स्मित हास्य की वह छटा है, जो सदैव गम्भीरता के नीचे दवी रहती थी। आज उसके कपोलो पर जो लाली, आँखो मे जो नशा, अगो में जो चचलता है, वह और कभी नजर न आई थी। वह कई वार तैमूर से शोखियाँ कर चुका है, कई वार हँसी कर चुका हैं, उसकी युवती चेतना, पद और अधिकार को भूलकर चहकती फिरती है।

सहसा तैमूर ने कहा—हवीव, मैंने आज तक तुम्हारी हरेक वात मानी है। अव मैं तुमसे यह तजवीज करता हूँ, जिसका मैंने जिक्र किया था, उसे तुम्हे कवूल करना पडेगा।

हवीव ने धडकते हुए हृदय से सिर झुकाकर कहा—फरमाइए।

'पहले वादा करो कि तुम कवूल करोगे ?'

'मैं तो आपका गुलाम हूँ !'

'नही, तुम मेरे मालिक हो, मेरी जिन्दगी की रोशनी हो, तुमसे मैंने जितना फैज पाया है, उसका अन्दाजा नही कर सकता। मैंने अव तक सल्तनत को अपनी जिन्दगी की सवसे प्यारी चीज समझा था। इसके लिए मैंने सव कुछ किया, जो मुझे न करना चाहिए था। अपनो के खून से भी इन हाथो को दाग-दार किया, गैरो के खून से भी। मेरा काम अव खत्म हो चुका। मैंने वुनियाद जमा दी, इस पर महल वनाना तुम्हारा काम है। मेरी यही इल्तजा है कि आज से तुम इस वादशाहत के अमीन हो जाओ, मेरी जिन्दगी मे भी और मेरे मरने

के वाद भी।'

हवीव ने आकाश मे उड़ते हुए कहा—इतना वडा वोझ ! मेरे कधे इतने मजवूत नही है।

तैमूर ने दीन आग्रह के स्वर मे कहा—नही, मेरे प्यारे दोस्त, मेरी यह इल्तजा तुम्हें माननी पडेगी।

हवीव की आँखो मे हँसी थी, अधरो पर सकोच। उसने आहिस्ता से कहा—मजूर है।

तैमूर ने प्रफुल्लित स्वर मे कहा—खुदा तुम्हे सलामत रखे।

'लेकिन अगर आपको मालूम हो जाए कि हवीव एक कच्ची अक्ल की क्वाँरी वालिका है तो ?'

'तो वह मेरी वादशाहत के साथ मेरे दिल की भी रानी हो जाएगी।'

'आपको विलकुल ताज्जुव नही हुआ है ?'

'मै जानता था।'

'कव से ?'

'जव तुमने पहली वार अपनी जालिम आँखो से मुझे देखा।'

'मगर आपने छिपाया खूव !'

'तुम्ही ने तो सिखाया। शायद मेरे सिवा यहाँ किसी को यह वात मालूम नही।'

'आपने कैसे पहचान लिया ?'

तैमूर ने मतवाली आँखो से देखकर कहा—यह न वताऊगा।

यही हवीव तैमूर की वेगम 'हमीदा' के नाम से मशहूर है।

धिक्कार

अनाथ और विधवा मानी के लिए जीवन मे अब रोने के सिवा दूसरा अव-लम्ब न था। वह पाँच ही वर्ष की थी, जब पिता का देहान्त हो गया। माता ने किसी तरह उसका पालन किया। सोलह वर्ष की अवस्था मे मुहल्ले वालो की मदद से उसका विवाह भी हो गया, पर साल के अन्दर ही माता और पति दोनो विदा हो गए। इस विपत्ति मे उसे अपने चचा वंशीधर के सिवा और कोई ऐसा नजर न आया, जो उसे आश्रय देता। वंशीधर ने अब तक जो व्यवहार किया था, उसमे यह आशा न हो सकती थी कि वहाँ वह शांति के साथ रह सकेगी, पर वह सब कुछ सहने और सब कुछ करने को तैयार थी। वह गाली, झिडकी, मारपीट सब सह लेगी, कोई उस पर संदेह तो न करेगा, उस पर मिथ्या लाछन तो न लगेगा, शोहदो और लुच्चो से तो उसकी रक्षा होगी। वंशीधर को कुल-मर्यादा की कुछ चिन्ता हुई। मानी की याचना को अस्वीकार न कर सके।

लेकिन दो-चार महीने मे ही मानी को मालूम हो गया कि इस घर मे बहुत दिनो तक उसका निवाह न होगा। वह घर का सारा काम करती, इशारो पर नाचती, सबको खुश रखने की कोशिश करती, पर न जाने क्यो चचा और चची दोनो उससे जलते रहते। उसके आते ही महरी अलग कर दी गई। नहलाने-धुलाने के लिए एक लौंडा था, उसे भी जवाब दे दिया गया, पर मानी से इतना उबार होने पर भी चचा और चची न जाने क्यो उससे मुँह फुलाए रहते। कभी चचा घुडकियाँ जमाते, कभी चची कोसती, यहा तक कि उसकी चचेरी बहन ललिता भी बात-बात पर उसे गालिया देती। घर-भर मे केवल उसके चचेरे भाई गोकुल ही को उससे सहानुभूति थी। उसी की बातो मे कुछ आत्मीयता, कुछ स्नेह का परिचय मिलता था। वह अपनी माता का स्वभाव जानता था। अगर वह उसे समझाने की चेष्टा करता, या खुल्लमखुल्ला मानी का पक्ष लेता तो मानी को एक घडी घर मे रहना कठिन हो जाता, इसलिए उसकी सहानुभूति मानी ही को दिलासा देने तक रह जाती थी। वह कहता—बहन, मुझे कही नौकर हो जाने दो, फिर तुम्हारे कष्टो का अन्त हो जाएगा। तब देखूँगा कौन

तुम्हें तिरछी आँखो से देखता है। जब तक पढता हूँ, तभी तक तुम्हारे बुरे दिन हैं। मानी ये स्नेह मे डूबी हुई बात सुनकर पुलकित हो जाती और उसका रोआं-रोआँ गोकुल को आशीर्वाद देने लगता।

2

आज ललिता का विवाह है। सवेरे से ही मेहमानो का आना शुरू हो गया है। गहनो की झनकार से घर गूँज रहा है। मानी भी मेहमानो को देख-देखकर खुश हो रही है। उसकी देह पर कोई आभूषण नही है और न उसे सुन्दर कपडे ही दिए गये हैं, फिर भी उसका मुख प्रसन्न है।

आधी रात हो गई थी। विवाह का मुहूर्त निकट आ गया था। जनवासे से पहनावे की चीजे आईं। सभी औरतें उत्सुक हो-होकर उन चीजो को देखने लगी। ललिता को आभूषण पहिनाए जाने लगे। मानी के हृदय मे बड़ी इच्छा हुई कि जाकर वधू को देखे। अभी कल जो बालिका थी, उसे आज वधू वेष मे देखने की इच्छा न रोक सकी। वह मुस्कराती हुई कमरे मे घुसी। सहसा उसकी चची ने झिडककर कहा—तुझे यहा किसने बुलाया था, निकल जा यहाँ से।

मानी ने बडी-बडी यातनाएं सही थी, पर आज की वह झिडकी उसके हृदय मे बाण की तरह चुभ गई। उसका मन उसे धिक्कारने लगा। 'तेरे छिछोरेपन का यही पुरस्कार है। यहाँ सुहागिनो के बीच मे तेरे आने की क्या जरूरत थी।' वह खिसियाई हुई कमरे से निकली और एकात मे बैठकर रोने के लिए ऊपर जाने लगी। सहसा जीने पर उसकी इन्द्रनाथ से मुठभेड हो गई। इन्द्रनाथ गोकुल का सहपाठी और परम मित्र था। वह भी न्योते मे आया हुआ था। इस वक्त गोकुल को खोजने के लिए ऊपर आया था। मानी को वह दो-एक बार देख चुका था और यह भी जानता था कि यहाँ उसके साथ बडा दुर्व्यवहार किया जाता है। चची की बातो की भनक उसके कान मे भी पड गई थी। मानी को ऊपर जाते देखकर वह उसके चित्त का भाव समझ गया और उसे सात्वना देने के लिए ऊपर आया, मगर दरवाजा भीतर से बन्द था। उसने किवाड की दरार से भीतर झाँका। मानी मेज के पास खडी रो रही थी।

उसने धीरे से कहा—मानी, द्वार खोल दो।

मानी उसकी आवाज सुनकर कोने मे छिप गई और गम्भीर स्वर से बोली—क्या काम है?

इन्द्रनाथ ने गद्गद स्वर मे कहा—तुम्हारे पैरो पडता हूँ मानी, खोल दो।

यह स्नेह मे डूबा हुआ विनय मानी के लिए अभूतपूर्व था। इस निर्दय संसार मे कोई उससे ऐसे विनती भी कर सकता है, इसकी उसने स्वप्न मे भी कल्पना न की थी। मानी ने कांपते हुए हाथो से द्वार खोल दिया। इन्द्रनाथ

झपटकर कमरे मे घुसा, देखा कि छत से पंखे के कड़े से एक रस्सी लटक रही है। उसका हृदय काँप उठा। उसने तुरन्त जेब से चाकू निकालकर रस्सी काट दी और बोला। क्या करने जा रही थी मानी? जानती हो, इस अपराध का क्या दण्ड है?

मानी ने गर्दन झुकाकर कहा—इस दंड से कोई और दंड कठोर हो सकता है? जिसकी सूरत से लोगो को घृणा है, उसे मरने पर भी अगर कठोर दंड दिया जाए, तो मै यही कहूँगी कि ईश्वर के दरबार मे न्याय का नाम भी नहीं है।

इन्द्रनाथ की आँखें सजल हो गई। मानी की बातो मे कितना कठोर सत्य भरा हुआ था। बोला—सदा ये दिन नही रहेगे मानी। अगर तुम यह समझ रही हो कि ससार मे तुम्हारा कोई नही है, तो यह तुम्हारा भ्रम है। ससार मे कम-से-कम एक मनुष्य ऐसा है, जिसे तुम्हारे प्राण अपने प्राणो से भी प्यारे है।

सहसा गोकुल आता हुआ दिखाई दिया। मानी कमरे से निकल गई। इन्द्रनाथ के शब्दो ने उसके मन मे एक तूफान-सा उठा दिया। उसका क्या आशय है, यह उसकी समझ मे न आया। फिर भी आज उसे अपना जीवन सार्थक मालूम हो रहा था। उसके अन्धकारमय जीवन मे एक प्रकाश का उदय हो गया था।

3

इन्द्रनाथ को वहाँ बैठे और मानी को कमरे से जाते देखकर गोकुल कुछ खटक गया। उसकी त्योरियाँ बदल गई। कठोर स्वर मे बोला—तुम यहाँ कब आए?

इन्द्रनाथ ने अविचलित भाव से कहा—तुम्हीको खोजता हुआ यहाँ आया था। तुम यहाँ न मिले तो नीचे लौटा जा रहा था, अगर चला गया होता तो इस वक्त तुम्हे यह कमरा बन्द मिलता और पंखे के कडे मे एक लाश लटकती हुई नजर आती।

गोकुल ने समझा, यह अपने अपराध को छिपाने के लिए कोई बहाना निकाल रहा है। तीव्र कंठ से बोला—तुम यह विश्वासघात करोगे, मुझे ऐसी आशा न थी।

इंद्रनाथ का चेहरा लाल हो गया। वह आवेश मे आकर खडा हो गया और बोला—न मुझे यह आशा थी कि तुम मुझ पर इतना बडा लाँछन रख दोगे। मुझे न मालूम था कि तुम मुझे इतना नीच और कुटिल समझते हो। मानी तुम्हारे लिए तिरस्कार की वस्तु हो, मेरे लिए वह श्रद्धा की वस्तु है और रहेगी। मुझे तुम्हारे सामने अपनी सफाई देने की जरूरत नही है, लेकिन मानी

मेरे लिए उससे कही पवित्र है, जितनी तुम समझते हो। मै नही चाहता था कि इस वक्त तुमसे ये बातें कहूँ। इसके लिए और अनुकूल परिस्थितियो की राह देख रहा था, लेकिन मुआमला आ पडने पर कहना ही पड रहा है। मै यह तो जानता था कि मानी का तुम्हारे घर मे कोई आदर नही, लेकिन तुम लोग उसे इतना नीच और त्याज्य समझते हो, यह आज तुम्हारी माताजी की बातें सुनकर मालूम हुआ। केवल इतनी-सी बात के लिए कि वह चढावे के गहने देखने चली गई थी, तुम्हारी माता ने उसे इस बुरी तरह झिड़का, जैसे कोई कुत्ते को भी न झिडकेगा। तुम कहोगे, इसेमे क्या करूँ, मैं कर ही क्या सकता हूँ। जिस घर मे एक अनाथ स्त्री पर इतना अत्याचार हो, उस घर का पानी पीना भी हराम है। अगर तुमने अपनी माता को पहले ही दिन समझा दिया होता, तो आज यह नौबत न आती। तुम इस इल्जाम से नही बच सकते। तुम्हारे घर मे आज उत्सव है, मैं तुम्हारे माता-पिता से कुछ बातचीत नही कर सकता, लेकिन तुमसे कहने मे सकोच नही है कि मानी को अपनी जीवन-सहचरी बनाकर अपने को धन्य समझूंगा। मैंने समझा था, अपना कोई ठिकाना करके तब यह प्रस्ताव करूँगा, पर मुझे भय है कि और विलम्ब करने मे शायद मानी से हाथ धोना पडे, इसलिए तुम्हे और तुम्हारे घरवालो को चिन्ता से मुक्त करने के लिए मैं आज ही यह प्रस्ताव किए देता हूँ।

गोकुल के हृदय मे इंद्रनाथ के प्रति ऐसी श्रद्धा कभी न हुई थी। उस पर ऐसा सन्देह करके वह बहुत ही लज्जित हुआ। उसने यह अनुभव भी किया कि माता के भय से मैं मानी के विषय मे तटस्थ रहकर कायरता का दोषी हुआ हूँ। यह केवल कायरता थी और कुछ नही। कुछ झेंपता हुआ बोला—अगर अम्माँ ने मानी को इस बात पर झिडका तो यह उनकी मूर्खता है। मैं उनसे अवसर मिलते ही पूछूँगा।

इंद्रनाथ—अब पूछने-पाछने का समय निकल गया। मैं चाहता हूँ कि तुम मानी से इस विषय मे सलाह करके मुझे बतला दो। मैं नही चाहता कि अब वह यहाँ क्षण-भर भी रहे। मुझे आज मालूम हुआ कि वह गर्विणी प्रकृति की स्त्री है और सच पूछो तो मैं उसके स्वभाव पर मुग्ध हो गया हूँ। ऐसी स्त्री अत्याचार नही सह सकती।

गोकुल ने डरते-डरते कहा—लेकिन तुम्हे मालूम है, वह विधवा है।

जब हम किसी के हाथो अपना असाधारण हित होते देखते है, तो हम अपनी सारी बुराइयाँ उसके सामने खोलकर रख देते है। हम उसे दिखाना चाहते हैं कि हम आपकी इस कृपा के सर्वथा योग्य नही हैं।

इंद्रनाथ ने मुस्कराकर कहा—जानता हूँ, सुन चुका हूँ और इसलिए तुम्हारे बाबूजी से कुछ कहने का मुझे अब तक साहस नही हुआ! लेकिन न [illegible] तो

भी इसका मेरे निश्चय पर कोई असर न पड़ता। मानी विधवा ही नही, अछूत हो, उससे गयी-बीती अगर कुछ हो सकती है, वह भी हो, फिर भी मेरे लिए वह रमणी-रत्न है। हम छोटे-छोटे कामो के लिए तजुर्बेकार आदमी खोजते हैं; जिसके साथ हमे जीवन-यात्रा करनी है, उसमे तजुर्बे का होना ऐब समझते हैं। मैं न्याय का गला घोटनेवालो मे नही। विपत्ति से बढकर तजुर्बा सिखानेवाला कोई विद्यालय आज तक नही खुला। जिसने इन विद्यालय मे डिग्री ले ली, उसके हाथो मे हम निश्चित होकर जीवन की बागडोर दे सकते हैं। किसी रमणी का विधवा होना मेरी आँखो मे दोष नही, गुण है।

गोकुल ने प्रसन्न होकर कहा—मैं अपने घरवालो को इतना मूर्ख नही समझता कि इस विषय मे आपत्ति करें, लेकिन वे आपत्ति करें भी तो मैं अपनी किस्मत अपने हाथ मे ही रखना पसन्द करता हूँ। मेरे बडो को मुझ पर अनेको अधिकार हैं। बहुत-सी बातो मे मैं उनकी इच्छा को कानून समझता हूँ, लेकिन जिस बात को मैं अपनी आत्मा के विकास के लिए शुभ समझता हूँ, मैं उसमेकिसी से दबना नही चाहता। मैं इस गर्व का आनन्द उठाना चाहता हूँ कि मैं स्वय अपने जीवन का निर्माता हूँ।

गोकुल ने कुछ शंकित होकर कहा—और अगर मानी न मंजूर करे!

इंद्रनाथ को यह शंका बिलकुल निर्मूल जान पडी। बोले—तुम इस समय बच्चो की सी बात कर रहे हो गोकुल। यह मानी हुई बात है कि मानी आसानी से मंजूर न करेगी। वह इस घर मे ठोकरें, झिडकियाँ सहेगी, गालियाँ सुनेगी, पर इसी घर मे रहेगी। युगो के सस्कारो को मिटा देना आसान नही, लेकिन हमे उसको राज़ी करना पड़ेगा। उसके मन से सचित सस्कारो को निकालना पडेगा। मैं विधवाओ के पुनर्विवाह के पक्ष मे नही हूँ। मेरा ख्याल है कि पातिव्रत का यह अलौकिक आदर्श ससार का अमूल्य रत्न है और हमे बहुत सोच-समझकर उस पर आघात करना चाहिए, लेकिन मानी के विषय मे यह बात नही उठती। प्रेम और शक्ति नाम से नही, व्यक्ति से होती है। जिस पुरुप की उसने सूरत भी नही देखी, उससे उसे प्रेम नही हो सकता। केवल रस्म की बात है। इस आडम्बर की, इस दिखावे की, हमे परवाह न करनी चाहिए। देखो, शायद कोई तुम्हे बुला रहा है। मैं भी जा रहा हूँ। दो-तीन दिन मे फिर मिलूगा, मगर ऐसा न हो कि तुम सकोच मे पड़कर सोचते-विचारते रह जाओ और दिन निकलते चले जाएँ।

गोकुल ने उसके गले मे हाथ डालकर कहा—मैं परसो खुद आऊँगा।

4

बरात विदा हो गई थी। मेहमान भी रुखसत हो गए। रात के नौ बज गए

थे। विवाह के बाद की नींद मशहूर है। घर के सभी लोग सरेशाम से सो रहे थे। कोई चारपाई पर, कोई तख्त पर, कोई जमीन पर, जिसे जहाँ जगह मिल गई, वहीं सो रहा था। केवल मानी घर की देख-भाल कर रही थी और ऊपर गोकुल अपने कमरे मे बैठा हुआ समाचार पढ रहा था।

सहसा गोकुल ने पुकारा—मानी, एक ग्लास ठडा पानी तो लाना, बड़ी प्यास लगी है।

मानी पानी लेकर ऊपर गई और मेज पर पानी रखकर लौटा ही चाहती थी कि गोकुल ने कहा—जरा ठहरो मानी, तुमसे कुछ कहना है।

मानी ने कहा—अभी फुरसत नहीं है भाई, सारा घर सो रहा है। कहीं कोई घुस आये तो लोटा-थाली भी न बचे।

गोकुल ने कहा—घुस आने दो, मैं तो तुम्हारी जगह होता, तो चोरों से मिलकर चोरी करवा देता। मुझे इसी वक्त इद्रनाथ से मिलना है। मैंने उनसे आज मिलने का वचन दिया है—देखो सकोच मत करना, जो बात पूछ रहा हूँ, उसका जल्द उत्तर देना। देर होगी तो वह घबराएगा। इद्रनाथ को तुमसे प्रेम है, यह तुम जानती हो न?

मानी ने मुह फेरकर कहा—यही बात कहने के लिए मुझे बुलाया था? मैं कुछ नही जानती।

गोकुल—खैर, यह वह जाने और तुम जानो। वह तुमसे विवाह करना चाहता है। वैदिक रीति से विवाह होगा। तुम्हे स्वीकार है?

मानी की गर्दन शर्म से झुक गई। वह कुछ जवाब न दे सकी।

गोकुल ने फिर कहा—दादा और अम्मा से यह बात नहीं कही गई, उसका कारण तुम जानती ही हो। वह तुम्हे घुडकियाँ दे-देकर, जला-जलाकर चाहे मार डालें, पर विवाह करने की सम्मति न देंगे। इसमे उनकी नाक कट जाएगी, इसलिए अब इसका निर्णय तुम्हारे ही ऊपर है। मैं तो समझता हूँ, तुम्हे स्वीकार कर लेना चाहिए। इद्रनाथ तुमसे प्रेम तो करता है ही, यों भी निष्कलक चरित्र का आदमी और बला का दिलेर है। भय तो उसे छू ही नहीं गया। तुम्हे सुखी देखकर मुझे सच्चा आनन्द होगा।

मानी के हृदय मे एक वेग उठ रहा था, मगर मुँह से आवाज न निकली।

गोकुल ने अबकी खीझकर कहा—देखो मानी, यह चुप रहने का समय नहीं है। सोचती क्या हो?

मानी ने कांपते हुए स्वर मे कहा—हाँ।

गोकुल के हृदय का बोझ हलका हो गया। मुस्कराने लगा। मानी शर्म के मारे वहाँ से भाग गयी।

5

शाम को गोकुल ने अपनी माँ से कहा—अम्माँ, इंद्रनाथ के घर कोई उत्सव है। उसकी माता अकेली घबडा रही थी कि कैसे सब काम होगा! मैंने कहा, मैं मानी को भेज दूगा। तुम्हारी आज्ञा हो, तो मानी को पहुचा दू। कल परसो तक चली आएगी।

मानी उसी वक्त वहा आ गई, गोकुल ने उसकी ओर कनखियो से ताका। मानी लज्जा से गड गई। भागने का रास्ता न मिला।

माँ ने कहा—मुझसे क्या पूछते हो, वह जाय, ले जाओ!

गोकुल ने मानी से कहा—कपडे पहनकर तैयार हो जाओ, तुम्हे इन्द्रनाथ के घर चलना है।

मानी ने आपत्ति की—मेरा जी अच्छा नही है, मै न जाऊँगी।

गोकुल की माँ ने कहा—चली क्यो नही जाती, क्या वहाँ कोई पहाड खोदना है?

मानी एक सफेद साडी पहनकर तागे पर बैठी, तो उसका हृदय काँप रहा था और बार-बार आँखो मे आँसू भर आते थे। उसका हृदय बैठा जाता था, मानो नदी मे डूबने जा रही हो।

ताँगा कुछ दूर निकल गया तो उसने गोकुल से कहा—भैया, मेरा जी न जाने कैसे हो रहा है। घर लौट चलो, तुम्हारे पैर पडती हूँ।

गोकुल ने कहा—तू पागल है। वहाँ सब लोग तेरी राह देख रहे है और तू कहती है लौट चलो।

मानी—मेरा मन कहता है, कोई अनिष्ट होनेवाला है।

गोकुल—और मेरा मन कहता है तू रानी बनने जा रही है।

मानी—दस-पाँच दिन ठहर क्यो नही जाते? कह देना, मानी बीमार है।

गोकुल—पागलो की-सी बातें न करो।

मानी—लोग कितना हँसेगे!

गोकुल—मै शुभ कार्य मे किसी की हँसी की परवाह नही करता।

मानी—अम्माँ तुम्हे घर मे घुसने न देगी। मेरे कारण तुम्हे भी झिडकियाँ मिलेंगी।

गोकुल—इसकी कोई परवा नही है। उनकी तो यह आदत ही है।

ताँगा पहुच गया। इद्रनाथ की माता विचारशील महिला थी। उन्होंने आकर वधू को उतारा और भीतर ले गयी।

6

गोकुल यहाँ से घर चला तो ग्यारह बज रहे थे। एक ओर तो शुभ कार्य

के पूरा करने का आनन्द था, दूसरी ओर भय था कि कल मानी न जाएगी तो लोगो को क्या जवाब दूँगा। उसने निश्चय किया, चलकर सब साफ-साफ कह दूं। छिपाना व्यर्थ है। आज नही कल, कल नही परसो तो सब-कुछ कहना ही पड़ेगा। आज ही क्यो न कह दू ?

यह निश्चय करके वह घर मे दाखिल हुआ।

माता ने किवाड खोलते हुए कहा—इतनी रात तक क्या करते रहे ? उसे भी क्यो न लेते आये ? कल सवेरे चौका-बरतन कौन करेगा ?

गोकुल ने सिर झुकाकर कहा—वह तो अब शायद लौटकर न आये अम्मा, उसके वही रहने का प्रबन्ध हो गया है।

माता ने आखें फाडकर कहा—क्या बकता है, भला वह वहाँ कैसे रहेगी ?

गोकुल—इद्रनाथ से उसका विवाह हो गया है।

माता मानो आकाश से गिर पडी। उन्हे कुछ सुध न रही कि मेरे मुँह मे क्या निकल रहा है, कुलागार, भडवा, हरामजादा, और न जाने क्या-क्या कहा। यहाँ तक कि गोकुल का धैर्य चरम सीमा का उल्लघन कर गया। उसका मुँह लाल हो गया, त्योरियाँ चढ गईं। बोला—अम्माँ, बस करो। अब मुझमे इससे ज्यादा सुनने की सामर्थ्य नही है। अगर मैंने कोई अनुचित कर्म किया होता तो आपकी जूतियाँ खाकर भी सिर न उठाता, मगर मैंने कोई अनुचित कर्म नही किया। मैंने वही किया जो ऐसी दशा मे मेरा कर्त्तव्य था और जो हर एक भले आदमी को करना चाहिए। तुम मूर्खा हो, तुम्हे नही मालूम कि समय की क्या प्रगति है। इसीलिए अब तक मैंने धैर्य के साथ तुम्हारी गालियाँ सुनी। तुमने, और मुझे दु ख के साथ कहना पडता है कि पिताजी ने भी, मानी के जीवन को नारकीय बना रखा था। तुमने उसे ऐसी-ऐसी ताडनाएँ दी, जो कोई अपने शत्रु को भी न देगा। इसीलिए न कि वह तुम्हारी आश्रित थी ? इसीलिए न कि वह तुम्हारी अनाथिनी थी ? अब वह तुम्हारी गालियाँ न खाने आएगी। जिस दिन तुम्हारे घर विवाह का उत्सव हो रहा था, तुम्हारे ही एक कठोर वाक्य से आहत होकर वह आत्महत्या करने जा रही थी। इंद्रनाथ उस समय उधर न पहुँच जाते तो आज हम, तुम सारा घर हवालात मे बैठा होता।

माता ने आँखें मटकाकर कहा—आहा ! कितने सपूत बेटे हो तुम कि सारे घर को संकट से बचा लिया। क्यो न हो ? अभी बहन की बारी है। कुछ दिन मे मुझे ले जाकर किसी के गले बाँध आना। फिर तुम्हारी चाँदी हो जाएगी। यह रोजगार सबसे अच्छा है। पढ-लिखकर क्या करोगे।

गोकुल मर्म-वेदना से तिलमिला उठा। व्यथित कंठ से बोला—ईश्वर न करे कि कोई बालक तुम-जैसी माता के गर्भ से जन्म ले। तुम्हारा मुँह देखना भी पाप है।

यह कहता हुआ वह घर से निकल पड़ा और उन्मत्तो की तरह एक तरफ चल खडा हुआ । जोर के झोके चल रहे थे, पर उसे ऐसा मालूम हो रहा था कि सांस लेने के लिए हवा नही है ।

7

एक सप्ताह वीत गया, पर गोकुल का कही पता नही । इद्रनाथ को बम्बई मे एक जगह मिल गई थी । वह वहाँ चला गया था । वहाँ रहने का प्रवन्ध करके वह अपनी माता को तार देगा और तव सास और वहू वहाँ चली जाएँगी ! वशीधर को पहले सदेह हुआ कि गोकुल इद्रनाथ के घर छिपा होगा, पर जव वहाँ पता न चला तो उन्होने सारे शहर मे खोज-पूछ शुरू की । जितने मिलने वाले, मित्र, स्नेही, सम्बन्धी थे, सभी के घर गये, पर सव जगह से साफ जवाब पाया । दिन-भर दौड-धूप कर शाम को घर आते, तो स्त्री को आडे हाथो लेते— और कोसो लडके को, पानी पी-कर कोसो । न जाने तुम्हे कभी बुद्धि आएगी भी या नही । गयी थी चुडैल, जाने देती । एक वोझ सिर से टला । एक महरी रख लो, काम चल जाएगा । जव वह न थी, तो घर क्या भूखो मरता था ? विधवाओ के पुनर्विवह चारो ओर तो हो रहे हैं, यह कोई अनहोनी वात नही है । हमारे वस की वात होती, तो इन विधवा-विवाह पक्षपातियो को देश से निकाल देते, शाप देकर जला देते, लेकिन यह हमारे वस की वात नही । फिर तुमसे इतना भी न हो सका कि मुझसे तो पूछ लेती । मैं जो उचित समझता, करता । क्या तुमने समझा था दफ्तर से लौटकर आऊँगा ही नही, वही अत्येष्टि हो जाएगी । वस लडके पर टूट पडी । अव रोओ, खूव दिल खोलकर ।

सध्या हो गई थी । वशीधर स्त्री को फटकारे सुनाकर द्वार पर उद्वेग की दशा मे टहल रहे थे । रह-रहकर मानी पर क्रोध आता था । इसी राक्षसी के कारण मेरे घर का सर्वनाश हुआ । न जाने किस वुरी साइत मे आयी कि घर को मिटाकर छोडा ! वह न आयी होती, तो आज क्यो यह वुरे दिन देखने पडते ! कितना होनहार, कितना प्रतिभाशाली लडका था । न जाने कहाँ गया ?

एकाएक एक वुढिया उनके समीप आयी और वोली—वावू साहव, यह खत लायी हूँ, ले लीजिए ।

वशीधर ने लपककर वुढिया के हाथ से पत्र ले लिया, उनकी छाती आशा से धक्-धक् करने लगी । गोकुल ने शायद यह पत्र लिखा होगा । अँधेरे मे कुछ न सूझा । पूछा—कहाँ से लायी है ?

वुढ़िया ने कहा—वह जो वावू हुसेनगज मे रहते है, जो वम्वई में नौकर हैं, उन्ही की वहू ने भेजा है ।

वंशीधर ने कमरे मे जाकर लैम्प जलाया और पत्र पढने लगे । मानी का

खत था। लिखा था—

'पूज्य चाचाजी, अभागिनी मानी का प्रणाम स्वीकार कीजिए।

मुझे यह सुनकर अत्यन्त दु.ख हुआ कि गोकुल भैया कहीं चले गए और अब तक उनका पता नही है। मैं ही इसका कारण हूँ। कलक मेरे ही मुख पर लगना था, वह भी लग गया। मेरे कारण आपको इतना शोक हुआ, उसका मुझे बहुत दु.ख है, मगर भैया आएँगे अवश्य, इसका मुझे विश्वास है। मैं भी नौ बजेवाली गाडी से बम्बई जा रही हूँ। मुझसे जो कुछ अपराध हुआ है, उसे क्षमा कीजिएगा और चाची से मेरा प्रणाम कहिएगा। मेरी ईश्वर से यही प्रार्थना है कि शीघ्र ही गोकुल भैया सकुशल घर लौट आयें। ईश्वर की इच्छा हुई तो भैया के विवाह मे आपके चरणो के दर्शन करूँगी।

वशीधर ने पत्र को फाडकर पुर्जे-पुर्जे कर डाला। घडी मे देखा तो आठ बज रहे थे। तुरन्त कपडे पहने, सडक पर आकर एक्का किया और स्टेशन चले।

8

बम्बई मेल प्लेटफार्म पर खडा था। मुसाफिरो मे भगदड मची हुई थी। खोमचेवालो की चीख-पुकार से कान मे पडी आवाज न सुनाई देती थी। गाडी छूटने मे थोडी ही देर थी। मानी और उसकी सास एक जनाने कमरे मे बैठी हुई थी। मानी सजल नेत्रो से सामने ताक रही थी। अतीत चाहे। दु.खद ही क्यो न हो, उसकी स्मृतियाँ मधुर होती है। मानी आज उन बुरे दिनो को स्मरण करके सुखी हो रही थी। गोकुल से अब न जाने कब भेट होगी। चाचाजी आ जाते तो उनके दर्शन कर लेती। कभी-कभी बिगडते थे तो क्या, उनके भले ही के लिए डाँटते थे। वह आवेंगे नही। अब तो गाडी छूटने मे थोडी ही देर है। कैसे आएं, समाज मे हलचल न मच जाएगी। भगवान की इच्छा होगी, तो जरूर उनके दर्शन करूँगी।

एकाएक उसने लाला वशीधर को आते देखा। वह गाडी से निकलकर बाहर खडी हो गई और चाचाजी की ओर बढी। उनके चरणो पर गिरना चाहती थी कि वह पीछे हट गए और आँखे निकालकर बोले—मुझे मत छू, दूर रह, अभागिनी कही की। मुँह मे कालिख लगाकर मुझे पत्र लिखती है। तुझे शर्म नही आती। तूने मेरे कुल का सर्वनाश कर दिया। आज तक गोकुल का पता नही है। तेरे कारण वह घर से निकला और तू अभी तक मेरी छाती पर मूग दलने को बैठी है। तेरे लिए क्या गगा मे पानी नही है? मैं तुझे ऐसी कुलटा, ऐसी हरजाई समझता, तो पहले दिन तेरा गला घोट देता। अब मुझे अपनी भक्ति दिखलाने चली है! तेरे जैसी पापिष्ठाओ का मरना ही अच्छा है, पृथ्वी का बोझ कम हो जाएगा।

प्लेटफार्म पर सैकडो आदमियो की भीड लग गई थी और वंशीधर निर्लज्ज भाव से गालियो की बौछार कर रहे थे। किसी की समझ में न आता था, क्या माजरा है, पर मन मे सब लाला को धिक्कार रहे थे।

मानी पाषाण-मूर्ति के समान खडी थी, मानो वही जम गई हो। उसका सारा अभिमान चूर-चूर हो गया। ऐसा जी चाहता था, धरती फट जाए और मैं समा जाऊँ, कोई वज्र गिरकर उसके जीवन—अधम जीवन—का अन्त कर दे। इतने आदमियो के सामने उसका पानी उतर गया! उसकी आँखों से आँसू की बूद भी न निकली। हृदय मे आँसू न थे। उसकी जगह एक दावानल-सा दहक रहा था, जो मानो वेग से मस्तिष्क की ओर बढता चला जाता था। ससार में कौन जीवन इतना अधम होगा।

सास ने पुकारा—बहू, अन्दर आ जाओ।

9

गाडी चली तो माता ने कहा—ऐसा बेशर्म आदमी नही देखा। मुझे तो ऐसा क्रोध आ रहा था कि उसका मुँह नोच लू।

मानी ने सिर ऊपर न उठाया।

माता फिर बोली—न जाने इन मडियलो को बुद्धि कब आएगी, अब तो मरने के दिन भी आ गए। पूछो, तेरा लडका भाग गया तो हम क्या करे, अगर ऐसे पापी न होते तो यह वज्र ही क्यो गिरता!

मानी ने फिर भी मुँह न खोला। शायद उसे कुछ सुनाई ही न देता था। शायद उसे अपने अस्तित्व का ज्ञान भी न था। वह टकटकी लगाए खिडकी की ओर ताक रही थी। उस अधकार मे जाने क्या सूझ रहा था।

कानपुर आया। माता ने पूछा—बेटी, कुछ खाओगी। थोडी-सी मिठाई खा लो, दस कब के बज गए।

मानी ने कहा—अभी तो भूख नही है अम्माँ, फिर खा लूगी।

माताजी सोईं। मानी भी लेटी, पर चचा की वह सूरत आखो के सामने खडी थी और उनकी बातें कानो मे गूज रही थी—आह मै इतनी नीच हूँ, ऐसी पतित, कि मेरे मर जाने से पृथ्वी का भार हलका हो जाएगा? क्या कहा था, तू अपने माँ-बाप की बेटी है तो फिर मुँह मत दिखाना! न दिखाऊँगी, जिस मुँह पर ऐसी कालिमा लगी हुई है, उसे किसी को दिखाने की इच्छा भी नही है।

गाडी अंधकार को चीरती चली जा रही थी। मानी ने अपना ट्रंक खोला और अपने आभूषण निकालकर उसमे रख दिए। फिर इन्द्रनाथ का चित्र निकाल-

कर उसे देर तक देखती रही। उसकी आँखो से गर्व की एक झलक-सी दिखाई दी। उसने तसवीर रख दी और आप-ही-आप बोली—नही-नही, मै तुम्हारे जीवन को कलकित नही कर सकती। तुम देवतुल्य हो, तुमने मुझ पर दया की है। मै अपने पूर्व-सस्कारो का प्रायश्चित्त कर रही थी। तुमने मुझे उठा कर हृदय से लगा लिया, लेकिन मै तुम्हे कलकित न करूँगी। तुम्हे मुझसे प्रेम है। तुम मेरे लिए अनादर, अपमान निन्दा सब सह लोगे, पर मै तुम्हारे जीवन का भार न बनूगी।

गाडी अन्धकार को चीरती चली जा रही थी। मानो प्रकाश की ओर इतनी देर तक देखती रही कि सारे तारे अदृश्य हो गए। और उस अन्धकार मे उसे अपनी माता का स्वरूप दिखाई दिया—ऐसा उज्जल, ऐसा प्रत्यक्ष कि उसने चौककर आँखें बन्द कर ली। फिर कमरे के अन्दर देखा तो माताजी सो रही थी।

10

न जाने कितनी रात गुजर चुकी थी। दरवाजा खुलने की आहट से माता जी की आँखे खुल गई। गाडी तेज चली जा रही थी, मगर बहू का पता न था। वह आँखें मलकर उठ बैठी और पुकारा—बहू! बहू!! कोई जवाब न मिला।

उसका हृदय धक्-धक् करने लगा। ऊपर के बर्थ पर नजर डाली, पेशाब-खाने मे देखा, बेंचो के नीचे देखा, बहू कही न थी। तब वह द्वार पर आकर खडी हो गई। बहू का क्या हुआ, यह द्वार किसने खोला? कोई गाडी मे तो नही आया! उसका जी घबडाने लगा। उसने किवाड बन्द कर दिया और जोर-जोर से रोने लगी। किससे पूछे? डाकगाडी अब न जाने कितनी देर मे रुकेगी। कहती थी, बहू मरदानी गाडी मे बैठे। मेरा कहना न माना। कहने लगी, अम्माँजी आपको सोने की तकलीफ होगी। यही आराम दे गई।

सहसा उसे खतरे की जजीर याद आई। उसने जोर-जोर से कई बार जजीर खीची। कई मिनट के बाद गाडी रुकी। गार्ड आया। पडोस के कमरे से दो-चार आदमी और भी आये। फिर लोगो ने सारा कमरा तलाश किया। नीचे तख्ते को ध्यान से देखा। रक्त का कोई चिह्न न था। असबाब की जाच की बिस्तर, सदूक, सदूकची, बरतन सब मौजूद थे। ताले भी सबके बन्द थे। कोई चीज गायब न थी। अगर बाहर से कोई आदमी आता, तो चलती गाडी से जाता कहाँ? एक स्त्री को लेकर गाडी से कूद जाना असम्भव था। सब लोग इन लक्षणो से इसी नतीजे पर पहुचे कि मानो द्वार खोलकर बाहर झाँकने लगी होगी और मुठिया हाथ से छूट जाने के कारण गिर पडी होगी। गार्ड भला

आदमी था। उसने नीचे उतरकर एक मील तक सड़क के दोनो तरफ तलाश किया। मानी का कोई निशान न मिला। रात को इससे ज्यादा और क्या किया जा सकता था ? माताजी को कुछ लोग आग्रहपूर्वक एक मरदाने डिब्बे मे ले गए। यह निश्चय हुआ कि माताजी अगले स्टेशनपर उतर पड़ें और सवेरे इधर-उधर दूर तक देख-भाल की जाए।

विपत्ति मे हम परमुखापेक्षी हो जाते है। माताजी कभी इसका मुँह देखती, कभी उसका। उनकी याचना से भरी हुई आँखें मानो सबसे कह रही थी—कोई मेरी बच्ची को खोज क्यो नही लाता ? हाय ! अभी तो बेचारी की चुँदरी भी नही मैली हुई ! कैसे-कैसे साधो और अरमानो से भरी पति के पास जा रही थी ! कोई उस दुष्ट वशीधर से जाकर कहता क्यो नही—ले तेरी मनोभिलाषा पूरी हो गई—जो तू चाहता था, वह पूरा हो गया। क्या अब भी तेरी छाती नही जुडाती ?

वृद्धा बैठी रो रही थी और गाडी अंधकार को चीरती चली जाती थी।

11

रविवार का दिन था। सध्या समय इद्रनाथ दो-तीन मित्रो के साथ अपने घर की छत पर बैठा हुआ था। आपस मे हास-परिहास हो रहा था। मानी का आगमन इस परिहास का विषय था।

एक मित्र बोले—क्यो इद्र, तुमने जो वैवाहिक जीवन का कुछ अनुभव किया है, हमे क्या सलाह देते हो ? बनाएँ कही घोसला, या यो ही डालियो पर बैठे-बैठे दिन काटें ? पत्र-पत्रिकाओ को देखकर तो यही मालूम होता है कि वैवा-जीवन और नरक मे कुछ थोड़ा ही-सा अन्तर है।

इंद्रनाथ ने मुस्कराकर कहा—यह तो तकदीर का खेल है, भाई, सोलहों आना तकदीर का। अगर एक दशा मे वैवाहिक जीवन नरकतुल्य है, तो दूसरी दशा मे स्वर्ग से कम नही।

दूसरे मित्र बोले—इतनी आजादी तो भला क्या रहेगी ?

इद्रनाथ—इतनी क्या, इसका शताश भी न रहेगी। अगर तुम रोज सिनेमा देखकर बारह बजे घर लौटना चाहते हो, नौ बजे सोकर उठना चाहते हो और दफ्तर से चार बजे लौटकर ताश खेलना चाहते हो, तो तुम्हे विवाह करने से कोई सुख न होगा। और जो हर महीने सूट बनाते हो, तब शायद साल भर भी न बनवा सको।

'श्रीमतीजी तो आज रात की गाडी से आ रही है !'

'हा, मेल से। मेरे साथ चलकर उन्हे रिसीव करोगे न !'

'यह भी पूछने की बात है। अब घर कौन जाता है, मगर कल दावत खलानी पडेगी।'

महसा तार के चपरासी ने आकर इद्रनाथ के हाथ मे तार का लिफाफा रख दिया।

इद्रनाथ का चेहरा खिल उठा। झट तार खोलकर पढने लगा। एक बार पढते ही उसका हृदय धक् हो गया, साँस रुक गई, सिर घूमने लगा। आँखो की रोशनी लुप्त हो गई, जैसे विश्व पर काला पर्दा पड गया हो। उसने तार को मित्र के सामने फेंक दिया और दोनो हाथो मे मुँह ढाँपकर फूट-फूट कर रोने लगा। दोनो मित्रो ने घवडाकर तार उठा लिया और उसे पढते ही हतबुद्धि से हो दीवार की ओर ताकने लगे। क्या सोच रहे थे और क्या हो गया!

तार मे लिखा था—मानी गाडी मे कूद पडी। उसकी लाश लालपुर से तीन मील पर पाई गई। मै लालपुर मे हूँ, तुरत आओ।

एक मित्र ने कहा—किसी शत्रु ने झूठी खवर न भेज दी हो।

दूसरे मित्र वोले—हाँ, कभी-कभी लोग ऐसी शरारतें करते हैं।

इद्रनाथ ने शून्य नेत्रो से उनकी ओर देखा, पर मुंह से कुछ वोले नही।

कई मिनट तीनो आदमी निर्वाक् निस्पद वैठे रहे। एकाएक इद्रनाथ खडे हो गए और वोले—मै इस गाडी से जाऊँगा।

वम्वई से नौ वजे रात को गाडी छूटती थी। दोनो ने चटपट विस्तर आदि वाँधकर तैयार कर दिया। एक ने विस्तर उठाया, दूसरे ने ट्रक। इद्रनाथ ने चटपट कपडे पहने और स्टेशन चले। निराशा आगे थी, आशा रोती हुई पीछे।

12

एक सप्ताह गुजर गया था। लाला वशीधर दफ्तर मे आकर द्वार पर वैठे ही थे कि इद्रनाथ ने आकर प्रणाम किया। वशीधर उसे देखकर चौक पडे, उसके अनपेक्षित आगमन पर नही, उसकी विकृत दशा पर, मानो वीतराग शोक सामने खडा हो, मानो कोई हृदय से निकली हुई आह मूर्तिमान हो गई हो।

वशीधर ने पूछा—तुम तो वम्वई चले गए थे न?

इद्रनाथ ने जवाव दिया—जी हाँ, आज ही आया हूँ।

वशीधर के तीखे स्वर मे कहा—गोकुल को तो तुम ले वैठे!

इद्र ने अपनी अँगूठी की ओर ताकते हुए कहा—वह मेरे घर पर है।

वंशीधर के उदास मुख पर हर्ष का प्रकाश दौड गया। वोले—तो यहाँ क्यो नही आये? तुमसे कहाँ उसकी भेंट हुई? क्या वम्वई चला गया था?

'जी नही, कल मैं गाडी से उतरा तो स्टेशन पर मिल गए।'

'तो जाकर लिवा लाओ न, जो किया अच्छा किया ।'

यह कहते हुए वह घर मे दौडे । एक क्षण में गोकुल की माता ने उसे अंदर बुलाया ।

वह अ दर गयामाता ने उसे सिर से पाँव तक देखा—तुम वीमार थे क्या भैया ? चेहरा क्यो इतना उतरा हुआ है ?

इद्रनाथ ने कुछ उत्तर न दिया ?

गोकुल की माता ने लोटे का पानी रखकर कहा—हाथ-मुँह धो डालो वेटा ! गोकुल है तो अच्छी तरह ? कहाँ रहा इतने दिन ? तव से सैकडो मन्नतें मान डाली । आया क्यो नही ।

इद्रनाथ ने हाथ-मुह धोते हु ए कहा—मैंने तो कहा था, चलो, लेकिन डर के मारे नही आते ।

'और था कहाँ इतने दिन ?'

'कहते थे. देहातो मे घूमता रहा ।'

'तो क्या तुम अकेले वम्बई से आये हो ?'

'जी नही, अम्माँ भी आयी हैं ।'

गोकुल की माता ने कुछ सकुचाकर कहा—मानी तो अच्छी तरह हैं ?

इद्रनाथ ने हँसकर कहा—जी हा, अव वह वडे सुख से है । ससार के वधनों से छूट गई ।

माता ने अविश्वास करके कहा—चल, नटखट कही का ! वेचारी को कोस रहा है, मगर जल्दी वम्बई से क्यो लौट आये ?

इन्द्रनाथ ने मुस्कराते हुए कहा—क्या करता ! माताजी का तार वम्वई मे मिला कि मानी ने गाडी से कूदकर प्राण दे दिए । वह लालपुर मे पडी हुई थी, दौडा हुआ आया । वही दाह-क्रिया की । आज घर चला आया । अव मेरा अपराध क्षमा कीजिए ।

वह और कुछ न कह सका । आँसुओ के वेग ने गला वद कर दिया । जेव से एक पत्र निकालकर माता के सामने रखता हुआ वोला—उनके संदूक मे यही पत्र मिला है ।

गोकुल की माता कई मिनट तक मर्माहत-सी वैठी जमीन की ओर ताकती रही । शोक और उससे अधिक पश्चात्ताप से सिर को दवा रखा था । फिर पत्र उठाकर पढने लगी ।

'स्वामी'

जव यह पत्र आपके हाथो मे पहुँचेगा, तव तक मैं इस ससार से विदा हो जाऊँगी । मैं वडी अभागिनी हूँ । मेरे लिए इस संसार मे स्थान नही है । आपको भी मेरे कारण क्लेश और निंदा ही मिलेगी । मैंने सोचकर देखा और यही

निश्चय किया कि मेरे लिए मरना ही अच्छा है। मुझ पर आपने जो दया की थी, उसके लिए आपको क्या प्रतिदान करूँ? जीवन मे मैंने कभी किसी वस्तु की इच्छा नही की, परतु मुझे दु:ख है कि आपके चरणो पर सिर रखकर न मर सकी। मेरी अंतिम याचना है कि मेरे लिए आप शोक न कीजिएगा। ईश्वर आपको सदा सुखी रखे।'

माताजी ने पत्र रख दिया और आंखो से आंसू बहने लगे। बरामदे मे वशीधर निस्पद खड़े थे और जैसे मानी लज्जानत उनके सामने खडी थी।

कायर

युवक का नाम केशव था, युवती का प्रेमा। दोनो एक ही कालेज के और एक ही क्लास के विद्यार्थी थे। केशव नए विचारो का युवक था, जात-पाँत के वन्धनो का विरोधी। प्रेमा पुराने संस्कारो की कायल थी, पुरानी मर्यादाओ और प्रथाओ मे पूरा विश्वास रखने वाली, लेकिन फिर भी दोनो मे गाढा प्रेम हो गया था और वात सारे कालेज मे मशहूर थी। केशव ब्राह्मण होकर भी वैश्य-कन्या प्रेमा से विवाह करके अपना जीवन सार्थक करना चाहता था। उसे अपने माता-पिता की परवाह न थी। कुल मर्यादा का विचार भी उसे स्वाँग-सा लगता था। उसके लिए सत्य कोई वस्तु थी तो प्रेमा, किन्तु प्रेमा के लिए माता-पिता और कुल-परिवार के आदेश के विरुद्ध एक कदम वढना भी असम्भव था।

सध्या का समय है। विक्टोरिया-पार्क के एक निर्जन स्थान मे दोनो आमने-सामने हरियाली पर वैठे हुए हैं। सैर करने वाले एक-एक करके विदा हो गए, किन्तु ये दोनो अभी वही वैठे हुए हैं। उनमे एक ऐसा प्रसग छिडा हुआ है, जो किसी तरह समाप्त नही होता है।

केशव ने झुझलाकर कहा—इसका यह अर्थ है कि तुम्हे मेरी परवाह नही है।

प्रेमा ने उसको शांत करने की चेष्टा करके कहा—तुम मेरे साथ अन्याय कर रहे हो, केशव! लेकिन मै इस विषय को माता-पिता के सामने कैसे छेडू, यह मेरी समझ मे नही आता। वे लोग पुरानी रूढियो के भक्त हैं। मेरी तरफ से कोई ऐसी वात सुनकर उनके मन मे जो-जो शकाएँ होगी, उनकी कल्पना कर सकते हो?

केशव ने उग्र भाव से पूछा—तो तुम भी उन्ही पुरानी रूढियो की गुलामी हो?

प्रेमा ने अपनी वडी-वडी आँखो मे मृदु स्नेह भरकर कहा—नही, मै उनकी गुलाम नही हूँ, लेकिन माता-पिता की इच्छा मेरे लिए और सव चीजो से मान्य है।

'तुम्हारा व्यक्तित्व कुछ नही है ?'

'ऐसा ही समझ लो ।'

'मैं तो समझता था कि ये ढकोसले मूर्खाओ के लिए ही है, लेकिन अब मालूम हुआ कि तुम जैसी विदुषियाँ भी उनकी पूजा करती हैं । जब मैं तुम्हारे लिए संसार को छोडने पर तैयार हूँ, तो मैं तुमसे भी यही आशा करता हूँ ।'

प्रेमा ने मन मे सोचा, मेरा अपनी देह पर क्या अधिकार है । जिस माता-पिता ने अपने रक्त से मेरी सृष्टि की है और अपने स्नेह से उसे पाला है, उनकी मरजी के खिलाफ कोई काम करने का उसे कोई हक नही ।

उसने दीनता के साथ केशव से कहा—क्या प्रेम स्त्री और पुरुष के रूप ही मे रह सकता है, मैत्री के रूप मे नही ? मैं तो प्रेम को आत्मा का बन्धन समझती हूँ ।

केशव ने कठोर भाव से कहा—इन दार्शनिक विचारो मे तुम मुझे पागल कर दोगी, प्रेमा ! बस, इतना ही समझ लो कि मैं निराश होकर जिन्दा नही रह सकता । मैं प्रत्यक्षवादी हूँ और कल्पनाओ के ससार मे अप्रत्यक्ष का आनन्द उठाना मेरे लिए असम्भव है ।

यह कहकर, उसने प्रेमा का का हाथ पकडकर, अपनी ओर खीचने की चेष्टा की । प्रेमा ने झटके से हाथ छुडा लिया और बोली—नही केशव, मैं कह चुकी हूँ कि मैं स्वतन्त्र नही हूँ । तुम मुझसे वह चीज न मांगो, जिस पर मेरा कोई अधिकार नही है ।

केशव को अगर प्रेमा ने कठोर शब्द कहे होते, तो भी उसे इतना दुःख न हुआ होता । एक क्षण तक वह मन मारे बैठा रहा, फिर उठकर निराशा भरे स्वर मे बोला—'जैसी तुम्हारी इच्छा !' और आहिस्ता-आहिस्ता कदम उठाता हुआ वहाँ से चला गया ! प्रेमा अब भी वही बैठी आँसू बहाती रही ।

2

रात को भोजन करके प्रेमा जब अपनी माँ के साथ लेटी, तो उसकी आँखो मे नीद न थी । केशव ने उसे एक ऐसी बात कह दी थी, जो चचल पानी मे पडनेवाली छाया की तरह उसके दिल पर छायी हुई थी । प्रतिक्षण उसका रूप बदलता था । वह उसे स्थिर न कर सकती थी । माता से इस विषय मे कुछ कहे तो कैसे ? लज्जा मुँह बन्द कर देती थी । उसने सोचा, अगर केशव के साथ मेरा विवाह न हुआ, तो मेरे लिए ससार मे फिर क्या रह जाएगा, लेकिन मेरा बस ही क्या है ? इन भाँति-भांति के विचारो मे एक बात जो उसके मन मे निश्चित हुई है, वह यह थी कि केशव के सिवा वह और किसी से विवाह न करेगी ।

उसकी माता ने पूछा—क्या तुझे अब तक नीद न आयी? मैंने तुझसे कितनी बार कहा कि थोडा बहुत घर का काम-काज किया कर, लेकिन तुझे किताबो ही से फुरसत नही मिलती। चार दिन मे तू पराए घर जाएगी, कौन जाने कैसा घर मिले। अगर कुछ काम करने की आदत न रही, तो कैसे निवाह होगा?

प्रेमा ने भोलेपन से कहा—मैं पराए घर जाऊँगी ही क्यो?

माता ने मुस्कराकर कहा—लडकियो के लिए यही तो सबसे बडी विपत्ति है, बेटी। माँ-बाप की गोद मे पलकर ज्यो ही सयानी हुई, दूसरो की हो जाती है। अगर अच्छा प्राणी मिल गया, तो जीवन आराम मे कट गया, नही रो-रोकर दिन काटना पडा। सब कुछ भाग्य के अधीन है। अपनी बिरादरी मे तो मुझे कोई घर नही भाता। कही लडकियो का आदर नही, लेकिन करना तो बिरादरी मे ही पडेगा। न जाने, यह जात-पात का बन्धन कब टूटेगा?

प्रेमा डरते-डरते बोली—कही-कही तो बिरादरी के बाहर भी विवाह होने लगे हैं।

उसने कहने को कह दिया, लेकिन उसका हृदय काँप रहा था कि माताजी कुछ भाप न जाएँ।

माता ने विस्मय के साथ पूछा—क्या हिन्दुओ मे ऐसा हुआ है?

फिर उसने आप ही आप उस प्रश्न का जवाब भी दिया—अगर दो-चार जगह ऐसा हो भी गया, तो उससे क्या होता है?

प्रेमा ने इसका कुछ जवाब न दिया। भय हुआ कि माता कही उसका आशय न समझ जाएँ। उसका भविष्य एक अँधेरी खाई की तरह उसके सामने मुँह खोले खडा था, मानो उसे निगल जाएगा।

उसे न जाने कब नीद आ गई।

3

प्रात काल प्रेमा सोकर उठी, तो उसके मन मे एक विचित्र साहस का उदय हो गया था। सभी महत्वपूर्ण फैसले हम आकस्मिक रूप से कर लिया करते हैं, मानो कोई दैवी शक्ति हमे उनकी ओर खीच ले जाती है, वही हालत प्रेमा की थी। कल तक वह माता-पिता के निर्णय को मान्य समझती थी, पर सकट को सामने देखकर उसमे उस वायु की हिम्मत पैदा हो गई थी, जिसके सामने कोई पर्वत आ गया हो। वही मद वायु प्रबल वेग से पर्वत के मस्तक पर चढ जाती है और उसे कुचलती हुई दूसरी तरफ जा पहुचती है।

प्रेमा मन मे सोच रही थी—माना, यह देह माता-पिता की है, किन्तु आत्मा को जो कुछ भुगतना पडेगा, वह इसी देह से तो भुगतना पड़ेगा। अब वह

इस विषय में संकोच करना अनुचित ही नहीं, घातक समझ रही थी। अपने जीवन को क्यों एक झूठे सम्मान पर वलिदान करे? उसने सोचा, विवाह का आधार प्रेम न हो, तो वह तो देह का विक्रय है। आत्मसमर्पण क्या बिना प्रेम के भी हो सकता है? इस कल्पना ही से कि न जाने किस अपरिचित युवक से उसका व्याह हो जाएगा, उसका हृदय विद्रोह कर उठा।

वह अभी नाश्ता करके कुछ पढने जा रही थी कि उसके पिता ने प्यार से पुकारा—मैं कल तुम्हारे प्रिंसिपल के पास गया था, वे तुम्हारी बडी तारीफ कर रहे थे।

प्रेमा ने सरल भाव से कहा—आप तो यो ही कहा करते हैं।

'नही, सच।'

यह कहते हुए उन्होंने अपनी मेज की दराज खोली और मखमली चौखटो मे जडी हुई एक तसवीर निकालकर उसे दिखाते हुए बोले—यह लड़का आई० सी० एस० के इम्तहान मे प्रथम आया है। इसका नाम तो तुमने सुना होगा?

बूढे पिता ने ऐसी भूमिका वाधी थी कि प्रेमा उनका आशय समझ न सके, लेकिन प्रेमा भाप गई। उसका मन तीर की भाँति लक्ष्य पर जा पहुचा। उसने विना तस्वीर की ओर देखे ही कहा—नही, मैंने तो उसका नाम नही सुना।

पिता ने बनावटी आश्चर्य से कहा—क्या? तुमने उसका नाम ही नही सुना? आज के दैनिक-पत्र मे उसका चित्र और जीवन-वृत्तान्त छपा है।

प्रेमा ने रुखाई से जवाव दिया—होगा, मगर मैं तो इस परीक्षा का कोई महत्व नही समझती। मैं तो समझती हू, जो लोग इस परीक्षा मे बैठते है, वे पल्ले सिरे के स्वार्थी होते है। आखिर उनका उद्देश्य इसके सिवा और क्या होता है कि अपने गरीव, निर्धन, दलित भाइयो पर शासन करें और खूब धन संचय करे। यह तो जीवन का कोई ऊँचा उद्देश्य नही है।

इस आपत्ति मे जलन थी अन्याय था, निर्दयता थी। पिताजी ने समझा था, प्रेमा वह बखान सुनकर लट्टू हो जाएगी। यह जवाब सुनकर तीखे स्वर में बोले—तू तो ऐसी बात कर रही है, जैसे तेरे लिए धन और अधिकार का कोई मूल्य ही नही।

प्रेमा ने ढिठाई से कहा—हाँ, मैं तो इसका मूल्य नहीं समझती, मैं तो आदमी में त्याग देखती हूँ। मैं ऐसे युवको को जानती हूँ, जिन्हें यह पद जबर्दस्ती भी दिया जाए, तो स्वीकार न करेंगे।

पिता ने उपहास के ढग से कहा—यह तो आज मैंने नई बात सुनी। मैं तो देखता हूँ कि छोटी-छोटी नौकरियो के लिए लोग मारे-मारे फिरते है। मैं जरा उस लडके की सूरत देखना चाहता हूँ, जिसमें इतना त्याग हो। मैं तो उसकी पूजा करूंगा।

शायद किसी दूसरे अवसर पर ये शब्द सुनकर प्रेमा लज्जा से सिर झुका लेती, पर इस समय उसकी दशा उस सिपाही की-सी थी, जिसके पीछे गहरी खाई हो। आगे बढ़ने के सिवा उसके लिए और कोई मार्ग न था। अपने आवेश को सयम से दबाती हुई, आँखो मे विद्रोह भरे, वह अपने कमरे मे गई और केशव के कई चित्रो मे से वह एक चित्र चुनकर लायी, जो उसकी निगाह मे सबसे खराब था और पिता के सामने रख दिया। बूढे पिताजी ने चित्र को उपेक्षा के भाव से देखना चाहा, लेकिन पहली ही दृष्टि मे उसने उन्हे आकर्षित कर लिया। ऊँचा कद था और दुर्बल होने पर भी उसका सगठन, स्वास्थ्य और सयम का परिचय दे रहा था। मुख पर प्रतिभा का तेज न था, पर विचारशीलता का कुछ ऐसा प्रतिबिम्ब था, जो उसके प्रति मन मे विश्वास पैदा करता था।

उन्होंने उस चित्र को देखते हुए कहा—यह किसका चित्र है ?

प्रेमा ने सकोच से सिर झुकाकर कहा—यह मेरे ही क्लास मे पढते है।

'अपनी ही बिरादरी का है ?'

प्रेमा की मुखमुद्रा धूमिल हो गई। इसी प्रश्न के उत्तर पर उसकी किस्मत का फैसला हो जाएगा। उसके मन मे पछतावा हुआ कि व्यर्थ मे इस चित्र को वहाँ लायी। उसमे एक क्षण के लिए जो दृढता आयी थी, वह इस पैने प्रश्न के सामने कातर हो उठी। दबी हुई आवाज मे बोली—'जी नही, वह ब्राह्मण है।' और यह कहने के साथ ही वह क्षुब्ध होकर कमरे से बाहर निकल गई, मानो वहाँ की वायु मे उसका गला घुटा जा रहा हो और दीवार की आड मे खडी होकर रोने लगी।

लालाजी को तो पहले ऐसा क्रोध आया कि प्रेमा को बुलाकर साफ-साफ कहे कि यह असम्भव है। वे उसी गुस्से मे दरवाजे तक आए, लेकिन प्रेमा को रोते देखकर नम्र हो गए।

इस युवक के प्रति प्रेमा के मन मे क्या भाव थे, यह उनसे छिपा न रहा। वे स्त्री-शिक्षा के पूरे समर्थक थे, लेकिन इसके साथ ही कुल-मर्यादा की रक्षा भी करना चाहते थे। अपनी ही जाति के सुयोग्य वर के लिए अपना सर्वस्व अर्पण कर सकते थे, लेकिन उस क्षेत्र के बाहर कुलीन से कुलीन और योग्य से योग्य वर की कल्पना भी उनके लिए असह्य थी। इससे बडा अपमान वे सोच ही न सकते थे।

उन्होंने कठोर स्वर मे कहा—आज से कालेज जाना बन्द कर दो। अगर शिक्षा कुल-मर्यादा को डुबाना ही सिखाती है, तो कु-शिक्षा है।

प्रेमा ने कातर कठ से कहा—परीक्षा तो समीप आ गई है।

लालाजी ने दृढता से कहा—आने दो।

और फिर अपने कमरे मे जाकर विचारो मे डूब गए।

4

छ महीने गुजर गए।

लालाजी ने घर मे आकर पत्नी को एकांत मे बुलाया और बोले—जहाँ तक मुझे मालूम हुआ है, केशव बहुत ही सुशील और प्रतिभाशाली युवक है। मैं तो समझता हूँ, प्रेमा इस शोक मे घुल-घुलकर प्राण दे देगी। तुमने भी समझाया, मैंने भी समझाया, दूसरो ने भी समझाया, पर उस पर कोई असर ही नही होता। ऐसी दशा मे हमारे लिए क्या उपाय है?

उनकी पत्नी ने चिंतित भाव से कहा—कर तो दोगे, लेकिन रहोगे कहाँ? न-जाने कहाँ से यह कुलच्छनी मेरी कोख मे आयी है?

लालाजी ने भवें सिकोडकर तिरस्कार के साथ कहा—यह तो हजार दफा सुन चुका, लेकिन कुल-मर्यादा के नाम को कहाँ तक रोएँ। चिड़िया का पर खोलकर यह आशा करना कि तुम्हारे आँगन मे ही फुदकती रहेगी, भ्रम है। मैंने इस प्रश्न पर ठडे दिल से विचार किया है और इस नतीजे पर पहुचा हूँ कि हमे इस आपद्धर्म को स्वीकार कर लेना ही चाहिए। कुल-मर्यादा के नाम पर मैं प्रेमा की हत्या नही कर सकता। दुनिया हँसती हो, हँसे, मगर वह जमाना बहुत जल्द आने वाला है, जब ये सभी बन्धन टूट जाएँगे। आज भी सैकडो विवाह जात-पाँत के बन्धनो को तोडकर हो चुके है। अगर विवाह का उद्देश्य स्त्री और पुरुष का सुखमय जीवन है, तो हम प्रेमा की उपेक्षा नही कर सकते।

वृद्धा ने क्षुब्ध होकर कहा—जब तुम्हारी यही इच्छा है, तो मुझसे क्या पूछते हो? लेकिन मैं कहे देती हूँ कि मैं इस विवाह के नजदीक न जाऊँगी, न कभी इस छोकरी का मुह देखूँगी। समझ लूगी, जैसे और सब लडके मर गए, वैसे यह भी मर गई।

'तो फिर आखिर तुम क्या करने को कहती हो?'

'क्यो नही उस लडके से विवाह कर देते, उसमे क्या बुराई है? दो साल मे सिविल सर्विस पास करके आ जाएगा। केशव के पास क्या रखा है? बहुत होगा, किसी दफ्तर मे क्लर्क हो जाएगा!'

'और अगर प्रेमा प्राणहत्या कर ले, तो?'

'तो कर ले, तुम तो उसे और शह देते हो। जब उसे हमारी परवाह नही है, तो हम उसके लिए अपने नाम को क्यो कलंकित करे? प्राणहत्या करना कोई खेल नही है। यह सब धमकी है। मन घोडा है, जब तक इसे लगाम न हो, तो पुट्ठे पर हाथ न रखने देगा। जब उसके मन का यह हाल है तो कौन कह सकता है कि वह केशव के साथ ही जिन्दगी-भर निबाह करेगी। जिस तरह आज उससे प्रेम है उसी तरह कल दूसरे से हो सकता है। तो क्या पत्ते पर अपना मांस बिकवाना चाहते हो?

लालाजी ने स्त्री को प्रश्नसूचक दृष्टि से देखकर कहा—और अगर वह [illegible]

खुद जाकर केशव से विवाह कर ले, तो तुम क्या कर लोगी ? फिर तुम्हारी कितनी इज्जत रह जाएगी ! चाहे वह संकोचवश या हम लोगो के लिहाज से यों ही बैठी रहे, पर यदि जिद पर कमर बांध ले, तो हम-तुम कुछ नहीं कर सकते।

इस समस्या का ऐसा भीषण अन्त भी हो सकता है, यह इस वृद्धा के ध्यान मे भी न आया था। यह प्रश्न बमगोले की तरह उसके मस्तिष्क पर गिरा। एक क्षण तक वह अवाक् बैठी रह गयी, मानो इस आघात ने उसकी बुद्धि की धज्जियां उड़ा दी हो। फिर पराभूत होकर बोली—तुम्हे अनोखी ही कल्पनाएँ सूझती है ! मैंने तो आज तक कभी भी नही सुना कि किसी कुलीन कन्या ने अपनी इच्छा से विवाह किया है।

'तुमने न सुना हो, लेकिन मैंने सुना है, और देखा है और ऐसा होना बहुत सम्भव है।'

'जिस दिन ऐसा होगा, उस दिन तुम मुझे जीती न देखोगे।'

'मैं यह नही कहता कि ऐसा होगा ही, लेकिन होना सम्भव है।'

'तो जब ऐसा होना है, तो इससे तो यही अच्छा है कि हमी इसका प्रबन्ध करे। जब नाक ही कट रही है, तो तेज छुरी से क्यो न कटे। कल केशव को बुलाकर देखो, क्या कहता है।'

5

केशव के पिता सरकारी पेंशनर थे, मिजाज के चिडचिडे और कृपण। धर्म के आडम्बरो मे ही उनके चित्त को शांति मिलती थी। कल्पनाशक्ति का अभाव था। किसी के मनोभावो का सम्मान न कर सकते थे। वे अब भी उस संसार मे रहते थे, जिसमे उन्होंने अपने बचपन और जवानी के दिन काटे थे। नवयुग की बढती हुई लहर को वे सर्वनाश कहते थे और कम से कम अपने घर को दोनो हाथो और दोनो पैरो का जोर लगाकर उसमे से बचाए रखना चाहते थे, इसलिए जब एक दिन प्रेमा के पिता उनके पास पहुँचे और केशव से प्रेमा के विवाह का प्रस्ताव किया, तो बूढे पंडितजी अपने आपे मे न रह सके। धुंधली आँखें फाडकर बोले—आप भंग तो नहीं खा गए हैं ? इस तरह का संबंध और चाहे जो कुछ हो, विवाह नही हैं। मालूम होता है, आपको भी नए जमाने की हवा लग गई।

बूढे बाबूजी ने नम्रता से कहा—मैं खुद ऐसा सम्बंध पसंद नही करता। इस विषय मे मेरे विचार वही हैं, जो आपके, पर बात ऐसी आ पडी है कि मुझे विवश होकर आपकी सेवा मे आना पड़ा। आजकल के लड़के और लड़कियाँ

कितने स्वेच्छाचारी हो गए हैं, यह तो आप जानते ही हैं। हम बूढ़े लोगों के लिए अब अपने सिद्धातो की रक्षा करना कठिन हो गया है। मुझे भय है कि कही ये दोनो निराश होकर अपनी जान पर न खेल जाएँ।

बूढे पडितजी जमीन पर पाँव पटकते हुए गरज उठे—आप क्या कहते हैं, साहब! आपको शरम नही आती? हम ब्राह्मण हैं और ब्राह्मण मे भी कुलीन। ब्राह्मण कितने ही पतित हो गए हो, इतने मर्यादाशून्य नहीं हुए हैं कि वनिये-वक्कालो की लडकी से विवाह करते फिरें! जिस दिन कुलीन ब्राह्मणो मे लड़कियाँ न रहेगी, उस दिन यह समस्या उपस्थित हो सकती है। मैं कहता हूँ, आपको मुझसे यह बात कहने का साहस कैसे हुआ?

बूढे बाबूजी जितना ही दबते थे, उतना ही पडितजी बिगडते थे। यहाँ तक कि लालाजी अपना अपमान ज्यादा न सह सके और अपनी तकदीर को कोसते हुए चले गए।

उसी वक्त केशव कालेज से आया। पडितजी ने तुरत उसे बुलाकर कठोर कठ मे कहा—मैंने सुना है, तुमने किसी वनिये की लडकी से अपना विवाह कर लिया है। यह खबर कहा तक सही है?

केशव ने अनजान बनकर पूछा—आपसे किसने कहा?

'किसी ने कहा। मैं पूछता हूँ, यह बात ठीक है, या नही? अगर ठीक है, और तुमने अपनी मर्यादा को डुबाना निश्चय कर लिया है, तो तुम्हारे लिए हमारे घर मे कोई स्थान नही। तुम्हे मेरी कमाई का एक धेला भी नहीं मिलेगा। मेरे पास जो कुछ है, वह मेरी अपनी कमाई है। मुझे अख्तियार है कि मैं उसे जिसे चाहूँ दे दूँ। तुम यह अनीति करके मेरे घर मे कदम नही रख सकोगे।'

केशव पिता के स्वभाव से परिचित था। प्रेमा से उसे प्रेम था। वह गुप्त रूप से प्रेमा से विवाह कर लेना चाहता था। बाप हमेशा तो बैठे न रहेंगे। माता के स्नेह पर उसे विश्वास था। उस प्रेम की तरग मे वह सारे कष्टो को झेलने के लिए तैयार मालूम होता था, लेकिन जैसे कोई कायर सिपाही बन्दूक के सामने जाकर हिम्मत खो बैठता है और कदम पीछे हटा लेता है वही दशा केशव की हुई। वह साधारण युवको की तरह सिद्धातो के लिए बडे-बडे तर्क कर सकता था, जबान से उनमे अपनी भक्ति की दोहाई दे सकता था, लेकिन उनके लिए यातनाएँ झेलने की सामर्थ्य उसमे न थी। अगर वह अपनी जिद पर अडा और पिता ने भी अपनी टेक रखी, तो उसका कहा ठिकाना लगेगा? उसका जीवन ही नष्ट हो जाएगा।

उसने दबी जबान से कहा—जिसने आपसे यह कहा है, बिलकुल झूठ कहा है।

पडितजी ने तीव्र नेत्रो से देखकर कहा—तो यह खबर बिलकुल गलत है?

'जी हां, बिलकुल गलत।'

'तो तुम आज ही इसी वक्त उस बनिए को खत लिख दो और याद रखो कि अगर इस तरह की चर्चा फिर कभी उठी, तो तुम्हारा सबसे बडा शत्रु हूँगा। बस, जाओ।'

केशव और कुछ न कह सका। वह वहा से चला, तो ऐसा मालूम होता था कि पैरो मे दम नही है।

6

दूसरे दिन प्रेमा ने केशव के नाम यह पत्र लिखा:—

'प्रिय केशव!

'तुम्हारे पूज्य पिताजी ने लालाजी के साथ जो अशिष्ट और अपमानजनक व्यवहार किया है, उसका हाल सुनकर मेरे मन मे बडी शका उत्पन्न हो रही है। शायद उन्होने तुम्हे भी डाट-फटकार बताई होगी। ऐसी दशा मे तुम्हारा निश्चय सुनने के लिए विकल हो रही हूँ। मैं तुम्हारे साथ हर तरह का कष्ट झेलने को तैयार हूँ। मुझे तुम्हारे पिताजी की सम्पत्ति का मोह नही है, मैं तो केवल तुम्हारा प्रेम चाहती हूँ और उसी मे प्रसन्न हूँ। आज शाम को यहीं आकर भोजन करो। दादा और माँ दोनो तुमसे मिलने के लिए बहुत इच्छुक हैं। मैं वह स्वप्न देखने मे मग्न हूँ, जब हम दोनो उस सूत्र मे बँध जायँगे, जो टूटना नही जानता, जो बडी से बडी आपत्ति मे भी अटूट रहता है।

तुम्हारी,
प्रेमा।'

सध्या हो गई और इस पत्र का कोई जवाब न आया। उसकी माता बार-बार पूछती थी—केशव आये नही? बूढे लाला भी द्वार की ओर आँख लगाए बैठे थे। यहाँ तक कि रात के नौ बज गए, पर न तो केशव ही आए, न उनका पत्र।

प्रेमा के मन मे भाति-भाति के सकल्प-विकल्प उठ रहे थे, कदाचित् उन्हे पत्र लिखने का अवकाश न मिला होगा, या आज आने की फुरसत न मिली होगी, कल अवश्य आ जाएँगे। केशव ने पहले उसके पास जो प्रेम-पत्र लिखे थे, उन सबको उसने फिर पढा। उनके एक-एक शब्द से कितना अनुराग टपक रहा था, उनमे कितना कम्पन था, कितनी विकलता; कितनी तीव्र आकाक्षा! फिर उसे केशव के वे वाक्य याद आए, जो उसने सैकडो ही बार कहे थे। कितनी बार वह उसके सामने रोया था। इतने प्रमाणो के होते हुए निराशा के लिए कहा स्थान था, मगर फिर भी सारी रात उसका मन जैसे सूली पर टँगा रहा।

प्रात काल केशव का जवाव आया। प्रेमा ने कापते हुए हाथो मे पत्र लेकर पढा। पत्र हाथ से गिर गया। ऐसा जान पडा, मानो उसकी देह का रक्त स्थिर हो गया हो, लिखा था :

'मैं वडे सकट मे हूँ कि तुम्हे क्या जवाव दू। मैंने इधर इस समस्या पर खूब ठंडे दिल से विचार किया है और इस नतीजे पर पहूँचा हूं कि वर्तमान दशाओ मे मेरे लिए पिता की आज्ञा की उपेक्षा करना दु सह है। मुझे कायर न समझना। मैं स्वार्थी भी नही हूँ, लेकिन मेरे सामने जो वाधाएँ हैं, उन पर विजय की शक्ति मुझमे नही है। पुरानी वातो को भूल जाओ। उस समय मैंने इन वाधाओ की कल्पना न की थी !'

प्रेमा ने एक लम्वी, गहरी, जलती हुई सास खीची और उस खत को फाड कर फेंक दिया। उसकी आखो से अश्रुधार वहने लगी। जिस केशव को उसने अपने अत करण से वर लिया था, वह इतना निष्ठुर हो जाएगा, इसकी उसको रत्ती-भर भी आशा न थी। ऐसा मालूम पडा, मानो अव तक वह कोई सुनहला स्वप्न देख रही थी, पर आख खुलने पर सव कुछ अदृश्य हो गया। जीवन मे जव आशा ही लुप्त हो गई, तो अव अंधकार के सिवा और क्या था। अपने हृदय की सारी सम्पत्ति लगाकर उसने एक नाव लदवायी थी, वह नाव जलमग्न हो गई। अव दूसरी नाव कहा से लदवाए, अगर वह नाव डूवी है, तो उसके साथ ही वह भी डूव जाएगी।

माता ने पूछा—क्या केशव का पत्र है ?

प्रेमा ने भूमि की ओर ताकते हुए कहा—हा, उनकी तवियत अच्छी नही है। इसके सिवा वह और क्या कहे ? केशव की निष्ठुरता और वेवफाई का समाचार कहकर लज्जित होने का साहस उसमे न था।

दिन भर वह घर के काम-धधो मे लगी रही, मानो उसे कोई चिन्ता ही नही है। रात को उसने सवको भोजन कराया, खुद भी भोजन किया और वडी देर तक हारमोनियम पर गाती रही।

मगर सवेरा हुआ, तो उसके कमरे मे उसकी लाश पडी हुई थी। प्रभात की सुनहली किरणें उसके पीले मुख को जीवन की आभा प्रदान कर रही थी।

शिकार

फटे वस्त्रो वाली मुनिया ने रानी वसुधा के चाँद-से मुखडे की ओर सम्मान-भरी आखो से देखकर राजकुमार को गोद में उठाते हुए कहा—हम गरीबो का इस तरह कैसे निवाह हो सकता है महारानी! मेरी तो अपने आदमी से एक दिन न पटे। मैं उसे घर मे बैठने न दूं। ऐसी-ऐसी गालिया सुनाऊँ कि छठी का दूध याद आ जाए।

रानी वसुधा ने गभीर-विनोद के भाव से कहा—क्यो, वह कहेगा नही, तू मेरे बीच मे बोलने वाली कौन है? मेरी जो इच्छा होगी, वह करूँगा। तू अपना रोटी कपडा मुझसे लिया कर। तुझे मेरी दूसरी बातो से क्या मतलब? मैं तेरा गुलाम नही हूँ।

मुनिया तीन ही दिन से यहाँ लड़को को खिलाने के लिए नौकर हुई थी। पहले दो-चार घरो मे चौका-बरतन कर चुकी थी, पर रानियो से अदब के साथ बात करना कभी न सीख पाई थी। उसका सूखा हुआ सांवला चेहरा उत्तेजित हो उठा। कर्कश स्वर मे बोली—जिस दिन ऐसी बातें मुँह से निकालेगा, मूछे उखाड लूगी! सरकार! वह मेरा गुलाम नही है, तो क्या मैं उसकी लौंडी हूँ? अगर वह मेरा गुलाम है, तो मैं उसकी लौडी हूँ। मैं आप नही खाती, उसे खिला देती हूँ, क्योकि वह मर्द-बच्चा है। पल्लेदारी मे उसे बहुत कसाला करना पडता है। आप चाहे फटे पहनूं, पर उसे फटे-पुराने नही पहनने देती। जब मैं उसके लिए इतना करती हूँ; तो मजाल है कि वह मुझे आख दिखाए। अपने घर को आदमी इसीलिए तो छाता छोपता है कि उसे वर्षा-बूंदी मे बचाव हो। अगर यह डर रहे कि घर न जाने कब गिर पडेगा, तो ऐसे घर मे कौन रहेगा? उससे तो रूह की छाह कही अच्छी। कल न जाने कहा बैठा गाता-बजाता रहा। दस बजे रात को घर आया। मैं रात-भर उससे बोली ही नहीं। लगा पैरो पडने, घिघियाने, तब मुझे दया आ गई! यही मुझमे एक बुराई है। मुझसे उसकी रोनी सूरत नही देखी जाती। इसी से वह कभी-कभी बहक जाता है, पर अब मैं पक्की हो गई हूँ, फिर किसी दिन झगड़ा किया तो या वही रहेगा, या मैं ही रहूँगी। क्यो किसी की धौंस सहूँ सरकार! जो बैठकर खाए, वह धौंस सहे! यहा तो

वरावर की कमाई करती हूँ ।

वसुधा ने उसी गम्भीर भाव से फिर पूछा—अगर वह तुझे विठाकर खिलाता, तब तो उसकी धौंस सहती ?

मुनिया जैसे लडने पर उतारू हो गई । वोली—वैठाकर कोई क्या खिलाएगा सरकार ? मर्द वाहर काम करता है, तो हम भी घर मे काम करती हैं तो घर के काम मे कुछ लगता ही नही ? वाहर के काम से तो रात को छुट्टी मिल जाती है । घर के काम से तो रात को भी छुट्टी नही मिलती । पुरुष यह चाहे कि मुझे घर मे वैठाकर आप सैर-सपाटा करे, तो मुझसे तो न सहा जाए । यह कहती हुई मुनिया राजकुमार को लिए हुए वाहर चली गई ।

वसुधा ने थकी हुई, रुआसी आखो से खिडकी की ओर देखा । वाहर हरा-भरा वाग था, जिसके रग-विरगे फूल यहा से साफ नजर आ रहे थे और पीछे एक विशाल मन्दिर आकाश मे अपना सुनहला मस्तक उठाए, सूर्य से आख मिला रहा था । स्त्रिया रगे-विरगे वस्त्राभूषण पहने पूजन करने आ रही थी । मन्दिर के दाहिनी तरफ तालाव मे कमल प्रभात के सुनहले आनन्द से मुस्करा रहे थे और कार्तिका की शीतल रवि-छवि जीवन ज्योति लुटाती थी, पर प्रकृति की यह सुरम्य शोभा वसुधा को कोई हर्ष न प्रदान कर सकी । उसे जान पडा, प्रकृति उसकी दशा पर व्यग्य से मुस्करा रही है । उसी सरोवर के तट पर लेटा हुआ एक टूटा फूटा झोपडा किसी अभागिन वृद्धा की भाति रो रहा था । वसुधा की आखें सजल हो गईं । पुष्प और उद्यान के मध्य मे खडा वह सूना झोपडा उसके विलास और ऐश्वर्य से घिरे हुए मन का सजीव चित्र था । उसके जी मे आया, जाकर झोपडे के गले लिपट जाऊँ और खूव रोऊँ ।

वसुधा को इस घर मे आए पाच वर्ष हो गए । पहले उसने अपने भाग्य को सराहा था । माता-पिता के छोटे से कच्चे आनन्दहीन घर को छोडकर वह एक विशाल भवन मे आयी थी, जहा सम्पत्ति उसके पैरो को चूमती हुई जान पडती थी । उस समय सम्पत्ति ही उसकी आँखो मे सव-कुछ थी । पति-प्रेम गौण वस्तु थी, पर उसका लोभी मन सम्पत्ति पर सन्तुष्ट न रह सका, पति-प्रेम के लिए हाथ फैलाने लगा । कुछ दिनो उसे मालूम हुआ, मुझे प्रेम रत्न भी मिल गया, पर थोडे ही दिनो मे यह भ्रम जाता रहा । कुँवर गजराजसिंह रूपवान थे उदार थे, वलवान् थे, शिक्षित थे, विनोदप्रिय थे और प्रेम का अभिनय करना जानते थे, पर उनके जीवन मे प्रेम से कम्पित होने वाला तार न था । वसुधा का खिला हुआ यौवन और देवताओ को लुभाने वाला रूप-रग केवल विनोद का सामान था । घुडदौड ओर शिकार, सट्टे और मवार जैसे तामसी पैदा करने वाले मनोरजनो मे प्रेम दवकर पीला और निर्जीव हो गया था और प्रेम से वंचित होकर वसुधा की प्रेम-तृष्णा अव अपने भाग्य को रोया करती थी ।

दो पुत्र-रत्न पाकर भी वह सुखी न थी। कुँवर साहव, एक महीने से ज्यादा हुआ, शिकार खेलने गए और अभी तक लौटकर नही आए। और यह ऐसा, पहला ही अवसर न था। हा, अव उनकी अवधि वढ गई थी। पहले वह एक सप्ताह मे लौट आते थे, फिर दो सप्ताह का नम्वर चला और अव कई वार से एक-एक महीने मे खवर लेने लगे। साल मे तीन-चार महीने शिकार की भेंट हो जाते थे। शिकार से लौटते तो घुडदौड का राग छिडता। कभी मेरठ, कभी पूना, कभी वम्वई, कभी कलकत्ता। घर पर भी रहते, तो अधिकार लम्पट रईस-जादो के साथ गप्पें उडाया करते। पति के यह रग-ढंग देखकर वसुधा मन-ही-मन कुढती और घुलती जाती थी। कुछ दिनो से हलका-हलका ज्वर भी रहने लगा था।

वसुधा वडी देर तक वैठी उदास आखो से यह दृश्य देखती रही। फिर टेली-फोन पर आकर उसने रियासत के मैनेजर से पूछा—कुँवर साहव का कोई पत्र आया?

फोन ने जवाव दिया—जी हा, अभी खत आया है। कुँवर साहव ने एक वहुत वडे शेर को मारा है।

वसुधा ने जलकर कहा—मैं यह नही पूछती! आने को कव लिखा है?

आने के वारे मे तो कुछ नही लिखा।'

'यहा से उनका पडाव कितनी दूर है?'

'यहा से! दो सौ मील से कम न होगा। पीलीभीत के जंगलो मे शिकार हो रहा है।'

'मेरे लिए दो मोटरो का इन्तजाम कर दीजिए। मैं आज वहा जाना चाहती हूँ।'

फोन ने कई मिनट वाद जवाव दिया—एक मोटर तो वे साथ ले गए हैं। एक हाकिम जिला के वगले पर भेज दी गई, तीसरी वैंक के मैनेजर की सवारी मे। चौथी की मरम्मत हो रही है।

वसुधा का चेहरा क्रोध से तमतमा उठा। वोली—किसके हुक्म से वैंक के मैनेजर और हाकिम जिला को मोटरें भेजी गईं? आप दोनो मँगवा लीजिए। मैं आज जरूर जाऊँगी।

'उन दोनो साहवो के पास हमेशा मोटरें भेजी जाती रही हैं, इसलिए मैंने भेज दी। अव आप हुक्म दे रही हैं, तो मँगवा लूगा।'

वसुधा ने फोन से आकर सफर का सामान ठीक करना शुरू किया। उसने उसी आवेश मे आकर अपना भाग्य-निर्णय करने का निश्चय कर लिया था। परित्यक्ता की भांति पडी रहकर वह जीवन समाप्त न करना चाहती थी। वह जाकर कुँवर साहव से कहेगी, अगर आप यह समझते है कि मैं आपकी सम्पत्ति

की लौंडी बनकर रहूँ, तो यह मुझसे न होगा। आपकी सम्पत्ति आपको मुबारक हो! मेरा अधिकार आपकी सम्पत्ति पर नहीं, आपके ऊपर है। अगर आप मुझसे जौ-भर हटना चाहते हैं, तो मैं आपसे हाथ-भर हट जाऊँगी। इस तरह की और कितनी ही विराग-भरी बातें उसके मन में बगूलों की भांति उठ रही थीं।

डाक्टर साहब ने द्वार पर पुकारा—मैं अन्दर आऊँ?

वसुधा ने नम्रता से कहा—आज क्षमा कीजिए, मैं जरा पीलीभीत जा रही हूँ।

डाक्टर ने आश्चर्य से कहा—आप पीलीभीत जा रही हैं! आपका ज्वर बढ़ जाएगा। इस दशा में मैं आपको जाने की सलाह न दूँगा।

वसुधा ने विरक्त स्वर में कहा—बढ़ जाएगा, बढ़ जाए, मुझे इसकी चिंता नहीं है।

वृद्ध डाक्टर परदा उठाकर अन्दर आ गया और वसुधा के चेहरे की ओर ताकता हुआ बोला—लाइए मैं टेम्परेचर ले लूँ। अगर टेम्परेचर बढ़ा होगा, तो मैं आपको हरगिज न जाने दूँगा।

'टेम्परेचर लेने की जरूरत नहीं। मेरा इरादा पक्का हो गया है।'

'स्वास्थ्य पर ध्यान रखना आपका पहला कर्तव्य है।'

वसुधा ने मुस्कराकर कहा—आप निश्चिन्त रहिए, मैं इतनी जल्द मरी नहीं जा रही हूँ। फिर अगर किसी बीमारी की दवा मौत ही हो, तो आप क्या करेंगे?

डाक्टर ने दो-एक बार और आग्रह किया, फिर विस्मय से सिर हिलाता चला गया।

2

रेलगाड़ी से जाने में आखिरी स्टेशन से दस कोस तक जंगली सुनसान रास्ता तय करना पड़ता था, इसलिए कुँवर साहब बराबर मोटर ही पर जाते थे। वसुधा ने भी उसी मार्ग से जाने का निश्चय किया। दस बजते-बजते दोनों मोटरें आयीं। वसुधा ने ड्राइवरों पर गुस्सा उतारा—अब मेरे हुक्म के बगैर कहीं मोटर ले गए, तो मोटर का किराया तुम्हारी तरफ से काट लूंगी। अच्छी दिल्लगी है! घर की रोएँ, वन की खाएँ! हमने अपने आराम के लिए मोटरें रखी हैं, किसी की खुशामद करने के लिए नहीं। जिसे मोटर पर सवार होने का शौक हो, मोटर खरीदे। यह नहीं कि हलवाई की दूकान देखी और दादे का फातिहा पढ़ने

दूर हौवा को मारने जा रही हैं तो उनका यात्रा-प्रेम ठंडा पड़ा। वसुधा ने आज सुबह से उन्हें प्यार न किया था। उसने जलन मे सोचा—मैं ही क्यो इन्हे प्यार करूँ, क्या मैंने ही इनका ठेका लिया है। वह तो वहाँ जाकर चैन करें और मैं यहा इन्हे छाती से लगाए बैठी रहूँ, लेकिन चलते समय माता का हृदय पुलक उठा। दोनो को बारी-बारी से गोद मे लिया, चूमा, प्यार किया और घंटे भर मे लौट आने का वचन देकर वह सजल नेत्रो के साथ घर से निकली। मार्ग मे भी उसे बच्चो की याद बार-बार आती रही। रास्ते मे कोई गाव आ जाता है और छोटे-छोटे बालक मोटर की दौड देखने के लिए घरो से निकल आते और सडक पर खडे होकर तालिया बजाते हुए मोटर का स्वाग करते, तो वसुधा का जी चाहता, इन्हे गोद मे उठाकर प्यार कर लूं। मोटर जितने वेग से जा रही थी, उतने ही वेग से उसका मन सामने के वृक्ष-समूहो के साथ पीछे की ओर उडा जा रहा था। कई बार इच्छा हुई, घर लौट चलू। जब उन्हे मेरी रत्ती-भर परवाह नही है, तो मै ही क्यो उनकी फिक्र मे प्राण दू? जी चाहे आयँ या न आयँ, लेकिन एक बार पति से मिलकर उनसे खरी-खरी बात करने के प्रलोभन को न रोक सकी। सारी देह थककर चूर-चूर हो रही थी, ज्वर भी हो आया था, सिर पीडा से फटा पडता था, पर वह संकल्प से सारी बाधाओ को दबाए आगे बढती जाती थी। यहाँ तक कि जब वह दस बजे रात को जगल के उस डाक-बँगले मे पहुची, तो उसे तन-बदन की सुधि न थी। जोर का ज्वर चढा हुआ था।

3

शोफर की आवाज सुनते ही कुवर साहब निकल आए और पूछा—तुम यहां कैसे आये जी? कुशल तो है?

शोफर ने समीप आकर कहा—रानी साहब आयी है हुजूर! रास्ते मे बुखार हो आया। बेहोश पडी हुई हैं।

कुवर साहब ने वहीं खडे, कठोर स्वर मे पूछा—तो तुम उन्हे वापस क्यो न ले गये? क्या तुम्हे मालूम नही था, यहा कोई वैद्य-हकीम नही है?

शोफर ने सिटपिटाकर जवाब दिया—हुजूर, वह किसी तरह मानती ही न थीं, तो मैं क्या करता?

कुंवर साहब ने डाटा—चुप रहो जी, बातें न बनाओ! तुमने समझा होगा, शिकार की बहार देखेंगे और पडे-पडे सोयेगे। तुमने वापस चलने को कहा ही न होगा।

शोफर—वह मुझे डाटती थी हुजूर!

'तुमने कहा था?'

'मैंने कहा तो नही हुजूर?'

'वस, तो चुप रहो। मैं तुमको भी पहचानता हूँ। तुम्हें मोटर लेकर इसी वक्त लौटना पडेगा। और कौन-कौन साथ है ?'

शोफर ने दवी हुई आवाज मे कहा—एक मोटर पर बिस्तर और कपडे हैं। एक पर खुद रानी साहव हैं।

'यानी और कोई साथ नही है ?'

'हुजूर ! मैं तो हुक्म का तावेदार हूँ।'

'वस, चुप रहो !'

यो झल्लाते हुए कुंवर साहव वसुधा के पास गए और आहिस्ता से पुकारा। जव कोई जवाव न मिला, तो उन्होंने धीरे से उसके माथे पर हाथ रखा। सिर गर्म तवा हो रहा था ! उस ताप ने मानो उनकी सारी क्रोध-ज्वाला को खीच लिया। लपककर वँगले मे आये, सोए हुए आदमियो को जगाया, पलँग विछ-वाया, अचेत वसुधा को गोद मे उठाकर कमरे मे लाये और लिटा दिया। फिर उसके सिरहाने खडे होकर उसे व्यथित नेत्रो से देखने लगे। उस धूल मे भरे मुखमण्डल और विखरे हुए रज-रजित केशो मे आज उन्होंने आग्रहमय प्रेम की झलक देखी। अव तक उन्होने वसुधा को विलासिनी के रूप मे देखा था, जिसे उनके प्रेम की परवाह न थी, जो अपने वनाव-सिगार ही मे मगन थी, आज धूल के पाऊडर और पोमेड मे वह उसके नारीत्व का दर्शन कर रहे थे। उसमे कितना आग्रह था, कितनी लालसा थी, अपनी उडान के आनन्द मे डूवी हुई, अव वह पिंजरे के द्वार पर आकर पख फडफडा रही थी। पिंजरे का द्वार खुलकर क्या उसका स्वागत न करेगा ?

रसोइए ने पूछा—क्या सरकार अकेले आयी है ?

कुँवर साहव ने कोमल कठ से कहा—हाँ जी, और क्या। इतने आदमी हैं, किसी को साथ न लिया। आराम से रेलगाडी से आ सकती थी। यहाँ से मोटर भेज दी जाती। मन ही तो है। कितने जोर का वुखार है कि हाथ नही रखा जाता। जरा-सा पानी गर्म करो और देखो, कुछ खाने को वना लो।

रसोइए ने ठकुरसोहाती की—सौ कोस की दौड बहुत होती है सरकार ! सारा दिन वैठे-वैठे वीत गया।

कुँवर साहव ने वसुधा के सिर के नीचे तकिया सीधा करते कहा—मोटर तो हम लोगो का निकल जाता है। दो दिन तक कमर नहीं सीधी होती, फिर इनकी क्या वात है। ऐसी वेहूदा सडक दुनिया मे न होगी।

यह कहते हुए उन्होंने एक शीशी से तेल निकाला और वसुधा के सिर मे मलने लगे।

4

वसुधा का ज्वर इक्कीस दिन तक न उतरा। घर से डाक्टर आये। दोनो बालक, मुनिया, नौकर-चाकर, सभी आ गए। जगल मे मगल हो गया।

वसुधा खाट पर पडे-पडे कुँवर साहब की शुश्रूषा मे अलौकिक आनन्द और सतोष का अनुभव किया करती। वह दोपहर दिन चढे तक सोने के आदी थे, कितने सवेरे उठते, उसके पथ्य और आराम की जरा-जरा-सी बातो का कितना खयाल रखते। जरा देर के लिए स्नान और भोजन करने जाते, फिर आकर बैठ जाते। तपस्या-सी कर रहे थे। उनका स्वास्थ्य बिगडता जाता था, चेहरे पर वह स्वास्थ्य की लाली न थी। कुछ व्यस्त-से रहते थे।

एक दिन वसुधा ने कहा – तुम आजकल शिकार खेलने क्यो नही जाते ? मैं तो शिकार खेलने ही आयी थी, मगर न जाने किस बुरी साइत से चली कि तुम्हे इतनी तपस्या करनी पड गई। अब मैं बिलकुल अच्छी हूँ। जरा आईने मे अपनी सूरत तो देखो !

कुँवर साहब को इतने दिनो शिकार का अभी ध्यान ही न आया था। इसकी चर्चा ही न होती थी। शिकारियो का आना-जाना, मिलना जुलना बन्द था। एक बार साथ के एक शिकारी ने किसी शेर का जिक्र किया था। कुँवर साहब ने उसकी ओर कुछ ऐसी कडवी आँखो से देखा कि वह सूख-सा गया। वसुधा के पास बैठने, उससे कुछ बातें करके उसका मन बहलाने, दवा और पथ्य बनाने मे उन्हे आनन्द मिलता था। उनका भोग-विलास जीवन के इस कठोर व्रत मे जैसे बुझ गया। वसुधा की एक हथेली पर अँगुलियो से रेखा खीचने मे मग्न थे। शिकार की बात किसी और के मुँह से सुनी होती, तो फिर उन्ही आग्नेय नेत्रो से देखते। वसुधा के मुँह से यह चर्चा सुनकर उन्हे दु:ख हुआ। वह उन्हे इतना शिकार का आसक्त समझती है ! अमर्ष भरे स्वर मे बोले—हाँ, शिकार खेलने का इससे अच्छा और कौन अवसर मिलेगा !

वसुधा ने आग्रह किया—मैं तो अब अच्छी हूँ, सच ! देखो (आईने की ओर दिखाकर) मेरे चेहरे पर पीलापन नही रहा। तुम अलबत्ता बीमार से होते जा रहे हो। जरा मन बहल जाएगा। बीमार के पास बैठने से आदमी सचमुच बीमार हो जाता है।

वसुधा ने तो साधारण-सी बात कही थी, पर कुँवर साहब के हृदय पर वह चिनगारी के समान लगी। इधर वह अपने शिकार के खब्त पर कई बार पछता चुके थे। अगर वह शिकार के पीछे यो न पडते, तो वसुधा यहाँ क्यो आती और क्यो बीमार पडती ? उन्हे मन-ही-मन इसका बडा दु:ख था। इस वक्त कुछ

न वोले। शायद कुछ वोला ही न गया। फिर वसुधा की हथेली पर रेखाएँ बनाने लगे।

वसुधा ने उसी सरल भाव से कहा—अव की तुमने क्या-क्या तोहफे जमा किए, जरा मँगाओ, देखूँ। उनमे जो सवसे अच्छा होगा, उसे मैं ले लूँगी। अव की मैं भी तुम्हारे साथ शिकार खेलने चलूँगी। वोलो, मुझे ले चलोगे न ? मैं मानूँगी नही। वहाने मत करने लगना।

अपने शिकारी तोहफे दिखाने का कुंवर साहव को मरज था। सैकड़ो ही खालें जमा कर रखी थी। उनके कई कमरो मे फर्श, गद्दे, कोच, कुर्सियाँ, मोढे सव खालो ही के थे। ओढना और विछौना भी खालो ही का था। वाघम्वरो के कई सूट वनवा रखे थे। शिकार मे वही सूट पहनते थे। अव की भी वहुत से सीग, सिर, पजे, खालें जमा कर रखी थी। वसुधा का इन चीजो से अवश्य मनोरंजन होगा। यह न समझे कि वसुधा ने सिंहद्वार से प्रवेश न पाकर चोर दरवाजे से घुसने का प्रयत्न किया है। जाकर वह चीजें उठवा लाए, लेकिन आदमियो को परदे की आड मे खडा करके पहले अकेले ही उसके पास गये। डरते थे, कही मेरी उत्सुकता वसुधा को वुरी न लगे।

वसुधा ने उत्सुक होकर पूछा—चीजे लाए ?

'लाया हूँ, मगर कही डाक्टर साहव न आ जायें।'

'डाक्टर ने पढने-लिखने को मना किया था।'

तोहफे लाए गए। कुंवर साहव एक-एक चीज निकालकर दिखाने लगे। वसुधा के चेहरे पर हर्ष की ऐसी लाली हफ्तो से न दिखी थी, जैसे कोई वालक तमाशा देखकर मगन हो रहा हो। वीमारी के वाद हम वच्चो की तरह जिद्दी, उतने ही आतुर, उतने ही सरल हो जाते हैं। जिन कितावो मे कभी मन न लगा हो, वह वीमारी के वाद पढी जाती है। वसुधा जैसे उल्लास की गोद मे खेलने लगी। चीतो की खालें थी, वाघो की, मृगो की, सूअरो की। वसुधा हरेक खाल को नई उमग से देखती, जैसे वायस्कोप के एक चित्र के वाद दूसरा आता है, कुवर साहव एक-एक तोहफे का इतिहास सुनाने लगे। यह जानवर कैसे मारा गया, उसके मारने मे क्या-क्या वाधाए पडी, क्या-क्या उपाय करने पडे, पहले कहाँ गोली लगी आदि। वसुधा हरेक की कथा आँखे फाड-फाड़कर सुन रही थी। इतनी सजीवता, स्फूर्ति, आनन्द उसे आज तक किसी सिनेमा, सर्कस या आमोद मे भी न मिला था। सवसे सुन्दर एक सिंह की खाल थी। वही उसने छाँटी।

कुंवर साहव की यह सवसे वहुमूल्य वस्तु थी। इसे अपने कमरे मे सजाने को रखे हुए थे। वोले—तुम वाघम्वरो मे से कोई ले लो। यह तो कोई अच्छी चीज नही है।

वसुधा ने खाल को अपनी ओर खीचकर कहा—रहने दीजिए अपनी सलाह। मैं खराव ही लूगी।

कुंवर साहव ने जैसे अपनी आँखो से आसू पोछकर कहा—तुम वही ले लो, मैं तो तुम्हारे ख्याल से कह रहा था। मैं फिर वैसे ही मार लूगा।

'तो तुम मुझे चकमा क्यो देते थे ?'

'चकमा कौन देता था ?'

'अच्छा खाओ मेरे सिर की कसम, कि यह सवसे सुन्दर खाल नही है ?'

कुंवर साहव ने हार की हँसी हँसकर कहा—कसम क्यो खाएँ, इस एक खाल के लिए ? ऐसी-ऐसी एक लाख खाले हो, तो तुम्हारे ऊपर न्योछावर कर दूं।

जब शिकारी सव खालें लेकर चला गया, तो कुंवर साहव ने कहा—मै इस खाल पर काले ऊन से अपना समर्पण लिखूंगा।

वसुधा ने थकन से पलँग पर लेटे हुए कहा—अव मैं भी शिकार खेलने चलूगी।

फिर वह सोचने लगी, वह भी कोई शेर मारेगी और उसकी खाल पतिदेव को भेट करेगी। उस पर लाल ऊन से लिखा जाएगा—प्रियतम!

जिस ज्योति के मंद पड जाने से हरेक व्यापार, हरेक व्यजन पर अधकार-सा छा गया था, वह ज्योति अव प्रदीप्त होने लगी थी।

5

शिकारो का वृत्तात सुनने की वसुधा को चाट-सी पड गई। कुवर साहव को कई-कई वार अपने अनुभव सुनाने पडे। उसका सुनने से जी ही न भरता था। अव तक कुंवर साहव का ससार अलग था, जिसके दु ख-सुख, हानि-लाभ, आशा-निराशा मे वसुधा को कोई सरोकार न था। वसुधा को इस संसार के व्यापार से कोई रुचि न थी, वल्कि अरुचि थी। कुंवर साहव इस पृथक् ससार की वातें उससे छिपाते थे; पर अव वसुधा उनके इस ससार मे एक उज्ज्वल प्रकाश, एक वरदानोवाली देवी के समान हो गई थी।

एक दिन वसुधा ने आग्रह किया—मुझे वदूक चलाना सिखा दो।

डाक्टर साहव की अनुमति मिलने मे विलम्व न हुआ। वसुधा स्वस्थ हो गई थी। कुंवर साहव ने शुभ मुहूर्त्त मे उसे दीक्षा दी। उस दिन से जव देखो, वृक्षो की छाँह मे खडी निशाने का अभ्यास कर रही है और कुंवर साहव खडे उसकी परीक्षा ले रहे हैं।

जिस दिन उसने पहली चिड़िया मारी, कुंवर साहव हर्ष से उछल पड़े।

नौकरो को इनाम दिये गए, ब्राह्मणो को दान दिया गया। इस आनन्द की शुभ स्मृति मे उस पक्षी की ममी बनाकर रखी गई।

वसुधा के जीवन मे एक नया उत्साह, एक नया उल्लास, एक नई आशा थी। पहले की भाँति उसका वचित हृदय अशुभ कल्पनाओ से ग्रस्त न था। अब उसमे विश्वास था, बल था, अनुराग था।

6

कई दिनो के बाद वसुधा की साध पूरी हुई। कुँवर साहब उसे साथ लेकर शिकार खेलने पर राजी हुए और शिकार था शेर का और शेर भी वह, जिसने इधर एक महीने से आसपास के गाँवो मे तहलका मचा दिया था।

चारो तरफ अधकार था, ऐसा सघन कि पृथ्वी उसके भार से कराहती हुई जान पडती थी। कुँवर साहब और वसुधा एक ऊँचे मचान पर बदूके लिये दम साधे हुए बैठे थे। यह बहुत भयकर जतु था। अभी पिछली रात को वह एक सोते हुए आदमी को खेत मे मचान पर से खीचकर ले भागा था। उसकी चालाकी पर लोग दाँतो अगुली दबाते थे। मचान इतना ऊँचा था कि चीता उछलकर न पहुच सकता था। हाँ, उसने यह देख लिया कि वह आदमी मचान पर बाहर की तरफ सिर किए सो रहा है। दुष्ट को एक चाल सूझी। वह पास के गाँव मे गया और वहाँ से एक लम्बा बाँस उठा लाया। बाँस के एक सिरे को को उसने दाँतो से कुचला और जब उसकी कूची-सी बन गई, तो उसे न जाने अगले पजो या दाँतो से उठाकर सोनेवाले आदमी के बालो मे फिराने लगा। वह जानता था, बाल बाँस के रेशो मे फँस जाएगे। एक झटके मे वह अभागा आदमी नीचे आ रहा। इसी मानुस-भक्षी चीते की घात मे दोनो शिकारी बैठे हुए थे। नीचे कुछ दूर पर भैसा बाँध दिया गया था और शेर के आने की राह देखी जा रही थी। कुँवर साहब शांत थे, पर वसुधा की छाती धडक रही थी। जरा-सा पत्ता भी खड़कता तो वह चौक पडती और बदूक सीधी करने के बदले चौककर कुँवर साहब से चिमट जाती। कुँवर साहब बीच-बीच मे उसकी हिम्मत बंधाते जाते थे।

'ज्यो ही भैसे पर आया, मैं उसका काम तमाम कर दूंगा। तुम्हारी गोली की नौबत ही न आने पाएगी।'

वसुधा ने सिहरकर कहा—और जो कही निशाना चूक गया तो उछलेगा?

'तो फिर दूसरी गोली चलेगी। तीनो बन्दूके तो भरी तैयार रखी हैं। तुम्हारा जी घबडाता तो नही?'

'बिल्कुल नही। मैं तो चाहती हूँ, पहला मेरा निशाना होता।'

पत्ते खड़खड़ा उठे। वसुधा चौंककर पति के कंधो से लिपट गई। कुँवर

साहब ने उसकी गर्दन मे हाथ डालकर कहा—दिल मजबूत करो प्रिये ।

वसुधा ने लज्जित होकर कहा—नही-नही, मैं डरती नही, जरा चौंक पडी थी ।

सहसा भैंसे के पास दो चिनगारियाँ-सी चमक उठी । कुँवर साहब ने धीरे से वसुधा का हाथ दबाकर शेर के आने की सूचना दी और सतर्क हो गए जब शेर भैंसे पर आ गया, तो उन्होंने निशाना मारा । खाली गया । दूसरा फायर किया । चीता जखमी तो हुआ, पर गिरा नही । क्रोध से पागल होकर इतने जोर से गरजा कि वसुधा का कलेजा दहल उठा । कुँवर साहब तीसरा फायर करने जा रहे थे कि चीते ने मचान पर जस्त मारी । उसके अगले पजो के धक्के से मचान ऐसा हिला कि कुँवर साहब हाथ मे बन्दूक लिए झोके से नीचे गिर पडे । कितना भीपण अवसर था ! अगर एक पल का भी विलम्ब होता तो कुँवर साहब की खैरियत न थी । शेर की जलती हुई आँखें वसुधा के सामने चमक रही थी । उसकी दुर्गन्धमय सास देह मे लग रही थी । हाथ-पाँव फूले हुए थे । आँतें भीतर को सिकुडी जा रही थी, पर इस खतरे ने जैसे उसकी नाडियो मे बिजली भर दी । उसने अपनी बन्दूक सँभाली । शेर के और उसके बीच मे दो हाथ से ज्यादा अन्तर न था । वह उचककर आया ही चाहता था कि वसुधा ने बन्दूक की नली उसकी आँखो मे डालकर बन्दूक छोडी । धायँ ! शेर के पजे ढीले पडे । नीचे गिर पडा ।

अब समस्या और भीपण थी । शेर से तीन ही चार कदम पर कुँवर साहब गिरे थे । शायद चोट ज्यादा आई हो । शेर मे अगर अभी दम है, तो वह उन पर जरूर वार करेगा । वसुधा के प्राण आँखो मे थे और बल कलाइयो मे । इस वक्त कोई उसकी देह मे भाला भी चुभा देता, तो उसे खबर न होती । वह अपने होश मे न थी । उसकी मूर्च्छा ही चेतना का काम कर रही थी । उसने बिजली की बत्ती जलायी । देखा, शेर उठने की चेष्टा कर रहा है । दूसरी गोली सिर पर मारी और उसके साथ ही रिवाल्वर लिये नीचे कूदी । शेर जोर से गुर्राया । वसुधा ने उसके मुँह के सामने रिवाल्वर खाली कर दिया । कुँवर साहब सँभलकर खडे हो गए । दौडकर उसे छाती से चिपटा लिया । अरे ! यह क्या ! वसुधा बेहोश थी । भय उसके प्राणो को मुट्ठी मे लिए उसकी आत्मरक्षा कर रहा था । भय के शाँत होते ही मूर्च्छा आ गई ।

7

तीन घटो के बाद वसुधा की मूर्च्छा टूटी । उसकी चेतना अब भी उसी भय-प्रद परिस्थितियो मे विचर रही थी । उसने धीरे से डरते-डरते आखें खोली । कुँवर साहब ने पूछा—कैसा जी है प्रिये ?

वसुधा ने उनकी रक्षा के लिए दोनो हाथो का घेरा बनाते हुए कहा—वहा से हट जाओ। ऐसा न हो, झपट पडे।

कुँवर साहब ने हँसकर कहा—शेर कब का ठडा हो गया। वह बरामदे मे पडा है। ऐसे डील-डौल का और इतना भयकर सिंह मैने नही देखा।

वसुधा—तुम्हे चोट तो नही आई?

कुँवर—बिलकुल नही, तुम कूद क्यो पडी? पैरो मे बडी चोट आई होगी। तुम कैसे बची, यह आश्चर्य है। मै तो इतनी ऊँचाई से कभी न कूद सकता।

वसुधा ने चकित होकर कहा —मै! मै कहाँ कूदी? शेर मचान पर आया, इतना याद है। इसके बाद क्या हुआ, मुझे कुछ याद नही।

कुँवर को भी विस्मय हुआ—वाह! तुमने उस पर दो गोलियाँ चलाई। जब वह नीचे गिरा, तो तुम भी कूद पडी और उसके मुँह मे रिवाल्वर की नली ठूँस दी। बस, वही ठडा हो गया। बडा बेहया जानवर था। अगर तुम चूक जाती, तो वह नीचे आते ही मुझ पर जरूर चोट करता। मेरे पास तो छुरी भी न थी। बन्दूक हाथ से छूटकर दूसरी तरफ गिर गई थी। अँधेरे मे कुछ सुझाई न देता था। तुम्हारे ही प्रसाद से इस वक्त मै यहा खडा हूँ। तुमने मुझे प्राणदान दिया।

दूसरे दिन प्रात काल यहाँ से कूच हुआ।

8

जो घर वसुधा को फाडे खाता था, उसमे आज जाकर ऐसा आनन्द आया, जैसे किसी बिछुडे मित्र से मिली हो। हरेक वस्तु उसका स्वागत करती हुई मालूम होती थी। जिन नौकरो और लौंडियो से वह महीनो स सीधे मुह न बोली थी, उनसे वह आज हँस-हँसकर कुशल पूछती और गले मिलती थी, जैसे अपनी पिछली रुखाइयो की पटौती कर रही हो।

सध्या का सूर्य, आकाश के स्वर्ण-सागर मे अपनी नौका खेता हुआ चला जा रहा था। वसुधा खिडकी के सामने कुरसी पर बैठकर सामने का दृश्य देखने लगी। उस दृश्य म आज जीवन था, विकास था, उन्माद था। केवट का वह सूना झोपडा भी आज कितना सुहावना लग रहा था। प्रकृति मे मोहनी भरी हुई थी।

मन्दिर के सामने मुनिया राजकुमारो को खिला रही थी। वसुधा के मन मे आज कुलदेव के प्रति श्रद्धा जागृत हुई, जो बरसो से पडी सो रही थी। उसने पूजा के सामान मँगवाए और पूजा करने चली। आनन्द से भरे भण्डार से अब वह दान भी कर सकती थी। जलते हुए हृदय से ज्वाला के सिवा और क्या

निकलता !

उसी वक्त कुँवर साहब आकर बोले—अच्छा, पूजा करने जा रही हो। मैं भी वहीं जा रहा था। मैंने एक मनौती मान रखी है।

वसुधा ने मुसकराती हुई आँखों से पूछा—कैसी मनौती है ?

कँवर साहब ने हँसकर कहा—यह न बताऊँगा।

सुभागी

और लोगो के यहाँ चाहे जो होता हो, तुलसी महतो अपनी लडकी सुभागी को लडके रामू से जौ-भर भी कम प्यार न करते थे। रामू जवान होकर भी काठ का उल्लू था। सुभागी ग्यारह साल की बालिका होकर भी घर के काम मे इतनी चतुर और खेती-बारी के काम मे इतनी निपुण थी कि उसकी माँ लक्ष्मी दिल मे डरती रहती कि कही लडकी पर देवताओ की आँख न पड जाए। अच्छे बालको से भगवान को भी तो प्रेम है। कोई सुभागी का बखान न करे, इसलिए वह अनायास ही उसे डाँटती रहती थी। बखान से लडके बिगड जाते है, यह भय तो न था, भय था—नजर का! वही सुभागी आज ग्यारह साल की उम्र मे विधवा हो गई।

घर मे कुहराम मचा हुआ था। लक्ष्मी पछाड खाती थी। तुलसी सिर पीटते थे। उन्हे रोते देखकर सुभागी भी रोती थी। बार-बार माँ से पूछती—क्यो रोती हो अम्माँ, मैं तुम्हे छोडकर कही न जाऊँगी, तुम क्यो रोती हो? उसकी भोली बात सुनकर माता का दिल और भी फटा जाता था। वह सोचती थी—ईश्वर, तुम्हारी यही लीला है! जो खेल खेलते हो, वह दूसरो को दुख देकर! ऐसा तो पागल करते हैं। आदमी पागलपन करे, तो उसे पागलखाने मे भेजते हैं, मगर तुम जो पागलपन करते हो, उसका कोई दण्ड नही। ऐसा खेल किस काम का कि दूसरे रोएँ और तुम हँसो। तुम्हे लोग दयालु कहते हैं। यही तुम्हारी दया है!

और सुभागी क्या सोच रही थी? उसके पास कोठरी-भर रुपये होते तो वह उन्हे छिपाकर रख देती। फिर एक दिन चुपके से बाजार चली जाती और अम्माँ के लिए अच्छे-अच्छे कपडे लाती, दादा जब बाकी मागने आते, तो चट रुपये निकालकर दे देती, अम्मा-दादा कितने खुश होते!

2

जब सुभागी जवान हुई तो लोग तुलसी महतो पर दबाव डालने लगे कि

लड़की का कहीं घर कर दो। जवान लड़की का यों फिरना ठीक नहीं। जब हमारी बिरादरी में इसकी कोई निंदा नहीं है, तो क्यों सोच-विचार करते हो?

तुलसी ने कहा—भाई, मैं तो तैयार हूँ, लेकिन जब सुभागी भी माने। वह तो किसी तरह राजी नहीं होती।

हरिहर ने सुभागी को समझाकर कहा—बेटी, हम तेरे ही भले की कहते हैं। माँ-बाप अब बूढ़े हुए, उनका क्या भरोसा? तुम इस तरह कब तक बैठी रहोगी?

सुभागी ने सिर झुकाकर कहा—चाचा, मैं तुम्हारी बात समझ रही हूँ, लेकिन मेरा मन घर करने को नहीं कहता। मुझे आराम की चिंता नहीं है। मैं सब कुछ झेलने को तैयार हूँ। और जो काम तुम कहो, वह सिर आँखों के बल करूँगी, मगर घर करने को मुझसे न कहो। जब मेरी चाल-कुचाल देखना, तो मेरा सिर काट लेना। अगर मैं सच्चे बाप की बेटी हूँगी, तो बात की भी पक्की हूँगी। फिर लज्जा रखने वाले तो भगवान है, मेरी क्या हस्ती है कि अभी कुछ कहूँ।

उजड्ड रामू बोला—तुम अगर सोचती हो कि भैया कमाएँगे और मैं बैठी मौज करूँगी, तो इस भरोसे न रहना। यहाँ किसी ने जनम-भर का ठीका नहीं लिया है।

रामू की दुल्हन रामू से भी दो अंगुल ऊँची थी। मटककर बोली—हमने किसी का करज थोड़े ही खाया है कि जनम-भर बैठे भरा करें। यहाँ तो खाने को भी महीन चाहिए, पहनने को भी महीन चाहिए, यह हमारे बूते की बात नहीं है।

सुभागी ने गर्व से भरे हुए स्वर में कहा—भाभी, मैंने तो तुम्हारा आसरा भी नहीं किया और भगवान ने चाहा तो कभी करूँगी भी नहीं। तुम अपनी देखो, मेरी चिन्ता न करो।

रामू की दुल्हन को जब मालूम हो गया कि सुभागी घर न करेगी, तो और भी उसके सिर हो गई। हमेशा एक-न-एक खुचड़ लगाए रहती। उसे रुलाने में जैसे उसको मजा आता था। वह बेचारी पहर रात से उठकर कूटने-पीसने में लग जाती, चौका-बरतन करती, गोबर पाथती, फिर खेत में काम करने चली जाती। दोपहर को आकर जल्दी-जल्दी खाना पकाकर सबको खिलाती। रात को कभी माँ के सिर में तेल डालती, कभी उसकी देह दबाती। तुलसी चिलम के भक्त थे। उन्हें बार-बार चिलम पिलाती। जहाँ तक उसका बस चलता, माँ-बाप को कोई काम न करने देती। हाँ, भाई को न रोकती। सोचती यह तो जवान आदमी है, यह न काम करेंगे, तो गृहस्थी कैसे चलेगी।

मगर रामू को यह बुरा लगता। अम्मा और दादा को तिनका तक नहीं

उठाने देती और मुझे पीसना चाहती है। यहाँ तक कि एक दिन वह जामे से बाहर हो गया। सुभागी से बोला—अगर उन लोगो का बडा मोह है, तो क्यो नही अलग लेकर रहती हो। तब सेवा करो तो मालूम हो कि सेवा कडवी लगती है कि मीठी। दूसरो के बल पर वाहवाही लेना आसान है। बहादुर वह है, जो अपने बल पर काम करे।

सुभागी ने तो कुछ जवाब न दिया। बात बढ जाने का भय था। मगर उसके माँ-बाप बैठे सुन रहे थे। महतो से न रहा गया। बोले—क्या है रामू, उस गरीबिन से क्यो लडते हो?

रामू पास आकर बोला—तुम क्यो बीच मे कूद पडे, मैं तो उनको कहता था।

तुलसी - जब तक मैं जीता हूँ, तुम उसे कुछ नही कह सकते। मेरे पीछे जो चाहे करना। बेचारी का घर मे रहना मुश्किल कर दिया।

रामू—आपको बेटी बहुत प्यारी है, तो उसे गले बाँधकर रखिए। मुझसे तो नही सहा जाता।

तुलसी—अच्छी बात है। अगर तुम्हारी यही मरजी है, तो यही होगा। मैं कल गाँव मे आदमियो को बुलाकर बँटवारा कर दूँगा। तुम चाहे छूट जाओ, सुभागी नही छूट सकती।

रात को तुलसी लेटे तो वह पुरानी बात याद आई, जब रामू के जन्मोत्सव मे उन्होंने रुपये कर्ज लेकर जलसा किया था, और सुभागी पैदा हुई, तो घर मे रुपये रहते हुए भी उन्होने एक कौडी न खर्च की। पुत्र को रत्न समझा था, पुत्री को पूर्व जन्म के पापो का दड। वह रत्न कितना कठोर निकला और वह दड कितना मगलमय।

3

दूसरे दिन महतो ने गाँव के आदमियो को जमा करके कहा—पचो, अब रामू का और मेरा एक मे निबाह नही होता। मैं चाहता हूँ कि तुम लोग इन्साफ से जो कुछ मुझे दे दो, वह लेकर अलग हो जाऊँ। रात-दिन की किचकिच अच्छी नही है।

गाँव के मुख्तार बाबू सजनसिह बडे सज्जन पुरुष थे। उन्होंने रामू को बुलाकर पूछा—क्यो जी, तुम अपने माँ-बाप से अलग रहना चाहते हो? तुम्हे शर्म नही आती कि औरत के कहने से माँ-बाप को अलग किए देते हो? राम! राम!

रामू ने ढिठाई के साथ कहा—जब एक मे न गुजर हो, तो अलग हो जाना ही अच्छा है।

सजनसिह—तुमको एक मे क्या कष्ट होता है?

रामू—एक बात हो तो बताऊँ।

सजन०—कुछ तो बतलाओ।

रामू—साहब, एक मे मेरा इनके साथ निबाह न होगा। बस, मैं और कुछ नही जानता।

यह कहता हुआ रामू वहाँ से चलता बना।

तुलसी—देख लिया आप लोगो ने इसका मिजाज! आप चाहे चार हिस्सों मे तीन हिस्से उसे दे दें, पर अब मैं इस दुष्ट के साथ न रहूँगा। भगवान् ने बेटी का दुख दे दिया, नही मुझे खेती-बारी लेकर क्या करना था। जहाँ रहता, वही कमा खाता! भगवान् ऐसा बेटा सातवें वैरी को भी न दें। 'लडके से लडकी भली, जो कुलवन्ती होय।'

सहसा सुभागी आकर बोली—दादा, यह सब बाँट-बखरा मेरे ही कारन तो हो रहा है, मुझे क्यो नही अलग कर देते? मैं मेहनत-मजूरी करके अपना पेट पाल लूगी। अपने से जो कुछ बन पडेगा, तुम्हारी सेवा करती रहूँगी, पर रहूँगी अलग। यो घर का बाराबाँट होना मुझसे नही देखा जाता। मैं अपने माथे पर यह कलक नही लेना चाहती।

तुलसी ने कहा - बेटी, हम तुझे न छोडेंगे, चाहे ससार छूट जाए! रामू का मुँह नही देखना चाहता, उसके साथ तो रहना दूर रहा

रामू की दुल्हन बोली—तुम किसी का मुह नही देखना चाहते, तो हम भी तुम्हारी पूजा करने को व्याकुल नही है।

4

बँटवारा होते ही महतो और लक्ष्मी को मानो पेंशन मिल गई। पहले तो दोनो सारे दिन, सुभागी के मना करने पर भी कुछ-न-कुछ करते ही रहते थे, पर अब उन्हे पूरा विश्राम था। पहले दोनो दूध-घी को तरसते थे। सुभागी ने कुछ रुपये बचाकर एक भैंस ले ली। बूढे आदमियो की जान तो उनका भोजन है। अच्छा भोजन न मिले तो वे किसके आधार पर रहे? चौधरी ने बहुत विरोध किया। कहने लगे, घर का काम यो ही क्या कम है कि तू नया झझट पाल रही है। सुभागी उन्हे बहलाने के लिए कहती—दादा, मुझे दूध के बिना खाना नही अच्छा लगता।

लक्ष्मी ने हँसकर कहा—बेटी, तू झूठ कब से बोलने लगी? कभी दूध हाथ से तो छूती नही, खाने की कौन कहे। सारा दूध हम लोगो के पेट मे ठूस देती है।

गाँव मे जहाँ देखो, सबके मुँह से सुभागी की तारीफ। लडकी नही, देवी है, जो मरदो का काम भी करती है, उस पर माँ-बाप की सेवा भी किए जाती है। सज्जनसिंह तो कहते, यह उस जन्म की देवी है।

मगर शायद महतो को यह सुख बहुत दिन तक भोगना न लिखा था।

सात-आठ दिन से महतो को जोर का ज्वर चढ़ा हुआ है। देह पर कपड़े का तार भी नही रहने देते। लक्ष्मी पास बैठी रो रही है। सुभागी पानी लिये खड़ी है। अभी एक क्षण पहले महतो ने पानी माँगा था; पर जब तक वह पानी लाये, उनका जी डूब गया और हाथ-पाँव ठंडे हो गए। सुभागी उनकी यह दशा देखते ही रामू के घर गयी और बोली—भैया, चलो देखो, आज दादा न जाने कैसे हुए जाते है। सात दिन से जुर नही उतरा।

रामू ने चारपाई पर लेटे-लेटे कहा—तो क्या मैं डाक्टर-हकीम हूँ कि देखने चलू ? जब तक अच्छे थे, तब तक तो तुम उनके गले का हार बनी हुई थी। अब जब मरने लगे तो मुझे बुलाने आयी हो!

उसी वक्त उसकी दुल्हन अन्दर से निकल आयी और सुभागी से पूछा—दादा को क्या हुआ है दीदी ?

सुभागी के पहले रामू बोल उठा—हुआ क्या है, अभी कोई मरे थोड़े ही जाते है।

सुभागी ने फिर उससे कुछ न कहा, सीधे सजनसिंह के पास गयी। उसके जाने के बाद रामू हँसकर स्त्री से बोला—त्रियाचरित्र इसी को कहते है।

स्त्री—इसमें त्रियाचरित्र की कौन बात है ? चले क्यों नही जाते ?

रामू—मैं नही जाने का। जैसे लेकर अलग हुए थे, वैसे उसे लेकर रहें। मर भी जाएँ तो न जाऊँ।

स्त्री—(हँसकर) मर जाएँगे तो आग देने तो जाओगे, तब कहाँ भागोगे ?

रामू—कभी नही! सब-कुछ उनकी प्यारी सुभागी कर लेगी।

स्त्री—तुम्हारे रहते वह क्यो करने लगी!

रामू—जैसे मेरे रहते उसे लेकर अलग हुए और कैसे।

स्त्री—नही जी, यह अच्छी बात नही है। चलो, देख आएँ। कुछ भी हो, बाप ही तो हैं। फिर गाँव मे कौन मुह दिखाओगे ?

रामू—चुप रहो, मुझे उपदेश मत दो।

उधर बाबू साहब ने ज्यों ही महतो की हालत सुनी, तुरन्त सुभागी के साथ चले आये। यहाँ पहुँचे तो महतो की दशा और भी खराब हो चुकी थी। नाड़ी देखी तो बहुत धीमी थी। समझ गए कि जिन्दगी के दिन पूरे हो गए। मौत का आतंक छाया हुआ था। सजल नेत्र होकर बोले—महतो भाई कैसा जी है ?

महतो जैसे नींद से जागकर बोले—बहुत अच्छा है भैया! अब तो चलने की बेला है। सुभागी के पिता अब तुम्ही हो। उसे तुम्ही को सौंपे जाता हूँ।

सजनसिंह ने रोते हुए कहा—भैया महतो, घबड़ाओ मत। भगवान् ने चाहा तो तुम अच्छे हो जाओगे। सुभागी को तो मैंने हमेशा अपनी बेटी समझा है

और जब तक जिऊँगा, ऐसा ही समझता रहूँगा। तुम निश्चित रहो, मेरे रहते सुभागी या लक्ष्मी को कोई तिरछी आँख से न देखेगा। और इच्छा हो तो वह भी कह दो।

महतो ने विनीत नेत्रो से देखकर कहा—और कुछ नही कहूँगा भैया! भगवान् तुम्हे सदा सुखी रखे।

सजन०—रामू को बुला दू। उससे जो भूल-चूक हुई हो, क्षमा कर दो।

महतो—नही भैया। उस पापी हत्यारे का मुँह मैं नही देखना चाहता।

इसके बाद गोदान की तैयारियाँ होने लगी।

5

रामू को गाव-भर ने समझाया, पर वह अत्येष्टि करने पर राजी न हुआ। कहा, जिस पिता ने मरते समय भी मेरा मुह देखना स्वीकार न किया, न वह मेरा पिता है, न मै उसका पुत्र।

लक्ष्मी ने दाहक्रिया की। इन थोडे से दिनो मे सुभागी ने न जाने कैसे रुपये जमा कर लिये थे कि जब तेरहवी का सामान आने लगा, तो गाँववालो की आखे खुल गईं। बरतन, कपडे, घी, शक्कर, सभी सामान इफरात से जमा हो गए। रामू देख-देख जलता था और सुभागी उसे जलाने ही के लिए सबको यह सामान दिखाती थी।

लक्ष्मी ने कहा—बेटी, घर देखकर खर्च करो। अब कोई करनेवाला नही बैठा है। आप कुआँ खोदना और पानी पीना है।

सुभागी बोली—बाबूजी का काम तो धूम-धाम से ही होगा अम्माँ, चाहे घर रहे या जाए। बाबूजी फिर थोडे ही आएँगे। मै भैया को दिखा देना चाहती हूँ कि अबला क्या कर सकती है। वह समझते होगे, इन दोनो के किए कुछ न होगा। उनका यह घमड तोड दूगी।

लक्ष्मी चुप हो रही। तेरहवी के दिन आठ गाँव के ब्राह्मणो का भोज हुआ। चारो तरफ वाह-वाह मच गई।

पिछले पहर का समय था; लोग भोजन करके चले गए थे। लक्ष्मी थक कर सो गई थी। केवल सुभागी बची हुई चीजे उठा-उठाकर रख रही थी कि ठाकुर सजनसिह ने आकर कहा— अब तुम भी आराम करो बेटी। सवेरे यह सब काम कर लेना।

सुभागी ने कहा—अभी थकी नही हूँ दादा। आपने जोड लिया कुल कितने रुपये उठे?

सजन०—वह पूछकर क्या करोगी बेटी?

'कुछ नही, यो ही पूछती थी।'

'कोई तीन सौ रुपये उठे होंगे।'

सुभागी ने सकुचाते हुए कहा—मैं इन रुपयो की देनदार हूँ।

'तुमसे तो मैं माँगता नही। महतो मेरे मित्र और भाई थे। उनके साथ कुछ मेरा भी तो धर्म है।'

'आपकी यही दया क्या कम है कि आपने मेरे ऊपर इतना विश्वास किया, मुझे कौन 300 रु० दे देता।'

सजनसिह सोचने लगे, इस अवला की धर्म बुद्धि का कही वारापार भी है या नही।

6

लक्ष्मी उन स्त्रियो मे थी, जिनके लिए पति-वियोग जीवन-स्रोत का बद हो जाना है। पचास वर्ष के चिर सहवास के वाद अब यह एकात जीवन उसके लिए पहाड हो गया। अब उसे ज्ञात हुआ कि मेरी बुद्धि मेरा बल, मेरी सुमति, मानो मैं सबसे वंचित हो गई।

उसने कितनी वार ईश्वर से विनती की थी, मुझे स्वामी के सामने उठा लेना, मगर उसने यह विनती स्वीकार न की। मौत पर अपना काबू नही तो क्या जीवन पर भी काबू नही है?

वह लक्ष्मी, जो गाँव मे अपनी बुद्धि के लिए मशहूर थी, जो दूसरो को सीख दिया करती थी, अब बौडही हो गई है। सीधी-सी वात करते नही बनती।

लक्ष्मी का दाना-पानी उसी दिन से छूट गया। सुभागी के आग्रह पर चौके मे जाती, मगर कौर कठ के नीचे न उतरता। पचास वर्ष हुए, एक दिन भी ऐसा न हुआ कि पति के विना खाए उसने खुद खाया हो। अब उस नियम को कैसे तोडे?

आखिर उसे खाँसी आने लगी। दुर्बलता ने जल्द ही खाट पर डाल दिया। सुभागी अब क्या करे? ठाकुर साहब के रुपये चुकाने के लिए दिलोजान से काम करने की जरूरत थी। यहाँ माँ बीमार पड गई। अगर बाहर जाए, तो माँ अकेली रहती है। उसके पास बैठे, तो वाहर का काम कौन करे? माँ की दशा देखकर सुभागी समझ गई कि इनका परवाना भी आ पहुँचा। महतो को भी तो यही ज्वर था।

गाँव मे और किसे फुरसत थी कि दौड-धूप करता। सजनसिह दोनो वक्त आते, लक्ष्मी को देखते, दवा पिलाते, सुभागी को समझाते और चले जाते, मगर लक्ष्मी की दशा विगड़ती जाती थी। यहाँ तक कि पन्द्रहवें दिन वह भी संसार से सिधार गई। अन्तिम समय रामू आया और उसके पैर छूना चाहता था, पर लक्ष्मी ने उसे ऐसी झिडकी दी कि उसके समीप न जा सका। सुभागी को उसने

आशीर्वाद दिया—तुम्हारी-जैसी बेटी पाकर तर गई। मेरा क्रिया-कर्म तुम्ही करना। मेरी भगवान् से यही अरजी है कि उस जन्म मे भी तुम मेरी कोख पवित्र करो।

7

माता के देहान्त के बाद सुभागी के जीवन का केवल एक लक्ष्य रह गया सजनसिंह के रुपये चुकाना। 300 रु० पिता के क्रिया-कर्म मे लगे थे। लगभग 200 रु० माता के काम मे लगे। 500 रु० का ऋण था और उसकी जान! मगर वह हिम्मत न हारती थी। तीन साल तक सुभागी ने रात को रात और दिन को दिन न समझा! उसकी कार्य-शक्ति और पौरुष देखकर लोग दाँतो उँगली दबाते थे। दिन-भर खेती-बारी का काम करने के बाद वह रात को चार-चार पसेरी आटा पीस डालती। तीसवें दिन 15 रु० लेकर वह सजनसिंह के पास पहुँच जाती। इसमे कभी नागा न पडता। यह मानो प्रकृति का अटल नियम था।

अब चारो ओर से उसकी सगाई के पैगाम आने लगे। सभी उसके लिए मुंह फैलाए हुए थे। जिसके घर सुभागी जाएगी, उसके भाग्य फिर जाएँगे। सुभागी यह जवाब देती—अभी वह दिन नही आया।

जिस दिन सुभागी ने आखिरी किश्त चुकायी, उस दिन उसकी खुशी का ठिकाना न था। आज उसके जीवन का कठोर व्रत पूरा हो गया।

वह चलने लगी तो सजनसिंह ने कहा—बेटी, तुमसे मेरी एक प्रार्थना है, कहो कहूँ, कहो न कहूँ, मगर वचन दो कि मानोगी।

सुभागी ने कृतज्ञ भाव से देखकर कहा—दादा, आपकी बात न मानूगी तो किसकी बात मानूंगी? मेरा तो रोयाँ-रोयाँ आपका गुलाम है।

सजन०—अगर तुम्हारे मन मे यह भाव है, तो मैं न कहूँगा। मैंने अब तक तुमसे इसलिए नही कहा कि तुम अपने को देनदार समझ रही थी। अब रुपये चुक गए। मेरा तुम्हारे ऊपर कोई एहसान नही है, रत्ती-भर भी नही। बोलो कहूँ?

सुभागी—आपकी जो आज्ञा हो।

सजन०—देखो इनकार न करना, नही मैं फिर तुम्हे अपना मुँह न दिखाऊँगा।

सुभागी—क्या आज्ञा है?

सजन०—मेरी इच्छा है कि तुम मेरी बहू बनकर मेरे घर को पवित्र करो। मैं जात-पाँत का कायल हूँ, मगर तुमने मेरे सारे बन्धन तोड दिए। मेरा लडका तुम्हारे नाम का पुजारी है। तुमने उसे बारहा देखा। बोलो, मंजूर करती हो?

सुभागी—दादा, इतना सम्मान पाकर पागल हो जाऊँगी।

सजन०—तुम्हारा सम्मान भगवान् कर रहे हैं! तुम साक्षात् भगवती का अवतार हो।

सुभागी—मैं तो आपको अपना पिता समझती हूँ। आप जो कुछ करेंगे, मेरे भले के लिए करेंगे! आपके हुक्म को कैसे इनकार कर सकती हूँ।

सजनसिंह ने उसके माथे पर हाथ रखकर कहा—बेटी, तुम्हारा सोहाग अमर हो। तुमने मेरी बात रख ली। मुझ-सा भाग्यशील संसार में और कौन होगा।

अनुभव

प्रियतम को एक वर्ष की सजा हो गई। और अपराध केवल इतना था कि तीन दिन पहले जेठ की तपती दोपहरी मे उन्होने राष्ट्र के कई सेवको का शर्बत-पान से सत्कार किया था। मैं उस वक्त अदालत मे खडी थी। कमरे के बाहर सारे नगर की राजनीतिक चेतना किसी बन्दी पशु की भाँति खडी चीत्कार कर रही थी। मेरे प्राणधन हथकडियो से जकडे हुए लाए गए। चारों ओर सन्नाटा छा गया। मेरे भीतर हाहाकार मचा हुआ था, मानो प्राण पिघला जा रहा हो। आवेश की लहरें-सी उठ-उठकर समस्त शरीर को रोमाँचित किए देती थी। ओह! इतना गर्व मुझे कभी न हुआ था।

वह अदालत, कुरसी पर बैठा हुआ अँगरेज अफसर, लाल जरीदार पगडियाँ बाधे हुए पुलिस के कर्मचारी, सब मेरी आँखो मे तुच्छ जान पडते थे। बार-बार जी मे आता था, दौडकर जीवनधन के चरणो से लिपट जाऊँ और उसी दशा मे प्राण त्याग दूँ। कितनी शात, अविचलित, तेज और स्वाभिमान से प्रदीप्त मूर्ति थी। ग्लानि, विषाद या शोक की छाया भी न थी। नही, उन ओठो पर स्फूर्ति से भरी हुई, मनोहारिणी, ओजस्वी मुस्कान थी। इस अपराध के लिए एक वर्ष का कठिन कारावास! वाह रे न्याय! तेरी बलिहारी है! मै ऐसे हजार अपराध करने को तैयार थी।

प्राणनाथ ने चलते समय एक बार मेरी ओर देखा, कुछ मुस्कराए, फिर उनकी मुद्रा कठोर हो गई। अदालत से लौटकर मैंने पाँच रुपये की मिठाई मँगवायी और स्वयंसेवको को बुलाकर खिलायी और सध्या समय मै पहली बार काग्रेस के जलसे मे शरीक हुई,—शरीक ही नही हुई, मच पर जाकर बोली और सत्याग्रह की प्रतिज्ञा ले ली। मेरी आत्मा मे इतनी शक्ति कहाँ से आ गई, नही कह सकती। सर्वस्व लुट जाने के बाद फिर किसका डर? विधाता का कठोर-से-कठोर आघात भी अब मेरा क्या अहित कर सकता था?

2

दूसरे दिन मैंने दो तार दिये—एक पिताजी को, दूसरा ससुरजी को। ससुर-

जी पेंशन पाते थे। पिताजी जंगल के महकमे मे अच्छे पद पर थे, पर सारा दिन गुजर गया, तार का जवाव नदारद ! दूसरे दिन भी कोई जवाव नही। तीसरे दिन दोनो महाशयो के पत्र आए। दोनो जामे से वाहर थे। ससुरजी ने लिखा—आशा थी, तुम लोग वुढापे मे मेरा पालन करोगे। तुमने उस आशा पर पानी फेर दिया। अव क्या चाहती हो, मै भिक्षा माँगूँ ? मैं सरकार से पेंशन पाता हूँ। तुम्हे आश्रय देकर मैं अपनी पेंशन से हाथ नही धो सकता। पिताजी के शव्द इतने कठोर न थे, पर भाव लगभग ऐसा ही था। इसी साल उन्हे ग्रेड मिलनेवाला था। वह मुझे वुलाएँगे, तो सम्भव है, ग्रेड से वचित होना पडे। हाँ, वह मेरी सहायता मौखिक रूप से करने को तैयार थे। मैंने दोनो पत्र पढकर फेक दिए और फिर उन्हे कोई पत्र न लिखा। हा स्वार्थ ! तेरी माया कितनी प्रवल है। अपना ही पिता, केवल स्वार्थ मे वाधा पडने के भय से, लडकी की तरफ से इतना निर्दय हो जाए ! अपना ही ससुर, अपनी वहू की ओर से इतना उदासीन हो जाए ! मगर अभी मेरी उम्र ही क्या है ? अभी तो सारी दुनिया देखने को पडी है।

अव तक मैं अपने विपय मे निश्चित थी, लेकिन अव यह नई चिता सवार हुई। इस निर्जन घर मे, निराधार, निराश्रय कैसे रहूँगी, मगर जाऊँगी कहाँ। अगर कोई मर्द होती, तो कांग्रेस के आश्रय मे चली जाती या कोई मजूरी कर लेती। मेरे पैरो मे नारीत्व की वेडियाँ पडी हुई थी। अपनी रक्षा की इतनी चिंता न थी, जितनी अपने नारीत्व की रक्षा की। अपनी जान की फिक्र न थी, पर नारीत्व की ओर किसी की आँख भी न उठनी चाहिए।

किसी की आहट पाकर मैंने नीचे देखा। दो आदमी खडे थे। जी मे आया, पूछूं, तुम कौन हो ! यहाँ क्यो खडे हो ? मगर फिर खयाल आया, मुझे यह पूछने का क्या हक ? आम रास्ता है। जिसका जी चाहे, खडा हो।

पर मुझे खटका हो गया। उस शका को किसी तरह दिल से न निकाल सकती थी। वह एक चिनगारी की भाँति हृदय के अंदर समा गई थी।

गर्मी से देह फुकी जाती थी; पर मैंने कमरे का द्वार भीतर से वन्द कर लिया। घर मे एक वडा-सा-चाकू था। उसे निकालकर सिरहाने रख लिया। वह शका सामने वैठी घूरती हुई मालूम होती थी।

किसी ने पुकारा। मेरे रोएँ खडे हो गए ! मैंने द्वार से कान लगाया। कोई मेरी कुंडी खटखटा रहा था। कलेजा धक्-धक् करने लगा। वही दोनो वदमाश होंगे। क्यो कुंडी खडखडा रहे हैं ? मुझसे क्या काम है ? मुझे झुंझलाहट आ गई। मैंने द्वार न खोला और छज्जे पर खडी होकर जोर से वोली—कौन कुंडी खडखडा रहा है ?

आवाज सुनकर मेरी शंका शात हो गई। कितना ढाढ़स हो गया ! [illegible]

बाबू ज्ञानचन्द थे। मेरे पति के मित्रो मे इनसे ज्यादा सज्जन दूसरा नही है। मैंने नीचे जाकर द्वार खोल दिया। देखा तो एक स्त्री भी थी। यह मिसेज ज्ञानचन्द थी। यह मुझसे बडी थी। पहले-पहल मेरे घर आयी थी। मैंने उनके चरण स्पर्श किए। हमारे यहाँ मित्रता मर्दों ही तक रहती है, औरतो तक नही जाने पाती।

दोनो जने ऊपर आए। ज्ञान बाबू एक स्कूल मे मास्टर है। बडे उदार, विद्वान, निष्कपट, पर आज मुझे मालूम हुआ कि उनकी पथ-प्रदर्शिका उनकी स्त्री है। वह दोहरे बदन की, प्रतिभाशाली महिला थी। चेहरे पर ऐसा रोब था, मानो कोई रानी हो। सिर से पाँव तक गहनो से लदी हुई। मुख सुन्दर न होने पर भी आकर्षक था। शायद मैं उन्हे कही और देखती, तो मुह फेर लेती। गर्व की सजीव प्रतिमा थी, पर बाहर जितनी कठोर, भीतर उतनी ही दयालु।

'घर कोई पत्र लिखा ?' – यह प्रश्न उन्होने कुछ हिचकते हुए किया

मैंने कहा—हाँ, लिखा था।

'कोई लेने आ रहा है ?'

'जी नही। न पिताजी अपने पास रखना चाहते हैं, न ससुरजी।'

'तो फिर ?

'फिर क्या, अभी तो यही पडी हूँ।'

'तो मेरे घर क्यो नही चलती। अकेले तो इस घर में मैं न रहने दूगी।

'खुफिया के दो आदमी इस वक्त भी डटे हुए हैं।'

'मैं पहले ही समझ गई थी, दोनो खूफिया के आदमी होगे।'

ज्ञान बाबू ने पत्नी की ओर देखकर, मानो उसकी आज्ञा से कहा—तो मैं जाकर ताँगा लाऊँ ?

देवीजी ने इस तरह देखा, मानो कह रही हो, क्या अभी तुम यही खडे हो?

मास्टर साहब चुपके से द्वार की ओर चले।

'ठहरो !' देवीजी बोली—'कै ताँगे लाओगे ?'

'कै !' मास्टर साहब घबड़ा गए।

'हाँ कै ! एक ताँगे पर दो-तीन सवारियां ही बैठेंगी। सन्दूक, बिछावन बरतन-भांडे क्या मेरे सिर पर जाएँगे ?'

'तो दो लेता आऊँगा।'—मास्टर साहब डरते-डरते बोले।

'एक ताँगे मे कितना सामान भर दोगे ?'

'तो तीन लेता आऊँ ?'

'अरे, तो जाओगे भी। जरा-सी बात के लिए घंटा भर लगा दिया।'

मैं कुछ कहने न पाई थी कि ज्ञान बाबू चल दिए। मैंने सकुचाते हुए कहा—बहन, तुम्हे मेरे जाने से कष्ट होगा और…

देवीजी ने तीक्ष्ण स्वर मे कहा— हाँ, होगा तो अवश्य। तुम दोनो जून दो-तीन पाव आटा खाओगी, कमरे के एक कोने मे अड्डा जमा लोगी, सिर मे दो-तीन आने का तेल डालोगी। यह क्या थोडा कष्ट है !

मैंने झेंपते हुए कहा—आप तो मुझे वना रही हैं।

देवीजी ने सहृदय भाव से मेरा कधा पकडकर कहा—जव तुम्हारे वावूजी लौट आयें, तो मुझे भी अपने घर मेहमान रख लेना। मेरा घाटा पूरा हो जाएगा। अव तो राजी हुई। चलो, असवाव वांधो। खाट-वाट कल मँगवा लेंगे।

3

मैंने ऐसी सहृदय, उदार, मीठी वातें करने वाली स्त्री नही देखी। मैं उनकी छोटी वहन होती, तो भी शायद इससे अच्छी तरह न रखती। चिन्ता या क्रोध को तो जैसे उन्होने जीत लिया हो। सदैव उनके मुख पर मधुर विनोद खेला करता था। कोई लडका-वाला न था, पर मैंने उन्हें कभी दुखी नही देखा। ऊपर के काम के लिए एक लौंडा रख लिया था। भीतर का सारा काम खुद करती। इतना कम खाकर और इतनी मेहनत करके वह कैसे इतनी हृष्ट-पुष्ट थी, मैं नही कह सकती। विश्राम तो जैसे उनके भाग्य ही मे नही लिखा था। जेठ की दुप-हरी मे भी न लेटती थी। हाँ, मुझे कुछ न करने देती, उस पर जव देखो, कुछ खिलाने को सिर पर सवार। मुझे यहाँ वस यही एक तकलीफ थी।

अभी आठ ही दिन गुजरे थे कि एक दिन मैंने उन्ही दोनो खुफियों को नीचे वैठा देखा। मेरा माथा ठनका। यह अभागे यहाँ भी मेरे पीछे पटे हैं। मैंने तुरन्त वहनजी से कहा—वे दोनो वदमाश यहाँ भी मँडरा रहे हैं।

उन्होंने हिकारत से कहा—कुत्ते हैं। फिरने दो।

मैं चिन्तित होकर वोली—कोई स्वाग न खडा करें।

उसी वेपरवाही से वोली—भूकने के सिवा और क्या कर सकते हैं ?

मैंने कहा—काट भी तो सकते हैं।

हँसकर वोली—इसके डर से कोई भाग तो नही जाता न ?

मगर मेरी दाल मे मक्खी पड गई। वार-वार छज्जे पर जाकर उन्हे टहलते देख आती। यह सव क्यो मेरे पीछे पडे हुए है ? आखिर मैं नौकरशाही का क्या विगाड सकती हूँ। मेरी सामर्थ्य ही क्या है ? क्या यह सव इस तरह मुझे यहा से भगाने पर तुले हैं ? इसमे उन्हे क्या मिलेगा ? यही तो कि मैं मारी-मारी फिरूँ ! कितनी नीची तवीयत है।

एक हफ्ता और गुजर गया। खुफिया ने पिड न छोडा। मेरे प्राण सूखे जाते थे। ऐसी दशा मे यहाँ रहना मुझे अनुचित मालूम होता था, पर देवीजी से कुछ न कह सकती थी।

एक दिन शाम को ज्ञान बाबू आए, तो घबडाए हुए थे। मैं बरामदे मे थी। परवल छील रही थी। ज्ञान बाबू ने कमरे मे जाकर देवीजी को इशारे से बुलाया।

देवीजी ने बैठे-बैठे कहा—पहले कपडे-वपडे तो उतारो, मुँह-हाथ धोओ, कुछ खाओ, फिर जो कहना हो, कह लेना।

ज्ञान बाबू को धैर्य कहा ? पेट मे बात की गन्ध तक न पचती थी। आग्रह से बुलाया —तुमसे उठा नही जाता ? मेरी जान आफत मे पडी है।

देवीजी ने बैठे-बैठे कहा—तो कहते क्यो नहीं, क्या कहना है ?

'यहा आओ।'

'क्या यहा और कोई बैठा हुआ है ?'

मै वहा से चली। बहन ने मेरा हाथ पकड लिया। मै जोर करने पर भी न छुडा सकी। ज्ञान बाबू मेरे सामने न कहना चाहते थे, पर इतना सब्र भी न था कि जरा देर रुक जाते। बोले—प्रिंसिपल से मेरी लड़ाई हो गई।

देवी ने बनावटी गम्भीरता से कहा—सच ! तुमने उसे खूब पीटा न ?

'तुम्हे दिल्लगी सूझती है। यहा नौकरी जा रही है।'

'जब यह डर था, तो लडे क्यो ?'

'मैं थोडा ही लडा। उसने मुझे बुलाकर डाँटा।'

'बेकसूर ?'

'अब तुमसे क्या कहूँ।'

'फिर वही पर्दा। मैं कह चुकी, यह मेरी बहन है। मैं इससे कोई पर्दा नही रखना चाहती।'

'और जो इन्ही के बारे मे कोई बात हो, तो ?'

देवीजी ने जैसी पहेली बूझकर कहा—अच्छा समझ गई। कुछ खुफियो का झगड़ा होगा। पुलिस ने तुम्हारे प्रिंसिपल से शिकायत की होगी।

ज्ञान बाबू ने इतनी आसानी से अपनी पहेली का बूझा जाना स्वीकार न किया।

बोले—पुलिस ने प्रिंसिपल से नही, हाकिम-जिला से कहा। उसने प्रिंसिपल को बुलाकर मुझसे जवाब तलब करने का हुक्म दिया।

देवी ने अन्दाज से कहा—समझ गई। प्रिंसिपल ने तुमसे कहा होगा कि उस स्त्री को घर से निकाल दो।

'हाँ, यही समझ लो।'

'तो तुमने क्या जवाब दिया ?'

'अभी कोई जवाब नही दिया। वहा खडे-खडे क्या कहता !'

देवीजी ने उन्हे आडे हाथो लिया—जिस प्रश्न का एक ही जवाब हो, उसमे सोच-विचार कैसा ?

ज्ञान बाबू सिटपिटाकर बोले—लेकिन कुछ सोचना तो जरूरी था।

देवीजी की त्यौरियां बदल गईं। आज मैंने पहली बार उनका यह रूप देखा। बोली—तुम उस प्रिंसिपल से जाकर कह दो, मैं उसे किसी तरह नहीं छोड़ सकता और न माने, तो इस्तीफा दे दो। अभी जाओ। लौटकर हाथ-मुंह धोना।

मैंने रोकर कहा—बहन, मेरे लिए ··

देवी ने डांट बतायी—तू चुप रह, नहीं कान पकड़ लूंगी। क्यों बीच में कूदती है? रहेंगे तो साथ रहेंगे, मरेंगे तो साथ मरेंगे। इस मर्दुये को मैं क्या कहूं। आधी उम्र बीत गई और बात करना न आया। (पति से) खड़े सोच क्या रहे हो? तुम्हें डर लगता है, तो मैं जाकर कह आऊं?

ज्ञान बाबू ने खिसियाकर कहा—तो कल कह दूंगा, इस वक्त कहां होगा, कौन जाने!

4

रात-भर मुझे नींद नहीं आई। बाप और ससुर जिसका मुंह नहीं देखना चाहते, उसका यह आदर! राह की भिखारिन का यह सम्मान! देवी, तू सचमुच देवी है।

दूसरे दिन ज्ञान बाबू चले, तो देवी ने फिर कहा—फैसला करके घर आना। यह न हो कि सोचकर जवाब देने की जरूरत पड़े।

ज्ञान बाबू के चले जाने के बाद मैंने कहा—तुम मेरे साथ बड़ा अन्याय कर रही हो बहनजी। मैं यह कभी नहीं देख सकती कि मेरे कारण तुम्हें यह विपत्ति झेलनी पड़े।

देवी ने हास्य-भाव से कहा—कह चुकी या कुछ और कहना है?

'कह चुकी, मगर अभी बहुत कुछ कहूंगी।'

'अच्छा, बता तेरे प्रियतम क्यों जेल गये। इसी लिए तो कि स्वयंसेवकों का सत्कार किया था। स्वयं सेवक कौन हैं? वे हमारी सेना के वीर हैं, जो हमारी लड़ाइयां लड़ रहे हैं। स्वयं सेवकों के भी तो बाल-बच्चे होंगे, मां-बाप होंगे, वह भी तो कोई कार-बार करते होंगे, पर देश की लड़ाई के लिए, उन्होंने सब कुछ त्याग दिया है। ऐसे वीरों का सत्कार करने के लिए, जो आदमी जेल में डाल दिया जाए, उसकी स्त्री के दर्शनों से भी आत्मा पवित्र होती है। मैं तुझ पर एहसान कर रही हूं, तू मुझ पर एहसान कर रही है।'

मैं इस दया-सागर में डुबकियां खाने लगी। बोलती क्या?

शाम को जब ज्ञान बाबू लौटे, तो उनके मुख पर विजय का आनन्द था।

देवी ने पूछा—हार कि जीत?

ज्ञान बाबू ने अकड़कर कहा—जीत! मैंने इस्तीफा दे दिया तो चक्कर में आ गया। उसी वक्त हाकिम जिला के पास गया। वहां न जाने मोटर पर बैठ-

कर दोनो मे क्या बातें हुईं। लौटकर मुझसे बोला—आप पोलिटिकल जलसो मे तो नही जाते ?

मैंने कहा—कभी भूलकर भी नही।

'कांग्रेस के मेम्बर तो नही है ?'

मैंने कहा—मेम्बर क्या, मेम्बर का दोस्त भी नही।

'कांग्रेस-फंड मे चन्दा तो नही देते ?'

मैंने कहा—कानी कौडी भी कभी नही देता।

'तो हमे आपसे कुछ नही कहना है। मै आपका इस्तीफा वापस करता हूँ।'

देवीजी ने मुझे गले लगा लिया।

लांछन

अगर ससार मे ऐसा प्राणी होता, जिसकी आखें लोगो के हृदयो के भीतर घुस सकती, तो ऐसे बहुत कम स्त्री या पुरुष होंगे, जो उसके सामने सीधी आँखें करके ताक सकते। महिला-आश्रम की जुगनूबाई के विषय मे लोगो की धारणा कुछ ऐसी ही हो गई थी। वह बेपढी-लिखी, गरीब, बूढी औरत थी, देखने मे बडी सरल, बडी हँसीमुख, लेकिन जैसे किसी चतुर प्रूफरीडर की निगाह गलतियो ही पर जा पडती है, उसी तरह उसकी आखें भी बुराइयो ही पर पहुच जाती थी। शहर मे ऐसी कोई महिला न थी, जिसके विषय मे दो-चार लुकी-छिपी बातें उसे न मालूम हो। उसका ठिगना स्थूल शरीर, सिर के खिचडी बाल, गोल मुँह, फूले-फूले गाल, छोटी-छोटी आँखें, उसके स्वभाव की प्रखरता और तेजी पर परदा-सा डाले रहती थी, लेकिन जब वह किसी की कुत्सा करने लगती, तो उसकी आकृति कठोर हो जाती, आँखें फैल जाती और कठस्वर कर्कश हो जाता। उसकी चाल मे बिल्लियो का-सा सयम था, दबे पाँव धीरे-धीरे चलती, पर शिकार की आहट पाते ही, जस्त मारने को तैयार हो जाती थी।

उसका काम था महिला-आश्रम मे महिलाओ की सेवा-टहल करना, पर महिलाएँ उसकी सूरत से कापती थी। उसका ऐसा आतक था कि ज्यो ही वह कमरे मे कदम रखती, ओठो पर खेलती हुई हँसी जैसे रो पडती थी, चहकने वाली आवाजें जैसे बुझ जाती थी, मानो उसके मुख पर लोगो को अपने पिछले रहस्य अकित नजर आते हो। पिछले रहस्य! कौन है, जो अपने अतीत को किसी भयकर जन्तु के समान कठघरो मे बन्द करके रखना चाहता हो? धनियो को चोरो के भय से निद्रा नही आती। मानियो को उसी भाँति मान की रक्षा करनी पडती है। वह जन्तु, जो पहले कीट के समान अल्पाकार रहा होगा, दिनो के साथ दीर्घ और सबल होता जाता है, यहाँ तक कि हम उसको याद ही से काप उठते हैं।

और, अपने ही कारनामो की बात होती, तो अधिकाश देवियाँ जुगनू को दुत्कारती। पर यहाँ तो मैके, ससुराल, ननिहाल, ददियाल, फुफियाल और मौसियाल, चारो ओर की रक्षा करनी थी और जिस किले मे इतने द्वार हो,

उनकी रक्षा कौन कर सकता है ? वहाँ तो हमला करने वाले के सामने मस्तक झुकाने मे ही कुशल है। जुगनू के दिल मे हजारो मुर्दे गडे पडे थे और वह जरूरत पड़ने पर उन्हे उखाड दिया करती थी। जहा किसी महिला ने दून की ली या शान दिखाई, वहाँ जुगनू की त्यौरियाँ वदली। उसकी एक कडी निगाह अच्छे-अच्छो को दहला देती थी, मगर यह बात न थी कि स्त्रियाँ उससे घृणा करती हो। नही, सभी वडे चाव से उससे मिलती और उसका आदर-सत्कार करती। अपने पडोसियो की निन्दा सनातन से मनुष्य के लिए मनोरजन का विषय रही है और जुगनू के पास इसका काफी सामान था।

2

नगर मे इदुमति-महिला-पाठशाला नाम का एक लडकियो का हाईस्कूल था। हाल मे मिस खुरशेद उसकी हेड मिस्ट्रेस होकर आयी थी। शहर मे महिलाओ का दूसरा क्लब न था। मिस खुरशेद एक दिन आश्रम मे आयी। ऐसी ऊँचे दर्जे की शिक्षा पाई हुई आश्रम मे कोई देवी न थी। उनकी वडी आवभगत हुई। पहले ही दिन मालूम हो गया, मिस खुरशेद के आने से आश्रम मे एक नए जीवन का सचार होगा। कुछ इस तरह दिल खोलकर हरेक से मिली, कुछ ऐसी दिलचस्प वाते की कि सभी देविया मुग्ध हो गई। गाने मे भी चतुर थी। व्याख्यान भी खूब देती थी और अभिनय-कला मे तो उन्होंने लन्दन मे नाम कमा लिया था। ऐसी सर्वगुण-सम्पन्न देवी का आना आश्रम का सौभाग्य था। गुलावी गोरा रग, कोमल गाल, मदभरी आँखें, नए फैशन के कटे हुए केश, एक-एक अग साचे मे ढला हुआ, मादकता की इससे अच्छी प्रतिमा न वन सकती थी।

चलते समय मिस खुरशेद ने मिसेज टडन को, जो आश्रम की प्रधाना थी, एकान्त मे बुलाकर पूछा—वह वुढिया कौन है ?

जुगनू कई बार कमरे मे आकर मिस खुरशेद को अन्वेषण की आँखो मे देख चुकी थी, मानो कोई शह सवार किसी नई घोडी को देख रहा हो।

मिसेज टण्डन ने मुस्कराकर कहा—यहाँ ऊपर का काम करने के लिए नौकर है। कोई काम हो, तो वुलाऊँ ?

मिस खुरशेद ने धन्यवाद देकर कहा—जी नही, कोई विशेष काम नही है। मुझे चालवाज मालूम होती है। यह भी देख रही हूँ कि यहाँ की वह सेविका नहीं, स्वामिनी है।

मिसेज टण्डन तो जुगनू से जली वैठी ही थी। इनके वैधव्य को लाछित करने के लिए, वह इन्हें सदा-सोहागिन कहा करती थी। मिस खुरशेद से उसकी जितनी वुराई हो सकी, वह की, और उससे सचेत रहने का आदेश दिया।

मिस खुरशेद ने गम्भीर होकर कहा—तव तो भयंकर स्त्री है। जभी सब

देवियाँ इससे काँपती हैं। आप इसे निकाल क्यो नही देती ? ऐसी चुड़ैल को एक दिन न रखना चाहिए।

मि० टण्डन ने अपनी मजबूरी बताई—निकाल कैसे दू, जिन्दा रहना मुश्किल हो जाए। हमारा भाग्य उसकी मुट्ठी मे है। आपको दो-चार दिन मे उसके जौहर खिलेंगे। मैं तो डरती हूँ, कही आप भी उसके पजे मे न फँस जाएँ। उसके सामने भूलकर भी किसी पुरुष से बातें न कीजिएगा। इसके गोयदे न जाने कहाँ-कहाँ लगे हुए हैं। नौकरो से मिलकर भेद यह ले, दाइयो से मिलकर चिट्ठिया यह देखे, लडको को फुसलाकर घर का हाल यह पूछे। इस रांड को खुफिया पुलिस मे जाना चाहिए था! यहाँ न जाने क्यो आ मरी!

मिस खुरशेद चिन्तित हो गई, मानो इस समस्या को हल करने की फिक्र मे हो। एक क्षण बाद बोली—अच्छा, मैं इसे ठीक करूँगी। अगर निकाल न दू, तो कहना।

मि० टण्डन—निकाल देने से ही क्या होगा। उसकी जबान तो न बन्द होगी। तब तो वह और निडर होकर कीचड फेंकेगी।

मिस खुरशेद ने निश्चिन्त स्वर मे कहा—मैं उसकी जबान भी बन्द कर दूगी बहन। आप देख लीजिएगा। टके की औरत, यहा बादशाहत कर रही है। मैं यह बर्दाश्त नही कर सकती।

वह चली गयी, तो मिसेज टण्डन ने जुगनू को बुलाकर कहा—इन नई मिस साहब को देखा। यहाँ प्रिंसिपल हैं।

जुगनू ने द्वेष से भरे हुए स्वर मे कहा—आप देखें। मैं ऐसी सैकडो छोक-रिया देख चुकी हूँ। आँखो का पानी जैसे मर गया हो।

मिसेज टंडन धीरे से बोली—तुम्हें कच्चा ही खा जायेंगी। इनसे डरती रहना। कह गई हैं, मैं इसे ठीक करके छोडूगी। मैंने सोचा, तुम्हें चेता दू। ऐसा न हो, उनके सामने कुछ ऐसी-वैसी बाते कह बैठो।

जुगनू ने मानो तलवार खीचकर कहा—मुझे चेताने का काम नही, उन्हें चेता दीजिएगा। यहा का आना न बन्द कर दू तो अपने बाप की नही। वह घूमकर दुनिया देख आयी है, तो यहा घर बैठे दुनिया देख चुकी हूँ।

मिसेज टडन ने पीठ ठोकी—मैंने समझा दिया भाई, आगे तुम जानो, तुम्हारा काम जाने।

जुगनू—आप चुपचाप देखती जाइए, कैसा तिगनी का नाच नचाती हूँ। इसने अब तक ब्याह क्यो नही किया ? उमिर तो तीस के लगभग होगी ?

मिसेज टडन ने रद्दा जमाया—कहती है, मैं शादी करना ही नही चाहती। किसी पुरुष के हाथ क्यो अपनी आजादी बेचू!

जुगनू ने आँखें नचाकर कहा—कोई पूछता ही न होगा। ऐसी बहुत-सी

क्वाँरियाँ देख चुकी हूँ। सत्तर चूहे खाकर, बिल्ली चली हज्ज को।
और कई लौंडिया आ गयी और वात का सिलसिला वन्द हो गया।

3

दूसरे दिन सवेरे जुगनू मिस खुरशेद के बँगले पर पहुँची। मिस खुरशेद हवा खाने गई हुई थी। खानसामा ने पूछा—कहाँ से आती हो?

जुगनू—यही रहती हूँ वेटा। मेम साहव कहाँ से आयी हैं, तुम तो इनके पुराने नौकर होगे?

खान०—नागपुर से आयी है। मेरा घर भी वही है। दस साल से इनके साथ हूँ।

जुगनू—किसी ऊँचे खानदान की होगी? वह तो रग-ढंग से ही मालूम होता है।

खान०—खानदान तो कुछ ऐसा ऊँचा नहीं है। हाँ, तकदीर की अच्छी हैं। इनकी माँ अभी तक मिशन मे ३०० रुपया पाती हैं। यह पढने मे तेज थी, वजीफा मिल गया, विलायत चली गयी, वस तकदीर खुल गई। अव तो अपनी मा को वुलाने वाली है, लेकिन वह वुढिया शायद ही आये। यह गिरजे-विरजे नही जाती इसमें दोनो मे पटती नही।

जुगनू—मिजाज की तेज मालूम होती हैं!

खान०—नही, यो तो वहुत नेक हैं, गिरजे नही जाती। तुम क्या नौकरी की तलाश मे हो? करना चाहो, तो कर लो, एक आया रखना चाहती हैं।

जुगनू—नही वेटा, मैं अव क्या नौकरी करूँगी। इस वँगले मे पहले जो मेम साहव रहती थी, वह मुझ पर वडी निगाह रखती थी, मैंने समझा, चलू नई मेम साहव को आसीरवाद दे आऊँ।

खान०—यह आसीरवाद लेने वाली मेम साहव नही हैं। ऐसो से वहुत चिढती है। कोई मँगता आया और उसे डाट वताई। कहती हैं, विना काम किए किसी को जिन्दा रहने का हक नही है। भला चाहती हो, तो चुपके से राह लो।

जुगनू—तो यह कहो, इनका कोई धरम-करम नही है। फिर भला गरीवों पर क्या दया करने लगी!

जुगनू को अपनी दीवार खडी करने के लिए काफी सामान मिल गया—नीच खानदान की है, माँ से नही पटती, धर्म से विमुख है। पहले धावे मे इतनी सफलता कुछ कम न थी। चलते-चलते खानसामा से इतना और पूछा—इनके साहव क्या करते हैं? खानसामा ने मुस्कराकर कहा—इनकी तो अभी शादी ही नही हुई। साहव कहाँ से होगे!

जुगनू ने वनावटी आश्चर्य से कहा—अरे, अव तक व्याह नही हुआ।

हमारे यहाँ तो दुनिया हँसने लगे ।

खान०—अपना-अपना रिवाज है । इनके यहा तो कितनी ही औरते उम्र-भर व्याह नही करती ।

जुगनू ने मार्मिक भाव से कहा—ऐसी क्वारियों को मैं भी बहुत देख चुकी । हमारी विरादरी मे कोई इस तरह रहे, तो थुडी-थुडी हो जाए । मुदा इनके यहाँ जो जी मे आवे करे, कोई नही पूछता ।

इतने मे मिस खुरशेद आ पहुँची । गुलावी जाडा पडने लगा था । मिस साहव साडी के ऊपर ओवर कोट पहने हुए थी । एक हाथ मे छतरी थी दूसरे मे छोटे कुत्ते की जजीर । प्रभात की शीतल वायु मे व्यायाम ने कपोलो को ताजा और सुर्ख कर दिया था । जुगनू ने झुककर सलाम किया, पर उन्होंने उसे देख कर भी न देखा । अन्दर जाते ही खानसामा को वुलाकर पृछा—यह औरत क्या करने आयी है ।

खानसामा ने जूते का फीता खोलते हुए कहा—भिखारिन है, हुजूर ! पर औरत समझदार है । मैंने कहा, यहाँ नौकरी करेगी, तो राजी नहीं हुई । पूछने लगी, इनके साहव क्या करते हैं । जव मैंने वता दिया, तो इसे बड़ा ताज्जुब हुआ और हुआ ही चाहे । हिन्दुओ मे तो दुधमुँहे वालको तक का विवाह हो जाता है ।

खुरशेद ने जाँच की—और क्या कहती थी ?

'और तो कोई वात नही हुजूर !'

'अच्छा, उसे मेरे पास भेज दो ।'

4

जुगनू ने ज्यो ही कमरे मे कदम रखा, फिर खुरशेद ने कुरसी से उठकर स्वागत किया—आइए अम्माँ जी । मैं जरा सैर करने चली गयी थी । आपके आश्रम मे तो सव कुशल है ?

जुगनू एक कुरसी पर तकिया पकडकर खडी-खडी वोली—हुजूर, मिस साहव ! मैंने कहा, आपको आसीरवाद दे आऊँ । मैं आपकी चेरी हूँ । जब कोई काम पडे, मुझे याद कीजिएगा । यहाँ अकेले तो हजूर को अच्छा न लगता होगा ।

मिस०—मुझे अपने स्कूल की लडकियो के साथ बडा आनन्द मिलता है, वह सव मेरी ही लडकियाँ है ।

जुगनू ने मातृ-भाव से सिर हिलाकर कहा—यह ठीक है मिस साहव, पर अपना-अपना ही है । दूसरा अपना हो जाएगा तो अपनो के लिए कोई क्यो रोए ?

सहसा एक सुन्दर सजीला युवक रेशमी सूट धारण किए जूते चरमर करता

हुआ अन्दर आया। मिस खुरशेद ने इस तरह दौडकर प्रेम से उसका अभिवादन किया, मानो जामे मे फूली न समाती हो। जुगनू उसे देखकर कोने मे दवक गई।

खुरशेद ने युवक से गले मिलकर कहा—प्यारे! मैं कव से तुम्हारी राह देख रही हूँ। (जुगनू से) माँ जी, आप जाएँ, फिर कभी आना। यह हमारे परम मित्र विलियम किंग हैं। हम और यह वहुत दिनो तक साथ-साथ पढे हैं।

जुगनू चुपके से निकलकर वाहर आयी। खानसामा खडा था। पूछा—यह लौंडा कौन है?

खानसामा ने सिर हिलाया—मैंने इसे आज ही देखा है। शायद अव क्वाँर-पन से जी ऊवा! अच्छा तरहदार जवान है।

जुगनू—दोनो इस तरह टूटकर गले मिले हैं कि मैं तो लाज के मारे गड गई! ऐसी चूमा-चाटी तो जोरू-खसम मे नही होती। दोनो लिपट गए। लौंडा तो मुझे देखकर कुछ झिझकता था, पर तुम्हारी मिस साहव तो जैसे मतवाली हो गई थी।

खानसामा ने मानो अमंगल आभास से कहा—मुझे तो कुछ वेढव मुआमला नजर आता है।

जुगनू तो यहाँ से सीधे मिसेज टडन के घर पहुँची। इधर मिस खुरशेद और युवक मे वाते होने लगी।

मिस खुरशेद ने कहकहा मारकर कहा—तुमने अपना पार्ट खूब खेला लीला, वुढिया सचमुच चोंधिया गई।

लीला—मैं तो डर रही थी कि वुढिया भाँप न जाए।

मि० खुरशेद—मुझे विश्वास था, वह आज जरूर आएगी। मैंने दूर ही से उसे वरामदे मे देखा और तुम्हे सूचना दी। आज आश्रम मे वडे मजे रहेगे। जी चाहता है, महिलाओ की कनफुसकियाँ सुनती। देख लेना, सभी उसकी वातों पर विश्वास करेंगी।

लीला—तुम भी तो जान-वूझकर दलदल मे पाँव रख रही हो।

मिस खुरसेद—मुझे अभिनय मे मजा आता है। वहन! दिल्लगी रहेगी। वुढिया ने वडा जुल्म कर रखा है। जरा उसे सवक देना चाहती हूँ। कल तुम इसी वक्त इसी ठाट से फिर आ जाना। वुढिया कल फिर आएगी। उसके पेट मे पानी न हजम होगा। नही, ऐसा क्यो? जिस वक्त वह आएगी, मैं तुम्हें खवर दूँगी। वस, तुम छैला वनी हुई पहुँच जाना।

5

आश्रम मे उस दिन जुगनू को दम मारने की फुर्सत न मिली। उसने सारा

वृत्तान मिसेज टडन से कहा। मिसेज टडन दौडी हुई आश्रम पहुँची और [illegible] महिलाओ को खबर सुनाई। जुगनू उसकी तसदीक करने के लिए बुलाई गई। जो महिला आती, वह जुगनू के मुंह से यह कथा सुनती। हर एक [illegible] मे कुछ कुछ रग और चढ जाता। यहाँ तक कि दोपहर होते-होते सारे शहर के सभ्य समाज मे यह खबर गूंज उठी।

एक देवी ने पूछा—यह युवक है कौन?

मि० टडन—सुना तो, उनके साथ का पढा हुआ है। दोनो मे पहले से [illegible] बातचीत रही होगी। वही तो मैं कहती थी कि इतनी उम्र हो गई, यह क्वाँरी कैसे बैठी है? अब कलई खुली।

जुगनू—और कुछ हो या न हो, जवान तो बांका है।

टडन—यह हमारी विद्वान् बहनो का हाल है।

जुगनू—मैं तो उसकी सूरत देखते ही ताड गई थी। धूप मे बाल नही सफेद किए हैं।

टडन—कल फिर जाना।

जुगनू—कल नही, मैं आज रात ही को जाऊँगी।

लेकिन रात को जाने के लिए कोई बहाना जरूरी था। मिसेज टडन ने आश्रम के लिए एक किताब मँगवा भेजी। रात को नौ बजे जुगनू मिस खुरशेद के बँगले पर पहुँची। सयोग से लीलावती उस वक्त मौजूद थी। दोनो—[illegible] तो बेतरह पीछे पड गई।

मि० खुरशेद—मैंने तुमसे कहा था, उसके पेट मे पानी न पचेगा। अब जाकर रूप भर आओ। तब तक इसे मैं बातो मे लगाती हूँ। मतवालियो की तरह अट-सट बकना शुरू करना। मुझे भगा ले जाने का प्रस्ताव भी करना। बस यो बन जाना, जैसे अपने होश मे नही हो।

लीला मिशन मे डाक्टर थी। उसका बँगला पास ही था। वह चली गई, तो मि० खुरशेद ने जुगनू को बुलाया।

जुगनू ने एक पुरजा उसको देकर कहा—मिसेज टडन ने यह किताब माँगी है। मुझे आने मे देर हो गई। मैं इस वक्त आपको कष्ट न देती, पर सवेरे ही वह मुझसे मागेंगी। हजारो रुपये महीने की आमदनी है मिस साहब, मगर एक-एक कौडी दांत से पकडती है। इनके द्वार पर भिखारी को भीख तक नहीं मिलती।

मि० खुरशेद ने पुरजा देखकर कहा—इस वक्त तो यह किताब नहीं मिल सकती, सुबह ले जाना। तुमसे कुछ बाते करनी है। बैठो, मैं अभी आती हूँ।

वह परदा उठाकर पीछे के कमरे मे चली गयी और वहाँ से कोई पन्द्रह मिनट मे एक सुन्दर रेशमी साडी पहने, इत्र मे बसी हुई, मुँह पर पाउडर [illegible]

निकली। जुगनू ने उसे आँखे फाडकर देखा। ओ हो! यह शृंगार! शायद इस समय वह लोंडा आनेवाला होगा। तभी ये तैयारियाँ हैं। नहीं, सोने के समय क्वांरियो के बनाव-सँवार की क्या जरूरत है? जुगनू की नीति मे स्त्रियो के शृंगार का केवल एक उद्देश्य था, पति को लुभाना। इसलिए सोहागियो के सिवा, शृंगार और सभी के लिए वर्जित था। अभी खुरशेद कुरसी पर बैठने भी न पाई थी कि जूतो की चरमर सुनाई दिया और एक क्षण में विलियम किंग ने कमरे मे कदम रखा। उसकी आँखे चढ़ी हुई मालूम होती थी और कपडो से शराब की गंध आ रही थी। उसने बेधडक मिस खुरशेद को छाती से लगा लिया और बार-बार उसके कपोलो के चुम्बन लेने लगा।

मिस खुरशेद ने अपने को उसके कर-पाश से छुडाने की चेष्टा करके कहा—चलो हटो, शराब पीकर आये हो।

किंग ने उसे और चिमटाकर कहा—आज तुम्हे भी पिलाऊंगा प्रिये! तुमको पीना होगा। फिर हम दोनो लिपटकर सोएँगे। नशे मे प्रेम कितना सजीव हो जाता है, इसकी परीक्षा कर लो।

मिस खुरशेद ने इस तरह जुगनू की उपस्थिति का उसे संकेत दिया कि जुगनू की नजर पड जाए, पर किंग नशे मे मस्त था। जुगनू की तरफ देखा ही नहीं।

मिस खुरशेद ने रोष के साथ अपने को अलग करके कहा—तुम इस वक्त आपे मे नही हो। इतने उतावले क्यो हुए जाते हो? क्या मैं कही भागी जा रही हूँ!

किंग—इतने दिनो चोरो की तरह आया हूँ, आज से मैं खुले खजाने आऊँगा।

खुरशेद—तुम तो पागल हो रहे हो। देखते नही हो, कमरे मे कौन बैठा हुआ है।

किंग ने हकबकाकर जुगनू की तरफ देखा और झिझककर बोला—यह बुढ़िया यहा कब आयी? तुम यहाँ क्यो आयी बुड्ढी! शैतान की बच्ची! यहाँ भेद लेने आती है? हमको बदनाम करना चाहती है? मैं तेरा गला घोंट दूगा। ठहर, भागती कहाँ है? ठहर, भागती कहाँ है? मैं तुझे जिन्दा न छोडूगा!

जुगनू बिल्ली की तरह कमरे से निकली और सिर पर पाँव रखकर भागी! उधर कमरे से कहकहे उठ-उठकर छत को हिलाने लगे।

जुगनू उस वक्त मिसेज टंडन के घर पहुँची। उसके पेट मे बुलबुले उठ रहे थे, पर मिसेज टंडन सो गई थी। वहाँ से निराश होकर उसने कई दूसरे घरो की कुण्डी खटखटायी, पर कोई द्वार न खुला और दुखिया को सारी रात इसी तरह काटनी पडी मानो कोई रोता हुआ बच्चा गोद मे हो। प्रात:काल वह

आश्रम मे जा कूदी।

कोई आध घण्टे मे मिसेज टडन भी आयी। उन्हे देखकर उसने मुँह फेर लिया।

मि० टडन ने पूछा—रात तुम मेरे घर गयी थी? उस वक्त मुझसे महाराज ने कहा।

जुगनू ने विरक्त भाव से कहा—प्यासा ही तो कुएँ के पास जाता है। कुआँ थोडे ही प्यासे के पास आता है। मुझे आग मे झोककर आप दूर हट गईं। भगवान् ने मेरी रक्षा की, नही कल जान ही गई थी।

मि० टडन ने उत्सुकता से कहा—हुआ क्या, कुछ कहो? मुझे तुमने जगा क्यो न लिया? तुम तो जानती हो, मेरी आदत सवेरे सो जाने की है।

'महाराज ने घर मे घुसने ही न दिया। जगा कैसे लेती! आपको इतना तो सोचना चाहिए था कि वह वहाँ गयी है, तो आती होगी! घडी भर बाद सोती तो क्या बिगड जाता, पर आपको किसी की क्या परवाह!'

'तो क्या हुआ, मिस खुरशेद मारने दौडी?'

'वह नही मारने दौडी, उनका वह खसम है, वह मारने दौडा। लाल आँखे निकाले आया और मुझसे कहा—निकल जा। जब तक मैं निकलूँ-निकलूँ तब तक हटर खीचकर दौड ही तो पडा। मैं सिर पर पाँव रखकर न भागती तो चमडी उधेड डालता। और वह राँड बैठी तमाशा देखती रही। दोनो मे पहले से सधी-बदी थी। ऐसी कुलटाओ का मुंह देखना पाप है। वेश्या भी इतनी निर्लज्ज न होगी।

जरा देर मे और भी देवियाँ आप हुँची। यह वृत्तात सुनने के लिए सभी उत्सुक हो रही थी। जुगनू की कैंची अविश्रान्त रूप से चलती रही। महिलाओ को इस वृत्ताँत मे इतना आनन्द आ रहा था कि कुछ न पूछो। एक-एक बात को खोद-खोदकर पूछती थी। घर के काम-धधे भूल गए, खाने-पीने की सुधि भी न रही और एक बार सुनकर उनकी तृप्ति न होती थी, बार-बार वही कथा नए आनन्द से सुनती थी।

मिसेज टडन ने अत मे कहा—हमे आश्रम मे ऐसी महिलाओ को लाना अनुचित है। आप लोग इस प्रश्न पर विचार करें।

मिसेज पंड्या ने समर्थन किया—हम आश्रम को आदर्श से गिराना नही चाहते। मैं तो कहती हूं, ऐसी औरत किसी सस्था की प्रिंसिपल बनने के योग्य नही।

मिसेज बाँगडा ने फरमाया—जुगनूबाई ने ठीक कहा था, ऐसी औरत का मुह देखना भी पाप है। उससे साफ कह देना चाहिए, आप यहाँ तशरीफ न लाएँ।

अभी यही खिचड़ी पक रही थी कि आश्रम के सामने एक मोटर आकर रुकी। महिलाओं ने सिर उठा-उठाकर देखा, गाड़ी में मिस खुरशेद और विलियम किंग है।

जुगनू ने मुँह फैलाकर हाथ से इशारा किया, वही लौंडा है! महिलाओं का सम्पूर्ण समूह चिक के सामने आने के लिए विकल हो गया।

मिस खुरशेद ने मोटर से उतरकर हुड बन्द कर दिया और आश्रम के द्वार की ओर चलीं। महिलाएँ भाग-भागकर अपनी-अपनी जगह आ बैठीं।

मिस खुरशेद ने कमरे में कदम रखा। किसी ने स्वागत न किया। मिस खुरशेद ने जुगनू की ओर निस्संकोच आँखों से देखकर मुस्कराते हुए कहा—कहिए बाईजी, रात आपको चोट तो नहीं आई?

जुगनू ने बहुतेरी दीदा-दिलेर स्त्रियाँ देखी थीं, पर इस ढिठाई ने उसे चकित कर दिया। चोर हाथ में चोरी का माल लिये, साहु को ललकार रहा था।

जुगनू ने ऐंठकर कहा—जी न भरा हो, तो अब पिटवा दो। सामने ही तो हैं।

खुरशेद—वह इस वक्त तुमसे अपना अपराध क्षमा कराने आये हैं। रात वह नशे में थे।

जुगनू ने मिसेज टंडन की ओर देखकर कहा—और आप भी कुछ कम नशे में नहीं थीं।

खुरशेद ने व्यंग समझकर कहा—मैंने आज तक कभी नहीं पी। मुझ पर झूठा इलजाम मत लगाओ।

जुगनू ने लाठी मारी—शराब से भी बड़े नशे की चीज है, कोई, वह उसी का नशा होगा। उन महाशय को परदे में क्यों ढक दिया? देवियाँ भी तो उनकी सूरत देखतीं।

मिस खुरशेद ने शरारत की—सूरत तो उनकी लाख-दो-लाख में एक है।

मिसेज टंडन ने आशंकित होकर कहा—नहीं, उन्हें यहाँ लाने की जरूरत नहीं। आश्रम को हम बदनाम नहीं करना चाहते।

मिस खुरशेद ने आग्रह किया—मुआमले को साफ करने के लिए उनका आप लोगों के सामने आना जरूरी है। एक तरफा फैसला आप क्यों करती हैं?

मिसेज टंडन ने टालने के लिए कहा . यहाँ कोई मुकदमा थोड़े ही पेश है।

मिस खुरशेद—वाह! मेरी इज्जत में बट्टा लगा जा रहा है, और आप कहती हैं, कोई मुकदमा नहीं है? मिस्टर किंग आयेंगे और आपको उनका बयान सुनना होगा।

मिसेज टंडन को छोड़कर और सभी महिलाएँ किंग को देखने के लिए उत्सुक थीं। किसी ने विरोध न किया!

खुरशेद ने द्वार पर आकर ऊँची आवाज मे कहा—तुम जरा यहाँ चले आओ।

हुड खुला और मिस लीलावती रेशमी साडी पहने मुस्कराती हुई निकल आयी।

आश्रम मे सन्नाटा छा गया। देवियां विस्मित आंखो से लीलावती को देखने लगी।

जुगनू ने आँखें चमकाकर कहा—उन्हे कहाँ छिपा दिया आपने ?

खुरशेद—छूमतर से उड गए। जाकर गाडी देख लो।

जुगनू लपककर गाडी के पास गयी और खूब देख-भालकर मुह लटकाए हुए लौटी।

मिस खुरशेद ने पूछा—क्या हुआ, मिला कोई ?

जुगनू—मैं यह तिरिया-चरित्र क्या जानू। (लीलावती को गौर से देखकर) और मरदो को साडी पहनाकर आँखो मे धूल झोक रही हो। यही तो हैं वह रात-वाले साहब !

खुरशेद—खूब पहचानती हो ?

जुगनू—हाँ-हाँ, क्या अधी हूँ ?

मिसेज टडन—क्या पागलो-सी वात करती हो जुगनू, यह तो डाक्टर लीलावती है।

जुगनू—(उँगली चमकाकर) चलिए, चलिए लीलावती है। साडी पहनकर औरत वनते लाज भी नही आती। तुम रात को नही इनके घर थे ?

लीलावती ने विनोद-भाव से कहा—मैं कब इनकार कर रही हूँ ? इस वक्त लीलावती हूँ। रात को विलियम किंग वन जाती हूँ। इसमे बात ही क्या है ?

देवियो को अव यथार्थ की लालिमा दिखाई दी। चारो तरफ कहकहे पडने लगे। कोई तालियाँ वजाती थी, कोई डाक्टर लीलावती की गरदन से लिपटी जाती थी, कोई मिस खुरशेद की पीठ पर थपकियाँ देती थी। कई मिनट तक हू-हक मचता रहा। जुगनू का मुह उस लालिमा मे विलकुल जरा-सा निकल आया। जवान वन्द हो गई। ऐसा चरका उसने कभी न खाया था। इतनी जलील कभी न हुई थी।

मिसेज मेहरा ने डांट वताई—अब बोलो दाई, लगी मुंह मे कालिख कि नही ?

मिसेज बाँगडा—इसी तरह यह सबको बदनाम करती है।

लीलावती—आप लोग भी तो वह जो कहती है, उस पर विश्वास कर लेती है।

इस हरबोग मे जुगनू को किसी ने जाते न देखा। अपने सिर पर पाँव रखकर

उठते देखकर उसे चुपके से सरक जाने ही मे अपनी कुशल मालूम हुई। पीछे के द्वार से निकली और गलियो-गलियो भागी।

मिस खुरशेद ने कहा—जरा उससे पूछो, मेरे पीछे क्यो पड गई थी ?

मिसेज टंडन ने पुकारा, पर जुगनू कहाँ! तलाश होने लगी। जुगनू गायब!

उस दिन से शहर मे फिर किसी ने जुगनू की सूरत नही देखी। आश्रम के इतिहास मे यह मुआमला आज भी उल्लेख और मनोरजन का विषय बना हुआ है।

आखिरी हीला

यद्यपि मेरी स्मरणशक्ति पृथ्वी के इतिहास की सारी स्मरणीय तारीखें भूल गई, वे तारीखें जिन्हें रातों को जागकर और मस्तिष्क को खपाकर याद किया था; मगर विवाह की तिथि समतल भूमि मे एक स्तम्भ की भाँति अटल है। न भूलता हूँ, न भूल सकता हूँ। उससे पहले और पीछे की सारी घटनाएँ दिल से मिट गई, उनका निशान तक बाकी नही। वह सारी अनेकता एक एकता में मिश्रित हो गई है और वह मेरे विवाह की तिथि है। चाहता हूँ, उसे भूल जाऊँ, मगर जिस तिथि का नित्यप्रति सुमिरन किया जाता हो, वह कैसे भूल जाए? नित्यप्रति सुमिरन क्यो करता हूँ, यह उस विपत्ति मारे से पूछिए, जिसे भगवद्-भजन के सिवा जीवन के उद्धार का कोई आधार न रहा हो।

लेकिन क्या मैं वैवाहिक जीवन से इसलिए भागता हूं कि मुझे रसिकता का अभाव है और मै केवल वर्ग की मोहिनी शक्ति से निर्लिप्त हूँ और अनासक्ति का पद प्राप्त कर चुका हूँ? क्या मैं नही चाहता कि जब मैं सैर करने निकलूँ तो हृदयेश्वरी भी मेरे साथ विराजमान हो? विलास वस्तुओं की दूकानों पर उनके साथ जाकर थोडी देर के लिए रसमय आग्रह का आनन्द उठाऊँ। मैं उस गर्व और आनन्द और महत्व का अनुमान कर सकता हूँ, जो मेरे अन्य भाइयों की भाति मेरे हृदय मे भी आन्दोलित होगा, लेकिन मेरे भाग्य में वह सुविधा—वह रगरेलियां नही है।

क्योकि चित्र का दूसरा पक्ष भी तो देखता हूं। एक पक्ष जितना ही मोहक और आकर्षक है, दूसरा उतना ही हृदयविदारक और भयंकर। शाम हुई और आप बदनसीब बच्चे को गोद मे लिए तेल या ईंधन की दूकान पर जाते हैं। अंधेरा हुआ और आप आटे की पोटली बगल मे दबाए गलियों में यों कदम बढ़ाते हुए निकल जाते है, मानो चोरी की है। सूर्य निकला और बालकों को गोद में लिए होमियोपैथ डाक्टर की दूकान मे टूटी कुर्सी पर आसीन हैं। किसी खोंचेवाले की रसीली आवाज सुनकर बालक ने गगनभेदी विलाप आरम्भ किया और आपके प्राण सूखे। ऐसे बापों को भी देखा है, जो दफ्तर से लौटते हुए धेले-दो पैसे की मूगफली या रेवडियां लेकर लज्जास्पद शीघ्रता से [illegible]

चले जाते हैं कि घर पहुँचते-पहुँचते बालकों के आक्रमण से पहले ही यह पदार्थ समाप्त हो जाए। कितना निराशाजनक होता है यह दृश्य, जब देखता हूँ कि मेले मे बच्चा किसी खिलौने की दूकान के सामने मचल रहा है और पिता महोदय ऋषियो की-सी विद्वत्ता के साथ उनकी क्षणभंगुरता का राग अलाप रहे हैं।

चित्र का पहला रुख तो मेरे लिए एक मादक स्वप्न है, दूसरा रुख एक भयंकर सत्य। इस सत्य के सामने मेरी सारी रसिकता अन्तर्धान हो जाती है। मेरी सारी मौलिकता, सारी रचनाशीलता इसी दाम्पत्य के फन्दो से बचने मे प्रयुक्त हुई है। जानता हूँ कि जाल के नीचे जाना है, मगर जाल जितना ही रंगीन और ग्राहक है, दाना उतना ही घातक और विषैला। इस जाल मे पक्षियो को तडपते और फडफडाते देखता हूँ और फिर डाली पर जा बैठता हूँ।

लेकिन इधर कुछ दिनो से श्रीमतीजी ने अविश्रात रूप से आग्रह करना शुरू किया है कि मुझे बुला लो। पहले जब छुट्टियो मे जाता था, तो मेरा केवल 'कहाँ चलोगी' कह देना उनकी चित्तशाति के लिए काफी होता था, फिर मैंने 'झझट है' कहकर तसल्ली देनी शुरू की। इसके बाद गृहस्थ-जीवन की असुविधाओ से डराया, किन्तु अब कुछ दिनो से उनका अविश्वास बढता जाता है। अब मैंने छुट्टियो मे भी उनके आग्रह के भय से घर जाना बन्द कर दिया है कि कही वह मेरे साथ न चल खडी हो और नाना प्रकार के बहानो से उन्हे आशकित करता रहता हूँ।

मेरा पहला बहाना पत्र-सम्पादको के जीवन की कठिनाइयो के विषय मे था। कभी बारह बजे रात को सोना नसीब होता है, कभी रतजगा करना पड जाता है। सारे दिन गली-गली ठोकरें खानी पडती हैं। इस पर तुर्रा यह है कि हमेशा सिर पर नंगी तलवार लटकती रहती है। न जाने कब गिरफ्तार हो जाऊँ, कब जमानत तलब हो जाए। खुफिया पुलिस की एक फौज हमेशा पीछे पड़ी रहती है। कभी बाजार मे निकल जाता हूँ, तो लोग उँगलियाँ उठाकर कहते हैं—वह जा रहा है अखबारवाला। मानो संसार मे जितनी दैविक, आधिदैविक, भौतिक, आधिभौतिक बाधाएँ है, उनका उत्तरदायी मैं हूँ। मानो मेरा मस्तिष्क झूठी खबरें गढने का कार्यालय है। सारा दिन अफसरो की सलाम और पुलिस की खुशामद मे गुजर जाता है। कानिस्टेबिलो को देखा और प्राण-पीडा होने लगी। मेरी तो यह हालत, और हुक्काम है कि मेरी सूरत से काँपते हैं।

एक दिन दुर्भाग्यवश एक अगरेज के बँगले की तरफ जा निकला। साहब ने पूछा—क्या काम करता है? मैंने गर्व के साथ कहा—पत्र का सम्पादक हूँ। साहब तुरन्त अन्दर घुस गए और कपाट मुद्रित कर लिए। फिर मेम साहब और

वाबा लोगो को खिडकियो से झाँकते देखा, मानो कोई भयकर जन्तु है।

एक बार रेलगाडी मे सफर कर रहा था। साथ और भी कई मित्र थे, इसलिए अपने पद का सम्मान निभाने के लिए सेकड क्लास का टिकट लेना पडा। गाडी मे बैठा तो एक साहब ने मेरे सूटकेस पर मेरा नाम और पेशा देखते ही तुरन्त अपना सन्दूक खोला और रिवाल्वर निकालकर मेरे सामने गोलियाँ भरी, जिसमे मुझे मालूम हो जाए कि वह मुझसे सचेत हैं।

मैंने देवीजी से अपनी आर्थिक कठिनाइयो की कभी चर्चा नही की, क्योंकि मैं रमणियो के सामने यह जिक्र करना अपनी मर्यादा के विरुद्ध समझता हूँ। हालाँकि यह चर्चा करता, तो देवीजी की दया का अवश्य पात्र बन जाता।

मुझे विश्वास था कि श्रीमतीजी फिर यहाँ आने का नाम न लेंगी। मगर वह मेरा भ्रम था। उनके आग्रह पूर्ववत् होते रहे।

तब मैंने दूसरा बहाना सोचा। शहर बीमारियो के अड्डे हैं। हर एक खाने-पीने की चीज मे विष की शका, दूध मे विष, घी मे विष, फलो मे विष, साग-भाजी मे विष, हवा मे विष, पानी मे विष। यहाँ मनुष्य का जीवन पानी की लकीर है। जिसे आज देखो, वह कल गायब। अच्छे-खासे बैठे है, हृदय की गति बन्द हो गई। घर मे सैर को निकले, मोटर मे टकराकर सुरपुर की राह ली। अगर कोई शाम को साँगोपाग घर आ जाए, तो उसे भाग्यवान् समझो। मच्छर की आवाज कान मे आयी, दिल बैठा, मक्खी नजर आयी और हाथ-पाव फूले। चूहा बिल से निकला और जान निकल गई। जिधर देखिए, यम की अमलदारी है। अगर मोटर और ट्राम से बचकर आ गए, तो मच्छर और मक्खी के शिकार हुए। बस, यही समझ लो कि मौत हरदम सिर पर खेलती रहती है। रात-भर मच्छरो से लडता हूँ, दिन-भर मक्खियो से। नन्ही-सी जान को किन-किन दुश्मनो से बचाऊँ। साँस भी मुश्किल से लेता हूँ कि कही क्षय के कीटाणु फेफडे मे न पहुच जाएँ।

देवीजी को फिर मुझ पर विश्वास न आया। दूसरे पत्र मे भी वही आरजू थी। लिखा था, तुम्हारे पत्र ने और चिन्ता बढा दी। अब प्रतिदिन पत्र लिखा करना, नही मैं एक न सुनूगी और सीधे चली आऊँगी। मैंने दिल मे कहा—चलो, सस्ते छूटे।

मगर यह खटका लगा हुआ था कि न जाने कब उन्हे शहर आने की सनक सवार हो जाए। इसलिए मैंने तीसरा बहाना सोच निकाला। यहाँ मित्रो के मारे नाकोदम रहता है, आकर बैठ जाते है तो उठने का नाम भी नही लेते, मानो अपना घर बेच आए हैं। अगर घर से टल जाओ, तो आकर बैठक कमरे मे बैठ जाते हैं और नौकर से जो चीज चाहते हैं, उधार मगवा लेते हैं। देना मुझे पडता है। कुछ लोग तो हफ्तो पडे रहते है, टलने का नाम भी नही

लेते। रोज उनका सेवा-सत्कार करो, रात को थिएटर या सिनेमा दिखाओ, फिर सवेरे तक ताश या शतरंज खेलो। अधिकाँश तो ऐसे है, जो शराव के वगैर जिन्दा ही नही रह सकते। अकसर तो बीमार होकर आते है, वल्कि अधिकतर बीमार ही आते हैं। अव रोज डाक्टर को बुलाओ, सेवा-सुश्रूषा करो, रात-भर सिरहाने बैठे पखा झलते रहो, उस पर यह शिकायत भी सुनते रहो कि यहाँ कोई हमारी वात भी नही पूछता!

मेरी घडी महीनो से मेरी कलाई पर नही आई। दोस्तो के साथ जलसो मे शरीक हो रही है। अचकन है, वह एक साहब के पास है, कोट दूसरे साहब ले गए। जूते और एक वावू ले उडे। मैं वही रद्दी कोट और वही चमरौधा जूता पहनकर दफ्तर जाता हूँ। मित्र वृन्द ताडते रहते हैं कि कौन-सी नई वस्तु लाया। कोई चीज लाता हूँ, तो मारे डर के सन्दूक मे वन्द कर देता हूँ। किसी की निगाह पड जाए, तो कही-न-कही न्योता खाने की धुन सवार हो जाए।

पहली तारीख को वेतन मिलता है, तो चोरो की तरह दवे पाँव घर आता हूँ कि कही कोई महाशय रुपयो की प्रतीक्षा मे द्वार पर धरना जमाए न बैठे हो। मालूम नही, उनकी सारी आवश्यकताएँ पहली ही तारीख की वाट क्यों जोहती रहती हैं? एक दिन वेतन लेकर वारह बजे रात को लौटा, मगर देखा तो आधे दर्जन मित्र उस वक्त भी डटे हुए थे। माथा ठोक लिया। कितने ही वहाने करूँ, उनके सामने एक नही चलती। मै कहता हूँ, घर से पत्र आया है, माताजी वहुत बीमार हैं। जवाव देते हैं, अजी वूढे इतनी जल्द नही मरते। मरना ही होता, तो इतने दिन जीवित क्यो रहती? देख लेना, दो-चार दिन मे अच्छी हो जाएँगी, और अगर मर भी जाएँ, तो वृद्धजनो की मृत्यु का शोक ही क्या, वह तो और खुशी की वात है। कहता हूँ, लगान का बड़ा तकाजा हो रहा है। जवाव मिलता है, आजकल लगान तो वन्द ही हो रहा है। लगान देने की जरूरत ही नही। अगर किसी संस्कार का वहाना करता हूँ, तो फरमाते है, तुम भी विचित्र जीव हो। इन कुप्रथाओ की लकीर पीटना तुम्हारी शान के खिलाफ है। अगर तुम उनका मूलोच्छेद न करोगे, तो वह लोग क्या आकाश से आएँगे?' गरज यह कि किसी तरह प्राण नही वचते।

मैंने समझा कि हमारा यह वहाना निशाने पर बैठेगा। ऐसे घर मे कौन रमणी रहना पसन्द करेगी, जो मित्रो पर ही अर्पित हो गया हो। किन्तु मुझे फिर भ्रम हुआ। उत्तर मे फिर वही आग्रह था।

तव मैंने चौथा हीला सोचा। यहाँ के मकान है कि चिडियो के पिंजरे, न हवा, न रोशनी। वह दुर्गन्ध उडती है कि खोपडी भन्ना जाती है। कितने ही को तो इसी दुर्गन्ध के कारण विशूचिका, टाइफाइड, यक्ष्मा आदि रोग हो जाते हैं। वर्षा हुई और मकान टपकने लगा। पानी चाहे घण्टे-भर वरसे, मकान

रात-भर बरसता रहता है। ऐसे बहुत कम घर होंगे, जिनमे प्रेत-बाधाएँ न हो। लोगो को डरावने स्वप्न दिखाई देते हैं। कितनो ही को उन्माद रोग हो जाता है। आज नए घर मे आए, कल ही उसे बदलने की चिन्ता सवार हो गई। कोई ठेला असबाब से लदा हुआ जा रहा है, कोई आ रहा है। जिधर देखिए, ठेले-ही-ठेले नजर आते है। चोरिया तो इस कसरत से होती हैं कि अगर कोई रात कुशल से बीत जाए, तो देवताओ की मनौती की जाती है। आधी रात हुई और 'चोर-चोर। लेना-लेना' की आवाजें आने लगी। लोग दरवाजो पर मोटे-मोटे लकडी के फट्टे या जूते या चिमटे लिए खडे रहते हैं, फिर भी चोर इतने कुशल हैं कि आँख बचाकर अन्दर पहुच ही जाते हैं। एक मेरे बेतकल्लुफ दोस्त हैं। स्नेहवश मेरे पास बहुत देर तक बैठे रहते है। रात अँधेरे मे बरतन खडके, तो मैंने बिजली की बत्ती जलायी। देखा, तो वही महाशय बरतन समेट रहे हैं। मेरी आवाज सुनकर जोर से कहकहा मारा और बोले, मैं तुम्हे चकमा देना चाहता था। मैंने दिल मे समझ लिया, अगर निकल जाते, तो बरतन आपके थे, जब जाग पडा तो चकमा हो गया। घर मे आये कैसे थे, यह रहस्य है। कदाचित् रात को ताश खेलकर चले, तो बाहर जाने के बदले नीचे अँधेरी कोठरी मे छिप गए। एक दिन एक महाशय मुझमें पत्र लिखाने आए, कमरे मे कलम दावत न था। ऊपर के कमरे से लाने गया। लौटकर आया तो देखा, आप गायब हैं और उनके साथ फाउण्टेन पेन भी गायब है। साराँश यह कि नगर-जीवन नरक-जीवन से कम दुखदाई नही है।

मगर पत्नीजी पर नागरिक जीवन का ऐसा जादू चढा हुआ है कि मेरा कोई बहाना उन पर असर नही करता। इस पत्र के जवाब मे उन्होने लिखा—मुझसे बहाने करते हो, मै हर्गिज न मानूगी। तुम आकर मुझे ले जाओ।

आखिर मुझे पाँचवाँ बहाना करना पडा। यह खोचेवालो के विषय मे था।

अभी बिस्तर मे उठने की नौबत नही आयी कि कानो मे विचित्र आवाजें आने लगी। काबुल के मीनार के निर्माण के समय भी ऐसी निरर्थक आवाजें न आई होगी। यह खोचेवालो की शब्द-क्रीडा है। उचित तो यह था, यह खोचेवाले ढोल-मजीरे के साथ लोगो को अपनी चीजो की ओर आकर्षित करते, मगर इन औंधी अक्लवालो को यह कहा सूझती है। ऐसे पैशाचिक स्वर निकालते हैं कि सुनने वालो के रोएँ खडे हो जाते हैं। बच्चे माँ की गोद मे चिपट जाते हैं। मैं भी रात को अकसर चौक पडता हूँ। एक दिन तो मेरे पडोस मे एक दुर्घटना हो गई। ग्यारह बजे थे। कोई महिला बच्चे को दूध पिलाने उठी थी। एकाएक जो किसी खोचेवाले की भयकर ध्वनि कानो मे आई, तो चीख मारकर चिल्ला उठी और फिर बेहोश हो गई। महीनो की दवा-दारू के

बाद अच्छी हुई। अब रात को कानो मे रूई डालकर सोती है। ऐसे कारण नगरो मे नित्य ही रहते हैं। मेरे ही मित्रो मे कई ऐसे है, जो अपनी स्त्रियों को घर से लाये, मगर वेचारियाँ दूसरे ही दिन आवाजो से भयभीत होकर लौट गयी।

श्रीमती ने इसके जवाव मे लिखा—तुम समझते हो, मैं खोचेवाले की आवाजो से डर जाऊँगी। यहाँ गीदडो का हौवाना और उल्लुओ का चीखना सुनकर तो डरती नही, खोचेवालो से क्या डरूँगी।

अन्त मे मुझे एक ऐसा वहाना सूझा, जिसकी सफलता का मुझे पूरा विश्वास था। यद्यपि इसमे मेरी कुछ वदनामी थी, लेकिन वदनामी से मैं इतना नही डरता, जितना उस विपत्ति से।

फिर मैंने लिखा— शहर शरीफजादियो के रहने की जगह नही। यहाँ की महरियाँ इतनी कटुभापिणी हैं कि वातो का जवाव गालियो से देती है और उनके वनाव-सवार का क्या पूछना। भले घरो की स्त्रिया तो इनके ठाट देखकर ही शर्म से पानी-पानी हो जाती है। सिर से पाँव तक सोने से लदी हुई, सामने से निकल जाती हैं, तो मालूम होता है कि सुगन्धि की लपट लग गई। गृहिणियाँ ये ठाठ कहाँ से लाएँ, उन्हे तो और भा सैकडो चिन्ताएँ हैं। इन महरियो को तो वनाव-सिगार के सिवा दूसरा काम ही नही। नित्य नई सज-धज, नित्य नई अदा, और चचल तो इस गजव की है, मानो रगो मे रक्त की जगह पारा भर दिया हो। उनका चमकना और मटकना और मुस्कराना देखकर गृहिणियाँ लज्जित हो जाती है। और ऐसी दीदा-दिलेर है कि जवरदस्ती घरो मे घुस पड़ती हैं। जिधर देखो, उधर इनका मेला-सा लगा हुआ है। इनके मारे भले आदमियो का घर मे वैठना मुश्किल है। कोई खत लिखाने के वहाने से आ जाती हैं, कोई खत पढाने के वहाने से। असली वात यह है कि गृहदेवियो का रग फीका करने मे इन्हे आनन्द आता है। इसीलिए शरीफजादियाँ वहुत कम शहरो मे आती हैं।

मालूम नही, इस पत्र मे मुझसे क्या गलती हुई कि तीसरे दिन पत्नीजी एक बूढे कहार के साथ मेरा पता पूछती हुई अपने तीनो वच्चो को लिए एक असाध्य रोग की भाति आ डटी।

मैंने वदहवास होकर पूछा—क्यो कुशल तो है?

पत्नीजी ने चादर उतारते हुए कहा—घर मे कोई चुडैल वैठी तो नही है? यहाँ किसी ने कदम रखा तो नाक काट लूँगी हा, जो तुम्हारी शह न हो।

अच्छा, तो अव रहस्य खुला। मैंने सिर पीट लिया। क्या जानता था, तमाचा अपने ही मुह पर पडेगा।

तावान

छकौड़ीलाल ने दूकान खोली और कपड़े के थानो को निकाल-निकाल रखने लगा कि एक महिला, दो स्वयसेवको के साथ उसकी दूकान को छेकने आ पहुची। छकौडी के प्राण निकल गए।

महिला ने तिरस्कार करके कहा—क्यो लाला, तुमने सील तोड डाली न? अच्छी वात है, देखे तुम कैसे एक गिरह कपडा वेच लेते हो! भले आदमी, तुम्हे शर्म नही आती कि देश मे यह सग्राम छिडा हुआ है और तुम विलायती कपडा वेच रहे हो, डूब मरना चाहिए! औरतें तक घरो से निकल पडी हैं, फिर भी तुम्हे लज्जा नही आती! तुम जैसे कायर देश मे न होते, तो उसकी यह अधोगति न होती!

छकौडी ने वास्तव मे कल काग्रेस की सील तोड डाली थी। यह तिरस्कार सुनकर उसने सिर नीचा कर लिया। उसके पास कोई सफाई न थी, जवाव न था। उसकी दूकान वहुत छोटी थी। लेहने पर कपडे लाकर वेचा करता था। यही जीविका थी। इसी पर वृद्धा माता, रोगिणी स्त्री और पाँच वेटे-वेटियो का निर्वाह होता था। जव स्वराज्य-सग्राम छिडा और सभी वजाज विलायती कपडो पर मुहरें लगवाने लगे, तो उसने भी मुहर लगवा ली। दस-पांच थान स्वदेशी कपडो के उधार लाकर दूकान पर रख लिए, पर कपडो का मेल न था, इसलिए विक्री कम होती थी। कोई भूला-भटका ग्राहक आ जाता, तो रुपये-आठ आने की विक्री हो जाती। दिन भर दूकान मे तपस्या-सी करके पहर रात को घर लौट जाता था।

गृहस्थी का खर्च इस विक्री मे क्या चलता! कुछ दिन कर्ज-वाम लेकर काम चलाया, फिर गहने-पाते की नौवत आई। यहाँ तक कि अव घर मे कोई ऐसी चीज न वची, जिससे दो-चार महीने पेट का भूत सिर से टाला जाता। उधर स्त्री का रोग असाध्य होता जाता था। विना किसी कुशल डाक्टर को दिखाए काम न चल सकता था। इसी चिंता मे डूव-उतरा रहा था कि विलायती कपडे का एक गाहक मिल गया, जो एकमुश्त दस रुपये का माल लेना चाहता था। इस प्रलोभन को वह न रोक सका!

स्त्री ने सुना, तो कानो पर हाथ रखकर बोली—मैं मुहर तोडने को कभी न कहूँगी। डाक्टर तो कुछ अमृत पिला न देगा। तुम नक्कू क्यो बनो? बचना होगा बच जाऊँगी, मरना होगा मर जाऊँगी, बेआबरूई तो न होगी। मैं जीकर ही घर का क्या उपकार कर रही हूँ? और सबको दिक कर रही हूँ। देश को स्वराज्य मिले, लोग सुखी हो, बला से मैं मर जाऊँगी। हजारो आदमी जेल जा रहे हैं, कितने घर तबाह हो गए, तो क्या सबसे ज्यादा प्यारी मेरी ही जान है?

पर छकौडी इतना पक्का न था। अपना बस चलते, वह स्त्री को भाग्य के भरोसे न छोड सकता था। उसने चुपके से मुहर तोड डाली और लागत के दामो दस रुपये के कपडे बेच लिए।

अब डाक्टर को कैसे ले जाए। स्त्री से क्या परदा रखता? उसने जाकर साफ-साफ सारा वृत्तात कह सुनाया और डाक्टर को बुलाने चला।

स्त्री ने उसका हाथ पकडकर कहा—मुझे डाक्टर की जरूरत नही, अगर तुमने जिद की तो दवा की तरफ आँख भी न उठाऊँगी।

छकौडी और उसकी मा ने रोगिणी को बहुत समझाया, पर वह डाक्टर को बुलाने पर राजी न हुई। छकौडी ने दसो रुपये उठाकर घर-कुइयाँ मे फेंक दिए और बिना कुछ खाए-पीए, किस्मत को रोता-झीकता दूकान पर चला आया। उसी वक्त पिकेट करने वाले आ पहुँचे और उसे फटकारना शुरू कर दिया। पडोस के दूकानदार ने काग्रेस-कमेटी मे जाकर चुगली खाई थी।

2

छकौडी ने महिला के लिए अन्दर से लोहे की एक टूटी, बेरग कुर्सी निकाली और लपककर उनके लिए पान लाया। जब वह पान खाकर कुरसी पर बैठी, तो उसने अपराध के लिए क्षमा माँगी। बोला—बहनजी, बेशक मुझसे यह अपराध हुआ है, लेकिन मैंने मजबूर होकर मुहर तोडी। अबकी मुझे मुआफी दीजिए। फिर ऐसी खता न होगी।

देशसेविका ने थानेदारो के रोब के साथ कहा—यो अपराध क्षमा नही हो सकता। तुम्हे इसका तावान देना पडेगा। तुमने काग्रेस के साथ विश्वासघात किया है और इसका तुम्हे दण्ड मिलेगा। आज ही बायकाट-कमेटी मे यह मामला पेश होगा।

छकौडी बहुत ही विनीत, बहुत ही सहिष्णु था, लेकिन चिताग्नि मे तप कर उसका हृदय उस दशा को पहुँच गया था जब एक चोट भी चिनगारियाँ पैदा कर देती है। तिनककर बोला—तावान तो मैं न दे सकता हूँ, न दूंगा। हाँ, दूकान भले ही बन्द कर दू। और दूकान भी क्यो बन्द करूँ? अपना माल

है, जिस जगह चाहूँ, वेच सकता हूँ। अभी जाकर थाने मे लिखा दू, तो वायकाट कमेटी को भागने की राह न मिले। जितना ही दवता हूँ, उतना ही आप लोग दवाती हैं।

महिला ने सत्याग्रह शक्ति के प्रदर्शन का अवसर पाकर कहा—हाँ, जरूर पुलिस मे रपट करो, मैं तो चाहती हूँ। तुम उन लोगो को यह धमकी दे रहे हो, जो तुम्हारे ही लिए अपने प्राणो का बलिदान कर रहे हैं। तुम इतने स्वार्थान्ध हो गए हो कि अपने स्वार्थ के लिए देश का अहित करते तुम्हें लज्जा नही आती! उस पर मुझे पुलिस की धमकी देते हो! वायकाट-कमेटी जाए या रहे, पर तुम्हे तावान देना पडेगा, अन्यथा दूकान वन्द करनी पडेगी।

यह कहते-कहते महिला का चेहरा गर्व से तेजवान हो गया। कई आदमी जमा हो गए और सवके सव छकौडी को बुरा-भला कहने लगे। छकौडी को मालूम हो गया कि पुलिस की धमकी देकर उसने वहुत वडा अविवेक किया है। लज्जा और अपमान से उसकी गर्दन झुक गई और मुँह जरा-सा निकल आया। फिर उसने गर्दन नही उठायी।

सारा दिन गुजर गया और धेले की विक्री न हुई। आखिर हारकर उसने दूकान वन्द कर दी और घर चला आया।

दूसरे दिन प्रातःकाल वायकाट-कमेटी ने एक स्वयसेवक द्वारा उसे सूचना दे दी कि कमेटी ने उसे १०१ रु० का दण्ड दिया है।

3

छकौडी इतना जानता था कि काग्रेस की शक्ति के सामने वह सर्वथा अशक्त है। उसकी जवान से जो धमकी निकल गई थी, उस पर घोर पश्चात्ताप हुआ, लेकिन तीर कमान से निकल चुका था। दूकान खोलना व्यर्थ था। वह जानता था, उसकी धेले की विक्री न होगी। १०१ रु० देना उसके वूते से वाहर की वात थी! दो-तीन दिन तो वह चुपचाप वैठा रहा। एक दिन, रात को दूकान खोलकर सारी गाँठें घर उठा लाया और चुपके-चुपके वेचने लगा। पैसे की चीज धेले मे लुटा रहा था और वह भी उधार। जीने के लिए कुछ आधार तो चाहिए।

मगर उसकी यह चाल काँग्रेस से छिपी न रही। चौथे ही दिन गोइंदो ने काँग्रेस को खवर पहुँचा दी। उसी दिन तीसरे पहर छकौडी के घर की पिकेटिंग शुरू हो गई। अवकी सिर्फ पिकेटिंग शुरू न थी, स्यापा भी था। पाँच-छ. स्वय-सेविकाएँ और इतने स्वयसेवक द्वार पर स्यापा करने लगे।

छकौडी आँगन मे सिर झुकाए खडा था। कुछ अक्ल न काम करती थी, इस विपत्ति को कैसे टाले। रोगिणी स्त्री सायवान मे लेटी हुई थी, वृद्धा माता

उसके सिरहाने बैठी पंखा झल रही थी और बच्चे बाहर स्यापे का आनन्द उठा रहे थे।

स्त्री ने कहा—इन सबसे पूछते नही, खाएँ क्या ?

छकौडी बोला—किससे पूछू, जब कोई सुने भी !

'जाकर काग्रेसवालो से कहो, हमारे लिए कुछ इतजाम कर दे, हम अभी कपड़े को जला देंगे। ज्यादा नहीं, २५ रु० ही महीना दे दें।'

'वहाँ भी कोई न सुनेगा।'

'तुम जाओ भी या यही से कानून बघारने लगे।'

'क्या जाऊँ, उलटे और हँसी उडाएँगे। यहाँ तो जिसने दूकान खोली, उसे दुनिया लखपती ही समझने लगती है।'

'तो खडे-खडे गालियाँ सुनते रहोगे ?'

'तुम्हारे कहने से कहो, चला जाऊँ, लेकिन वहाँ ठठोली के सिवा और कुछ न होगा।'

'हाँ, मेरे कहने से जाओ। जब कोई न सुनेगा, तो हम भी कोई और राह निकालेंगे।'

छकौडी ने मुह लटकाए कुरता पहना और इस तरह काग्रेस-दफ्तर चला जैसे कोई मरणासन्न रोगी को देखने के लिए वैद्य को बुलाने जाता है।

4

काग्रेस-कमेटी के ने प्रधान ने परिचय के बाद पूछा—तुम्हारे ही ऊपर तो बायकाट-कमेटी ने 101 रु० का तावान लगाया है ?

'जी हाँ।'

'तो रुपया कब दोगे ?'

'मुझमे तावान देने की सामर्थ्य नही है। आपसे मैं सत्य कहता हूँ, मेरे घर मे दो दिन से चूल्हा नही जला। घर की जो जमा-जथा थी, वह सब बेचकर खा गया। अब आपने तावान लगा दिया, दूकान बन्द करनी पडी। घर पर कुछ माल बेचने लगा। वहाँ स्यापा बैठ गया। अगर आपकी यही इच्छा हो कि हम सब दाने बतौर मर जाएँ, तो मार डालिए और मुझे कुछ नही कहना है।'

छकौडी जो बात कहने घर से चला था, वह उसके मुँह से न निकली। उसने देख लिया, यहाँ कोई उस पर विचार करने वाला नही है।

प्रधानजी ने गम्भीर-भाव से कहा—तावान तो देना ही पडेगा। अगर तुम्हें छोड़ दू, तो इसी तरह और लोग भी करेंगे। फिर विलायती कपड़े की रोक-थाम कैसे होगी ?

'मैं आपसे जो कह रहा हूँ, उस पर आपको विश्वास नही आता ?'

'मै जानता हूँ, तुम मालदार आदमी हो ।'

'मेरे घर की तलाशी ले लीजिए ।'

'मै इन चकमो मे नही आता ।'

'छकौडी ने उद्दंड होकर कहा—तो यह कहिए कि आप सेवा नही कर रहे हैं, गरीबो का खून चूस रहे हैं । पुलिसवाले कानूनी पहलू से लेते हैं, आप गैर-कानूनी पहलू से लेते हैं । नतीजा एक है । आप भी अपमान करते है, वह भी अपमान करते है । मैं कसम खा रहा हूँ कि मेरे घर मे खाने के लिए दाना नही है, मेरी स्त्री खाट पर पडी-पडी मर रही है । फिर भी आपको विश्वास नही आता । आप मुझे काग्रेस का काम करने के लिए नौकर रख लीजिए । 25 रु० महीने दीजिएगा । इससे ज्यादा अपनी गरीवी का क्या प्रमाण दूं ? अगर मेरा काम सतोष के लायक न हो, तो एक महीने के वाद मुझे निकाल दीजिएगा । यह समझ लीजिए कि जव मै आपकी गुलामी करने को तैयार हुआ हूँ, तो इसलिए कि मुझे दूसरा कोई अधार नही है । हम व्यापारी लोग, अपना वस चलते, किसी की चाकरी नही करते । जमाना विगडा हुआ है, नही 101 रु० के लिए इतना हाथ-पाँव न जोडता ।

प्रधानजी हँसकर वोले—यह तो तुमने नई चाल चली ।

'चाल नही चल रहा हूँ, अपनी विपत्ति-कथा कह रहा हूँ ।'

'काग्रेस के पास इतने रुपये नही हैं कि वह मोटो को खिलाती फिरे ।'

'अव भी आप मुझे मोटा कहे जाएँगे ?'

'तुम मोटे ही हो ।'

'मुझ पर जरा भी दया न कीजिएगा ?"

प्रधान ज्यादा गहराई से वोले—छकौडीलालजी, मुझे पहले तो इसका विश्वास नही आता कि आपकी हालत इतनी खराव है, और अगर विश्वास आ भी जाय, तो भी मैं कुछ नही कर सकता । इतने महान् आन्दोलन मे कितने ही घर तवाह हुए और होगे । हम लोग सभी तवाह हो रहे हैं । आप समझते हैं, हमारे सिर कितनी वडी जिम्मेदारी है । आपका तावान मुआफ कर दिया जाए, तो कल ही आपके बीसियो भाई अपनी मुहरें तोड डालेंगे और हम उन्हे किसी तरह कायल न कर सकेंगे । आप गरीव हैं, लेकिन सभी भाई तो गरीव नही है । तव तो सभी अपनी गरीवी के प्रमाण देने लगेंगे । मैं किस-किसकी तलाशी लेता फिरूँगा । इसलिए जाइए, किसी तरह रुपये का प्रवन्ध कीजिए और दूकान खोलकर कारवार कीजिए । ईश्वर चाहेगा, तो वह दिन भी आएगा जव आपका नुकसान पूरा होगा ।

5

छकौडी घर पहुचा, तो अँधेरा हो गया था। अभी तक उसके द्वार पर स्यापा हो रहा था। घर मे जाकर स्त्री से वोला—आखिर वही हुआ, जो मैं कहता था। प्रधानजी को मेरी वातो पर विश्वास नही आया।

स्त्री का मुरझाया हुआ वदन उत्तेजित हो उठा। उठ खड़ी हुई और वोली—अच्छी वात है, हम उन्हे विश्वास दिला देंगे। मैं अव काग्रेस दफ्तर के सामने ही मरूगी। मेरे वच्चे उसी दफ्तर के सामने भूख से विकल हो-होकर तडपेंगे। काग्रेस हमारे साथ सत्याग्रह करती है, तो हम भी उसके साथ सत्याग्रह करके दिखा दे। मैं इस मरी हुई दशा मे भी काग्रेस को तोड डालूँगी। जो अभी इतने निर्दयी है, वह कुछ अधिकार पा जाने पर क्या न्याय करेंगे? एक इक्का वुला लो, खाट की जरूरत नही। वही सडक किनारे मेरी जान निकलेगी। जनता ही के वल पर तो वह कूद रहे है। मैं दिखा दूगी, जनता तुम्हारे साथ नही, मेरे साथ है।

इम अग्निकुड के सामने छकौडी की गर्मी शान्त हो गई। काग्रेस के साथ इस रूप मे सत्याग्रह की कल्पना ही से वह काँप उठा। सारे शहर मे हलचल पड जाएगी, हजारो आदमी आकर यह दशा देखेंगे। सम्भव है, कोई हगामा ही हो जाए। यह सभी वातें इतनी भयकर थी कि छकौडी का मन कातर हो गया। उसने स्त्री को शान्त करने की चेष्टा करते हुए कहा—इस तरह चलना उचित नही है अम्वे! मै एक वार प्रधानजी से फिर मिलूँगा। अव रात हुई, स्यापा वन्द हो जाएगा। कल देखी जाएगी। अभी तो तुमने पथ्य भी नही लिया। प्रधानजी वेचारे वडे असमंजस मे पडे हुए हैं। कहते है, अगर आपके साथ रियायत कर दें, तो फिर कोई शासन ही न रह जाएगा। मोटे-मोटे आदमी भी मुहरे तोड डालेंगे और जव कुछ कहा जाएगा, तो आपकी नजीर पेश कर देंगे।

अम्वा एक क्षण अनिश्चित दशा मे खडी छकौडी का मुह देखती रही, फिर धीरे मे खाट पर वैठ गई। उसकी उत्तेजना गहरे विचार मे परिणत हो गई। काग्रेम की और अपनी जिम्मेदारी का खयाल आ गया। प्रधानजी के कथन कितने मत्य थे, यह उससे छिपा न रहा।

उसने छकौडी से कहा—तुमने आकर यह वात न कही थी।

छकौडी वोला—उस वक्त मुझे इसकी याद न थी।

'यह प्रधानजी ने कहा है, या तुम अपनी तरफ से मिला रहे हो?'

'नही, उन्होने खुद कहा, मैं अपनी तरफ से क्यो मिलाता?'

'वात तो उन्होंने ठीक ही कही!'

'हम तो मिट जाएँगे!'

'हम तो यो ही मिटे हुए हैं!"

'रुपए कहाँ से आएँगे ?' भोजन के लिए तो ठिकाना ही नही, दण्ड कहाँ से दें।

'और कुछ नही है, घर तो है। इसे रेहन रख दो और विलायती कपडे भूलकर भी न वेचना। सड जाएँ, कोई परवाह नही। तुमने सील तोडकर यह आफत सिर ली। मेरी दवा-दारू की चिन्ता न करो। ईश्वर की जो इच्छा होगी, वह होगा। वाल-वच्चे भूखो मरते हैं, मरने दो। देश मे करोडो आदमी ऐसे हैं, जिनकी दशा हमारी दशा से भी खराब है। हम न रहेगे, देश तो सुखी होगा।'

छकौडी जानता था, अम्वा जो कहती है, वह करके रहती है, कोई उज्र नही सुनती। वह सिर झुकाए, अम्वा पर झुझलाता हुआ घर से निकलकर महाजन के घर की ओर चला।

घासवाली

मुलिया हरी-हरी घास का गट्ठा लेकर आयी, तो उसका गेहुँआ रग कुछ तमतमाया हुआ था और वड़ी-वडी मद भरी आँखो मे शंका समाई हुई थी। महावीर ने उसका तमतमाया हुआ चेहरा देखकर पूछा—क्या है मुलिया, आज कैसा जी है ?

मुलिया ने कुछ जवाव न दिया। उसकी आँखे डवडवा गई।

महावीर ने समीप आकर पूछा - क्या हुआ, वताती क्यो नही ? किसी ने कुछ कहा है, अम्माँ ने डाँटा है, क्यो इतनी उदास है ?

मुलिया ने सिसककर कहा—कुछ नही, हुआ क्या है, अच्छी तो हूँ ?

महावीर ने मुलिया को सिर से पाँव तक देखकर कहा—चुपचाप रोएगी, वताएगी नही ?

मुलिया ने वात टालकर कहा—कोई वात भी हो, क्या वताऊँ।

मुलिया इस ऊमर मे गुलाव का फूल थी। गेहुआँ रग था, हिरन की-सी आँखें, नीचे खिचा हुआ चिवुक, कपोलो पर हल्की लालिमा, वड़ी-वडी नुकीली पलकें, आँखो मे एक विचित्र आर्द्रता, जिसमे एक स्पष्ट वेदना, एक मूक व्यथा झलकती रहती थी। मालूम नही, चमारो के इस घर मे यह अप्सरा कहाँ से आ गई। क्या उसका कोमल फूल-सा गात इस योग्य था कि सिर पर घास की टोकरी रखकर वेचने जाती ? उस गाँव मे भी ऐसे लोग मौजूद थे, जो उसके तलवो के नीचे आँखे विछाते थे, उसकी एक चितवन के लिए तरसते थे, जिनसे अगर यह एक शब्द भी वोलती, तो निहाल हो जाते, लेकिन उसे आये साल भर से अधिक हो गया, किसी ने उसे युवको की तरफ ताकते या वाते करते नही देखा। वह घास लिये निकलती तो ऐसा मालूम होता, मानो उषा का प्रकाश, सुनहरे आवरण से रंजित, अपनी छटा विखेरता जाता हो। कोई गजलें गाता, कोई छाती पर हाथ रखता, पर मुलिया नीची आँखे किए अपनी राह चली जाती। लोग हैरान होकर कहते—इतना अभियान ! महावीर मे ऐसे क्या सुर्खाव के पर लगे हैं। ऐसा अच्छा जवान भी तो नही, न जाने यह कैसे उसके साथ रहती है !

मगर आज एक ऐसी वात हो गई, जो इस जाति की और युवतियो के लिए

चाहे गुप्त सदेश होती, मुलिया के लिए हृदय का शूल थी। प्रभात का समय था, पवन आम की बौर की सुगन्धि से मतवाला हो रहा था, आकाश पृथ्वी पर सोने की वर्षा कर रहा था। मुलिया सिर पर झौआ रखे घास छीलने चली, तो उसका गेहुँआ रंग प्रभात की सुनहरी किरणो से कुन्दन की तरह दमक उठा। एकाएक युवक चैनसिंह सामने से आता हुआ दिखाई दिया। मुलिया ने चाहा कि कतराकर निकल जाए, मगर चैनसिंह ने उसका हाथ पकड लिया और बोला—मुलिया, तुझे क्या मुझ पर जरा भी दया नही आती ?

मुलिया का वह फूल-सा खिला हुआ चेहरा ज्वाला की तरह दहक उठा। वह जरा भी नही डरी, जरा भी न झिझकी, झौआ जमीन पर गिरा दिया और बोली—मुझे छोड़ दो, नही मैं चिल्लाती हूँ।

चैनसिंह को आज जीवन मे एक नया अनुभव हुआ। नीची जातो मे रूप-माधुर्य का इसके सिवा और काम ही क्या है कि वह ऊँची जातिवालो का खिलौना बने। ऐसे कितने ही मार्के उसने जीते थे, पर आज मुलिया के चेहरे का वह रग, उसका वह क्रोध, वह अभिमान देखकर उसके छक्के छूट गए। उसने लज्जित होकर उसका हाथ छोड दिया। मुलिया वेग से आगे बढ गई।

सघर्ष की गरमी मे चोट की व्यथा नही होती, पीछे से टीस होने लगती है। मुलिया जब कुछ दूर निकल गयी, तो क्रोध और भय तथा अपनी बेकसी का अनुभव करके उसकी आँखो मे आँसू भर आए। उसने कुछ देर जब्त किया, फिर सिसक-सिसककर रोने लगी। अगर वह इतनी गरीब न होती, तो किसी की मजाल थी कि इस तरह उसका अपमान करता ! वह रोती जाती थी और घास छीलती जाती थी। महावीर का क्रोध वह जानती थी। अगर उससे कह दे, तो वह इस ठाकुर के खून का प्यासा हो जाएगा। फिर न जाने क्या हो ! इस खयाल से उसके रोएँ खडे हो गए। इसीलिए उसने महावीर के प्रश्नो का कोई उत्तर न दिया।

2

दूसरे दिन मुलिया घास के लिए न गयी। सास ने पूछा—तू क्यो नही जाती और सब तो चली गयी ?

मुलिया ने सिर झुकाकर कहा—मैं अकेले न जाऊँगी।

सास ने बिगडककर कहा—अकेले क्या तुझे बाघ उठा ले जाएगा ?

मुलिया ने और भी सिर झुका लिया और दबी हुई आवाज मे बोली—सब मुझे छेडते हैं।

सास ने डाँटा—न तू औरो के साथ जाएगी, न अकेली जाएगी, तो फिर जाएगी कैसे ? साफ-साफ यह क्यो नही कहती कि मैं न जाऊँगी। तो यहाँ मेरे

घर मे रानी बनके निवाह न होगा। किसी को चाम नही प्यारा होता, काम प्यारा होता है। तू बडी सुन्दर है, तो तेरी सुन्दरता लेकर चाटूं? उठा झाबा और घास ला!

द्वार पर नीम के दरख्त के साए मे महावीर खड़ा, घोडे को मल रहा था। उसने मुलिया को रोनी सूरत बनाए जाते देखा, पर कुछ बोल न सका। उसका बस चलता तो मुलिया को कलेजे मे बिठा लेता, आँखो मे छिपा लेता, लेकिन घोडे का पेट भरना भी जरूरी था। घास मोल लेकर खिलाए, तो बारह आने रोज से कम न पड़ें। ऐसी मजदूरी ही कौन होती है! मुश्किल से डेढ-दो रुपये मिलते हैं, वह भी कभी मिले, कभी न मिले। जब से यह सत्यानाशी लारियाँ चलने लगी हैं, इक्केवालो की बधिया बैठ गई है। कोई सेत भी नही पूछता। महाजन से डेढ-सौ रुपये उधार लेकर इक्का और घोड़ा खरीदा था, मगर लारियो के आगे इक्के को कौन पूछता है? महाजन का सूद भी तो न पहुँच सकता था। मूल का कहना ही क्या। ऊपरी मन से बोला—न मन हो, तो रहने दे, देखी जाएगी।

इस दिलजोई से मुलिया निहाल हो गई। बोली—घोडा खाएगा क्या?

आज उसने कल का रास्ता छोड दिया और खेतो की मेडो से होती हुई चली। बार-बार सतर्क आँखो से इधर-उधर ताकती जाती थी। दोनो तरफ ऊख के खेत खडे थे। जरा भी खडखडाहट होती, उसका जी सन्न हो जाता। कही कोई ऊख मे छिपा न बैठा हो, मगर कोई नई बात न हुई। ऊख के खेत निकल गए, आमो का बाग निकल गया, सिंचे हुए खेत नजर आने लगे। दूर के कुएँ पर पुल चल रहा था। खेतो की मेडो पर हरी-हरी घास जमी हुई थी। मुलिया का जी ललचाया। यहाँ आध घटे मे जितनी घास छिल सकती है, सूखे मैदान मे दोपहर तक न छिल सकेगी। यहाँ देखता ही कौन है? कोई चिल्लाएगा, तो चली जाऊँगी। वह बैठकर घास छीलने लगी और एक घटे मे उसका झाबा आधे से ज्यादा भर गया। वह अपने काम मे इतनी तन्मय थी कि उसे चैनसिंह के आने की खबर ही न हुई। एकाएक उसने आहट पाकर सिर उठाया, तो चैनसिंह को खडा देखा।

मुलिया की छाती धक्-से हो गई। जी मे आया भाग जाए, झाबा उलट दे और खाली झाबा लेकर चली जाए, पर चैनसिंह ने कई गज के फासले से ही रुककर कहा—डर मत, डर मत! भगवान् जानता है, मैं तुमसे कुछ न बोलूगा। जितनी घास चाहे छील ले, मेरा ही खेत है।

मुलिया के हाथ सुन्न हो गए, खुरपी हाथ मे जम-सी गई, घास नजर ही न आती थी। जी चाहता था, जमीन फट जाए और मैं समा जाऊँ। जमीन आँखों के सामने तैरने लगी।

चैनसिंह ने आश्वासन दिया—छीलती क्यों नहीं ? मैं तुझसे कुछ कहता थोड़े ही हूँ। यहीं रोज चली आया कर, मैं छील दिया करूँगा।

मुलिया चित्रलिखित-सी बैठी रही।

चैनसिंह ने एक कदम और आगे बढाया और बोला—तू इतना मुझसे डरती क्यों है ? क्या तू समझती है, मैं आज भी तुझे सताने आया हूँ ? ईश्वर जानता है, कल भी तुझे सताने के लिए मैंने तेरा हाथ नहीं पकडा था। तुझे देखकर आप-ही-आप हाथ बढ गए। मुझे कुछ सुध ही नहीं रही। तू चली गयी, तो मैं वहीं बैठकर रोता रहा। जी में आता था, हाथ काट डालूं। कभी जी चाहता था, जहर खालू। तभी से तुझे ढूढ रहा हू। आज तू इस रास्ते में चली आयी। मैं सारा हार छानता हुआ यहाँ आया हूँ। अब जो सजा तेरे जी मे आवे, दे-दे। अगर तू मेरा सिर भी काट ले, तो गर्दन न हिलाऊँगा। मैं शोहदा था, लुच्चा था लेकिन जब से तुझे देखा है, मेरे मन की सारी खोट मिट गई। अब तो यही जी मे आता है, कि तेरा कुत्ता होता और तेरे पीछे-पीछे चलता, तेरा घोडा होता तब तो तू अपने हाथो से मेरे सामने घास डालती। किस तरह यह चोला तेरे काम आए, मेरे मन की यह सबसे बडी लालसा है। मेरी जवानी काम न आए, अगर मैं किसी खोट से यह बाते कर रहा हूँ। बडा भागवान था महावीर, जो ऐसी देवी उसे मिली।

मुलिया चुपचाप सुनती रही, फिर सिर नीचा करके भोलेपन से बोली—तो तुम मुझे क्या करने को कहते हो ?

चैनसिंह और समीप आकर बोला—बस तेरी दया चाहता हूँ।

मुलिया ने सिर झुकाकर उसकी ओर देखा। उसकी लज्जा न जाने कहाँ गायब हो गई। चुभते हुए शब्दो मे बोली—तुमसे एक बात कहूँ, बुरा तो न मानोगे ? तुम्हारा विवाह हो गया या नहीं ?

चैनसिंह ने दबी जबान से कहा—ब्याह तो हो गया है, लेकिन ब्याह क्या है, खिलवाड है।

मुलिया के होठो पर अवहेलना की मुस्कराहट झलक पडी, बोली—फिर भी अगर मेरा आदमी तुम्हारी औरत से इसी तरह बाते करता, तो तुम्हे कैसा लगता ? तुम उसकी गर्दन काटने पर तैयार हो जाते कि नहीं ? बोलो ! क्या समझते हो कि महावीर चमार है, तो उसकी देह मे लहू नहीं है, उसे लज्जा नहीं है, अपनी मर्यादा का विचार नहीं है ! मेरा रूप-रग तुम्हे भाता है। क्या घाट के किनारे मुझसे कहीं सुन्दर औरते नहीं घूमा करती ? मैं उनके तलवो की बराबरी भी नहीं कर सकती। तुम उनमे से किसी से क्यो नहीं दया माँगते ? क्या उनके पास दया नहीं है ? मगर वहाँ तुम न जाओगे, क्योंकि वहाँ जाते तुम्हारी छाती दहलती है। मुझसे दया मागते हो, इसलिए न कि मैं चमारिन हूँ,

नीच जाति हूँ और नीच जाति की औरत जरा-सी घुडकी-धमकी या जरा-से लालच से तुम्हारी मुट्ठी मे आ जाएगी। कितना सस्ता सौदा है! ठाकुर हो न, ऐसा सस्ता सौदा क्यो छोड़ने लगे?

चैनसिंह लज्जित होकर बोला—मूला, यह बात नही है। मैं सच कहता हूँ, इसमें ऊँच नीच की बात नही है। सब आदमी बराबर हैं। मैं तो तेरे चरणो पर सिर रखने को तैयार हूँ।

मुलिया—इसलिए न कि जानते हो, मैं कुछ कर नही सकती। जाकर किसी खतरानी के चरणो पर सिर रखो, तो मालूम हो कि चरणो पर सिर रखने का क्या फल मिलता है! फिर यह सिर तुम्हारी गर्दन पर न रहेगा।

चैनसिंह मारे शर्म के जमीन मे गडा जाता था। उसका मुँह ऐसा सूख गया था, मानो महीनो की बीमारी से उठा हो। मुह से बात न निकलती थी। मुलिया इतनी वाक्पटु है, इसका उसे गुमान भी न था।

मुलिया फिर बोली—मैं भी रोज बाजार जाती हूँ। बडे-बडे घरो का हाल जानती हूँ। मुझे किसी बडे घर का नाम बता दो, जिसमे कोई साईस, कोई कोचवान, कोई कहार, कोई पडा, कोई महराज न घुसा बैठा हो? यह सब बडे घरो की लीला है। और वे औरतें जो कुछ करती हैं, ठीक करती है। उनके घर वाले भी तो चमारिनो और कहारिनो पर जान देते फिरते है। लेना-देना बराबर हो जाता है। बेचारे गरीब आदमियो के लिए यह बातें कहाँ? मेरे आदमी के लिए ससार मे जो कुछ हूँ, मैं हूँ। वह किसी दूसरी मिहरिया की ओर आँख उठाकर भी नही देखता। सयोग की बात है कि मैं तनिक सुन्दर हूँ; लेकिन मैं काली-कलूटी भी होती, तब भी वह मुझे इसी तरह रखता, इसका मुझे विश्वास है। मैं चमारिन होकर भी इतनी नीच नही हूँ कि विश्वास का बदला खोट से दू। हाँ, वह अपने मन की करने लगे, मेरी छाती पर मूँग दलने लगे, तो मैं भी उसकी छाती पर मूग दलूगी। तुम मेरे रूप ही के दीवाने हो न? आज मुझे माता निकल आए, कानी हो जाऊं, तो मेरी ओर ताकोगे भी नही। बोलो, झूठ कहती हूँ?

चैनसिंह इनकार न कर सका।

मुलिया ने उसी गर्व से भरे हुए स्वर मे कहा—लेकिन मेरी एक नही, दोनो आँखें फूट जाएँ, तब भी वह मुझे इसी तरह रखेगा। मुझे उठावेगा, बैठावेगा, खिलावेगा। तुम चाहते हो, मैं ऐसे आदमी के साथ कपट करूँ? जाओ, अब मुझे कभी न छेडना, नही अच्छा न होगा।

3

जवानी जोश है, बल है, दया है, साहस है, आत्मविश्वास है, गौरव है और

सब-कुछ जो जीवन को पवित्र, उज्ज्वल और पूर्ण बना देता है। जवानी का नशा घमण्ड है, निर्दयता है, स्वार्थ है, शेखी है, विषय-वासना है, कटुता है और वह सब-कुछ जो जीवन को पशुता, विकार और पतन की ओर ले जाता है। चैनसिंह पर जवानी का नशा था। मुलिया के शीतल छींटों ने नशा उतार दिया, जैसे उबलती हुई चाशनी मे पानी के छींटे पड जाने से फेन मिट जाता है, मैल निकल जाता है और निर्मल, शुद्ध रस निकल आता है। जवानी का नशा जाता रहा, केवल जवानी रह गई। कामिनी के शब्द जितनी आसानी से दीन और ईमान को गारत कर सकते हैं, उतनी ही आसानी से उनका उद्धार भी कर सकते हैं।

चैनसिंह उस दिन से दूसरा ही आदमी हो गया। गुस्सा उसकी नाक पर रहता था, बात बात पर मजदूरो को गालियाँ देना, डाँटना और पीटना उसकी आदत थी। आसामी उससे थर-थर कापते थे। मजदूर उसे आते देखकर अपने काम मे चुस्त हो जाते थे। पर ज्योंही उसने इधर पीठ फेरी और उन्होंने चिलम पीना शुरू किया। सब दिल मे उससे जलते थे, उसे गालियाँ देते थे, मगर उस दिन से चैनसिंह इतना दयालु, गम्भीर, सहनशील हो गया कि लोगों को आश्चर्य होता था।

कई दिन गुजर गए थे। एक दिन सध्या समय चैनसिंह खेत देखने गया। पुरा चल रहा था। उसने देखा कि एक जगह नाली टूट गई है और सारा पानी बहा चला जाता है। क्यारियो मे पानी बिलकुल नही पहुँचता, मगर क्यारी बनाने वाली बुढिया चुपचाप बैठी है। उसे इसकी जरा भी फिक्र नही है कि पानी क्यो नही आता। पहले यह दशा देखकर चैनसिंह आपे से बाहर हो जाता। उस औरत की उस दिन की पूरी मजूरी काट लेता और पुर चलाने-वालो को घुडकिया जमाता, पर आज उसे क्रोध नही आया। उसने मिट्टी लेकर नाली बाध दी और खेत मे जाकर बुढिया से बोला—तू यहाँ बैठी है और पानी सब बहा जा रहा है।

बुढिया घबडाकर बोली—अभी खुल गई होगी राजा! मैं अभी जाकर बन्द किए देती हूँ।

यह कहती हुई वह थरथर कापने लगी। चैनसिंह ने उसकी दिलजोई करते हुए कहा—भाग मत, भाग मत, मैने नाली बन्द कर दी है। बुढऊ कई दिन से नही दिखाई दिए, कही काम पर जाते है कि नही?

बुढिया गद्गद होकर बोली—आजकल तो खाली ही बैठे हैं भैया, कहीं काम नही लगता।

चैनसिंह ने नम्र भाव से कहा—तो हमारे यहाँ लगा दे। थोडा-सा सन रखा है, उसे कात दें।

यह कहता हुआ वह कुएँ की ओर चला गया। यहाँ चार पुर चल रहे थे,

पर इस वक्त दो हँकवे वेर खाने गए हुए थे। चैनसिंह को देखते ही मजूरो के होश उड गए। ठाकुर ने पूछा, दो आदमी कहाँ गये, तो क्या जवाव देंगे ? सव-के सव डाँटे जायेंगे वेचारे दिल मे सहमे जा रहे थे। चैनसिंह ने पूछा—वह दोनो कहाँ चले गये ?

किसी के मुँह से आवाज न निकली। सहसा सामने से दोनो मजदूर धोती के एक कोने मे वेर भरे आते दिखाई दिए। खुश-खुश वातें करते चले आ रहे थे। चैनसिंह पर निगाह पडी, तो दोनो के प्राण सूख गए। पाँव मन-मन भर के हो गए। अव न आते वनता है, न जाते। दोनो समझ गए कि आज डाट पडी, शायद मजदूरी भी कट जाए। चाल धीमी पड गई। इतने मे चैनसिंह ने पुकारा—वढ आओ, वढ आओ ! कैसे वेर है, लाओ जरा मुझे भी दो, मेरे ही पेड के है न ?

दोनो और भी सहम उठे। आज ठाकुर जीता न छोडेगा। कैसा मीठा-मीठा कर वोल रहा है। उतनी ही भिगो-भिगोकर लगाएगा। वेचारे और भी सिकुड गए।

चैनसिंह ने फिर कहा—जल्दी से आओ जी, पक्की-पक्की सव मै ले लूंगा। जरा एक आदमी लपककर घर से थोडा-सा नमक तो ले लो। (वाकी दोनों मजदूरो से) तुम भी दोनो आ जाओ, उस पेड के वेर मीठे होते है। वेर खा लें, काम तो करना ही है।

अव दोनो भगोडो को कुछ ढाढस हुआ। सवो ने आकर सव वेर चैनसिंह के आगे डाल दिए और पक्के-पक्के छाँटकर उसे देने लगे। एक आदमी नमक लाने दौडा। आध घण्टे तक चारो पुर वन्द रहे। जव सव वेर उड गए और ठाकुर चलने लगे, तो दोनो अपराधियो ने हाथ जोडकर कहा—भैयाजी, आज जानवकसी हो जाए। वडी भूख लगी थी, नही तो कभी नही जाते।

चैनसिंह ने नम्रता से कहा—तो इसमे वुराई क्या हुई ? मैने भी तो वेर खाए। एक-आध घण्टे का हरज हुआ, यही न ? तुम चाहोगे, तो घण्टे-भर का काम आधे घन्टे मे कर दोगे। न चाहोगे, दिन-भर मे घण्टे-भर का भी काम न होगा।

चैनसिंह चला गया, तो चारो वाते करने लगे।

एक ने कहा—मालिक इस तरह रहे, तो काम करने मे जी लगता है। यह नही कि हरदम छाती पर सवार !

दूसरा—मैंने तो समझा, आज कच्चा ही खा जायेंगे।

तीसरा—कई दिन से देखता हूँ, मिजाज वहुत नरम हो गया है।

चौथा—साँझ को पूरी मजूरी मिले तो कहना !

पहला—तुम तो हो गोवर-गनेस। आदमी नही पहचानते।

दूसरा—अब खूब दिल लगाकर काम करेंगे।

तीसरा—और क्या! जब उन्होंने हमारे ऊपर छोड दिया, तो हमारा भी धरम है कि कोई कसर न छोडें।

चौथा—मुझे तो भैया, ठाकुर पर अब भी विश्वास नही आता।

4

एक दिन चैनसिंह को किसी काम से कचहरी जाना था। पाँच मील का सफर था। यो तो वह बराबर अपने घोडे पर जाया करता था, पर आज धूप बडी तेज हो रही थी, सोचा इक्के पर चला चलू। महावीर को कहला भेजा, मुझे लेते जाना। कोई नौ बजे महावीर ने पुकारा। चैनसिंह तैयार बैठा था। चटपट इक्के पर बैठ गया, मगर घोडा इतना दुर्बल हो रहा था इक्के की गद्दी इतनी मैली और फटी हुई, सारा सामान इतना रद्दी कि चैनसिंह को उस पर बैठते शर्म आई? पूछा—यहाँ सामान क्यो बिगडा हुआ है महावीर? तुम्हारा घोडा तो इतना दुबला कभी न था। आजकल सवारियाँ कम है क्या?

महावीर ने कहा—नही मालिक, सवारियाँ काहे नही है, मगर लारी के सामने इक्के को कौन पूछता है? कहाँ दो, ढाई, तीन की मजदूरी करके घर लौटता था, कहाँ अब बीस आने भी नही मिलते।? क्या जानवर को खिलाऊँ, क्या आप खाऊँ? बडी विपत्ति मे पडा हूँ। सोचता हूँ, इक्का-घोडा बेच-बाच कर आप लोगो की मजूरी कर लू, पर कोई गाहक नहीं लगता। ज्यादा नही तो बारह आने तो घोडे को चाहिए, घास ऊपर से। अब अपना ही पेट नहीं चलता, जानवर को कौन पूछे।

चैनसिंह ने उसके फटे हुए कुरते की ओर देखकर कहा—दो-चार बीघे की खेती क्यो नही कर लेते?

महावीर सिर झुकाकर बोला—खेती के लिए बडा पौरुष चाहिए मालिक! मैंने तो यही सोचा था कि कोई गाहक लग जाये, तो इक्के को औने-पौने निकाल दू, फिर घास छीलकर बाजार जाया करूँ। आजकल सास-पतोहू दोनो घास छीलती है, तब जाकर चार आने पैसे नसीब होते हैं।

चैनसिंह ने पूछा—तो बुढिया बाजार जाती होगी?

महावीर लजाता हुआ बोला—नही भैया, वह इतनी दूर कहाँ चल सकती है। घरवाली चली जाती है। दोपहर तक घास छीलती है, तीसरे पहर बाजार जाती है। वहाँ से घडी रात गए लौटती है। हलकान हो जाती है भैया, मगर क्या करूँ तकदीर से क्या जोर!

चैनसिंह कचहरी पहुँच गये और महावीर सवारियो की टोह मे इधर-उधर इक्के को घुमाता हुआ शहर की तरफ चला गया। चैनसिंह ने उसे पाँच बजे

आने को कह दिया।

कोई चार बजे चैनसिंह कचहरी से फुरसत पाकर बाहर निकले। हाते मे पान की दूकान थी, जरा और आगे बढकर एक घना बरगद का पेड था। उसकी छाह मे बीसो ही ताँगे, इक्के, फिटने खडी थी। घोडे खोल दिये गये थे। वकीलो, मुख्तारो और अफसरो की सवारियाँ यही खडी रहती थी। चैनसिंह ने पानी पिया, पान खाया और सोचने लगा, कोई लारी मिल जाये, तो जरा शहर चला जाऊँ कि उसकी निगाह एक घासवाली पर गई। सिर पर घास का झावा रखे साईसो से मोलभाव कर रही थी। चैनसिंह का हृदय उछल पडा—यह तो मुलिया है! बनी-ठनी, एक गुलाबी साडी पहने कोचवानो से मोल-तोल कर रही थी। कई कोचवान जमा हो गए थे। कोई उससे दिल्लगी करता था, कोई घूरता था, कोई हँसता था।

एक काले-कलूटे कोचवान ने कहा—मूला, घास तो अधिक से अधिक छै आने की है।

मुलिया ने उन्माद पैदा करनेवाली आँखो से देखकर कहा—छ आने पर लेना है, तो वह सामने घसियारिने बैठी हैं, जाओ, दो-चार पैसे कम मे पा जाओगे, मेरी घास तो बारह आने मे ही जाएगी।

एक अधेड कोचवान ने फिटन के ऊपर से कहा—तेरा जमाना है, बारह आने नही, एक रुपया माँग! लेनेवाले झख मारेंगे और लेंगे। निकलने दे वकीलों को। अब देर नही है।

एक ताँगेवाले ने, जो गुलाबी पगडी बाँधे हुए था, कहा—बुढऊ के मुँह मे भी पानी भर आया, अब मुलिया काहे को किसी की ओर देखेगी!

चैनसिंह को ऐसा क्रोध आ रहा था कि इन दुष्टो को जूतो से पीटे। सब-के-सब कैसे उसकी ओर टकटकी लगाए ताक रहे है, मानो आँखो से पी जायेंगे। और मुलिया भी यहाँ कितनी खुश है! न लजाती है, न झिझकती है, न दबती है। कैसा मुस्कराकर, रसीली आँखो से देख-देखकर सिर का अंचल खिसका-खिसकाकर, मुँह मोडकर बाते कर रही है। वही मुलिया, जो शेरनी की तरह तडप उठती थी।

इतने मे चार बजे। अमले और वकील-मुख्तारो का एक मेला-सा निकल पडा। अमले लारियो पर दौडे, वकील-मुख्तार इन सवारियो की ओर चले। कोचवानो ने भी चटपट घोडे जोते। कई महाशयो ने मुलिया को रसिक नेत्रों से देखा और अपनी गाडियो पर जा बैठे।

एकाएक मुलिया घास का झावा लिये उस फिटन के पीछे दौडी। फिटन मे एक अंगरेजी फैशन के जवान वकील साहब बैठे थे। उन्होंने पायदान के पास घास रखवा ली, जेब से कुछ निकालकर मुलिया को दिया। मुलिया मुस्कराई।

दोनो मे कुछ वातें भी हुयी, जो चैनसिंह न सुन सके।

एक क्षण मे मुलिया प्रसन्न-मुख घर की ओर चली। चैनसिंह पानवाले की दूकान पर विस्मृति की दशा मे खडा रहा। पानवाले ने दूकान वढाई, कपडे पहने और अपने केविन का द्वार वन्द करके नीचे उतरा, तो चैनसिंह की समाधि टूटी। पूछा – क्या दूकान वन्द कर दी ?

पानवाले ने सहानुभूति दिखाकर कहा—इसकी दवा करो ठाकुर साहव, यह वीमारी अच्छी नही है।

चैनसिंह ने चकित होकर पूछा—कैसी वीमारी ?

पानवाला वोला—कैसी वीमारी ! आध घण्टे से यहाँ खडे हो, जैसे कोई मुर्दा खडा हो। सारी कचहरी खाली हो गई, सब दुकाने वन्द हो गयी, मेहतर तक झाडू लगाकर चल दिए, तुम्हे कुछ खवर हुई ? यह वुरी वीमारी है, जल्दी दवा करा डालो।

चैनसिंह ने छडी सँभाली और फाटक की ओर चला कि महावीर का इक्का सामने से आता दिखाई दिया।

5

कुछ दूर इक्का निकल गया, तो चैनसिंह ने पूछा—आज कितने पैसे कमाए महावीर ?

महावीर ने हँसकर कहा—आज तो मालिक, दिन-भर खडा ही रह गया। किसी ने वेगार मे भी न पकडा। ऊपर से चार पैसे की वीडिया पी गया।

चैनसिंह ने जरा देर के वाद कहा—मेरी एक सलाह है। तुम मुझसे एक रुपया रोज लिया करो। वस, जव मैं वुलाऊँ, तो इक्का लेकर चले आया करो। तव तो तुम्हारी घरवाली को घास लेकर वाजार न आना पडेगा। वोलो, मजूर है ?

महावीर ने सजल आँखो से देखकर कहा—मालिक, आप ही का तो खाता हूँ। आपकी परजा हूँ। जव मरजी हो, पकडवा मगवाइये। आपसे रुपये...

चैनसिंह ने वात काटकर कहा- नही, मैं तुमसे वेगार नही लेना चाहता। तुम मुझसे एक रुपया रोज ले जाया करो। घास लेकर घरवाली को वाजार मत भेजा करो। तुम्हारी आवरू मेरी आवरू है। और भी रुपए-पैसे का जव काम लगे, वेखटके चले आया करो। हाँ, देखो, मुलिया से इस वात को भूलकर भी चर्चा न करना। क्या फायदा !

कई दिनो के वाद सध्या समय मुलिया चैनसिंह से मिली। चैनसिंह असामियो से मालगुजारी वसूल करके घर की ओर लपका जा रहा था कि उस जगह, जहाँ उसने मुलिया की वाँह पकडी थी, मुलिया की आवाज कानो मे आई।

उसने ठिठकर पीछे देखा, मुलिया दौडी चली आ रही थी। बोला—क्या है, मूला! क्यो दौड़ती हो, मैं तो खडा हूं?

मुलिया ने हाँफते हुए कहा—कई दिन से तुमसे मिलना चाहती थी। आज तुम्हे आते देखा, तो दौडी। अव मैं घास वेचने नही जाती।

चैनसिंह ने कहा—वहुत अच्छी वात है।

'क्या तुमने मुझे कभी घास वेचते देखा है?'

'हा, एक दिन देखा था। क्या महावीर ने तुझसे सब कह डाला? मैंने तो मना कर दिया था।'

'वह मुझसे कोई वात नही छिपाता।'

दोनो एक क्षण चुप खडे रहे। किसी को कोई वात न सूझती थी। एकाएक मुलिया ने मुस्कराकर कहा—यही तुमने मेरी वाँह पकडी थी।

चैनसिंह ने लज्जित होकर कहा—उसको भूल जाओ मूला! मुझ पर न जाने कौन भूत सवार था।

मुलिया गद्गद कठ से वोली—उसे क्यो भूल जाऊँ? उसी वाह गहे की लाज तो निभा रहे हो! गरीवी आदमी से जो चाहे करावे। तुमने मुझे वचा लिया।

फिर दोनो चुप हो गए।

जरा देर के वाद मुलिया ने फिर कहा—तुमने समझा होगा, मैं हँसने-वोलने मे मगन हो रही थी?

चैनसिह ने वलपूर्वक कहा—नही मुलिया, मैंने एक क्षण के लिये भी यह नही समझा।

मुलिया मुस्कराकर वोली—मुझे तुमसे यही आशा थी और है।

पवन सिंचते हुए खेतो मे विश्राम करने जा रहा था, सूर्य निशा की गोद मे विश्राम करने जा रहा था, और उस मलिन प्रकाश मे चैनसिंह मुलिया की विलीन होती हुई रेखा को खडा देख रहा था।

गिला

जीवन का बडा भाग इसी घर मे गुजर गया, पर कभी आराम न नसीव हुआ। मेरे पति ससार की दृष्टि मे वडे सज्जन, वडे शिष्ट, वडे उदार, वडे सौम्य होगे, लेकिन जिस पर गुजरती है, वही जानता है। ससार को तो उन लोगो की प्रशसा करने मे आनन्द आता है, जो अपने घर को भाड मे झोंक रहे हो, गैरो के पीछे अपना सर्वनाश किए डालते हो। जो प्राणी घरवालो के लिए मरता है, उसकी प्रशसा ससारवाले नही करते। वह तो उनकी दृष्टि मे स्वार्थी है, कृपण है, सकीर्ण हृदय है, आचार भ्रष्ट है। इसी तरह जो लोग वाहरवालो के लिए मरते है, उनकी प्रशसा घरवाले क्यो करने लगे।

अव इन्ही को देखो, सारे दिन मुझे जलाया करते है। मै परदा तो नही करती, लेकिन सौदे-सुलफ के लिए वाजार जाना वुरा मालूम होता है। और इनका यह हाल है कि चीज मँगवाओ, तो ऐसी दूकान मे लाएँगे, जहाँ कोई ग्राहक भूलकर भी न जाता हो। ऐसी दूकानो पर न तो चीज अच्छी मिलती है। न तौल ठीक होती है, न दाम ही उचित होते है। यह दोप न होते, तो वह दूकान वदनाम ही क्यो होती, पर इन्हे ऐसी ही गई-वीती दूकानो से चीजे लाने का मरज है। वार-वार कह दिया, साहव, किसी चलती हुई दूकान से सौदे लाया करो। वहाँ माल अधिक खपता है, इसलिए ताजा माल आता रहता है, पर इनकी तो टुटपूँजियो से वनती है, और वे इन्हे उल्टे छुरे से मूँडते हैं। गेहूँ लाएँगे, तो सारे वाजार से खराव, घुना हुआ, चावल ऐसा मोटा कि वैल भी न पूछे, दाल मे कराई और ककड भरे हुए। मनो लकडी जला डालो, क्या मजाल कि गले। घी लाएगे, तो आधोआध तेल या सोलहो आने कोकोजेम और दर असल घी से एक छटाँक कम। तेल लाएँगे तो मिलावट, वालो मे डालो तो चिकट जाएँ, पर दाम दे आयेंगे शुद्ध आवले के तेल का। किसी चलती हुई नामी दूकान पर जाते इन्हे जैसे डर लगता है। शायद ऊची दूकान और फीके पकवान के कायल है। मेरा अनुभव तो यह है कि नीची दूकान पर ही सडे पकवान मिलते हैं।

एक दिन की वात हो, तो वरदाश्त कर ली जाए, रोज-रोज का टटा नही

सहा जाता। मैं पूछती हूँ, आखिर आप टुटपूजियो की दूकान पर जाते ही क्यो हैं। क्या इनके पालन-पोषण का ठीका तुम्ही ने लिया है ? आप फरमाते है, मुझे देखकर सबके-सब बुलाने लगते है ! वाह क्या कहना है ! कितनी दूर की बात है। जरा इन्हे बुला लिया और खुशामद के दो-चार शब्द सुना दिये, थोडी-सी स्तुति कर दी, बस आपका मिजाज आसमान पर जा पहुँचा। फिर इन्हें सुधि नही रहती कि यह कूडा-करकट बाँध रहा है या क्या। पूछती हू, तुम उस रास्ते से जाते ही क्यो हो ? क्यो किसी दूसरे रास्ते से नही जाते ? ऐसे उठाईगीरो को मुँह ही क्यो लगाते हो ? इसका जवाब नही। एक चुप सौ बाधाओ को हरती है।

एक बार एक गहना बनवाने को दिया। मैं तो महाशय को जानती थी। इनसे कुछ पूछना व्यर्थ समझा। अपने पहचान के एक सोनार को बुला रही थी। सयोग से आप भी विराजमान थे। बोले—यह सम्प्रदाय विश्वास के योग्य नही, धोखा खाओगी। मैं एक सुनार को जानता हूँ, मेरे साथ का पढा हुआ है। बरसो साथ-साथ खेले थे। वह मेरे साथ चालबाजी नही कर सकता। मैंने भी समझा, जब इनका मित्र है और वह भी बचपन का, तो कहाँ तक दोस्ती का हक न निभाएगा ? सोने का एक आभूषण और सौ रुपये इनके हवाले किए। इन भलेमानस ने वह आभूषण और रुपये न जाने किस बेईमान को दे दिये कि बरसो के झझट के बाद जब चीज बनकर आई, तो आठ आने ताँबा और इतनी भद्दी कि देखकर घिन लगती थी। बरसो की अभिलाषा धूल मे मिल गई। रो-पीटकर बैठ रही।

ऐसे-ऐसे वफादार तो इनके मित्र हैं, जिन्हे-मित्र की गर्दन पर छुरी फेरने मे भी सकोच नही। इनकी दोस्ती भी उन्ही लोगो से है, जो जमाने भर के जट्टू, गिरहकट, लगोटी मे फाग खेलनेवाले, फाकेमस्त है, जिनका उद्यम ही इन जैसे आँख के अधो से दोस्ती गाँठना है। नित्य ही एक-न-एक महाशय उधार माँगने के लिये सिर पर सवार रहते हैं और बिना लिये गला नहीं छोडते। मगर ऐसा कभी न हुआ किसी ने रुपये चुकाये हो। आदमी एक बार खोकर सीखता है, दो बार खोकर सीखता है, किन्तु यह भलेमानस हजार बार खोकर भी नही सीखते। जब कहती हूँ, रुपये तो दे आये, अब माग क्यो नही लाते ! क्या मर गये तुम्हारे वह दोस्त ? तो बस, बगलें झांककर रह जाते है। आपसे मित्रो को सूखा जवाब नही दिया जाता। खैर, सूखा जवाब न दो। मैं भी नही कहती कि दोस्तो मे बेमुरौवती करो, मगर चिकनी-चुपडी बातें तो बना सकते हो, बहाने तो कर सकते हो। किसी मित्र ने रुपये माँगे और आपके सिर पर बोझ पडा। बेचारे कैसे इनकार करें ? आखिर लोग जान जायेंगे कि नही कि यह महाशय भी खुक्खल ही है।

इनकी हविस यह है कि दुनिया इन्हे सम्पन्न समझती रहे, चाहे मेरे गहने ही क्यो न गिरो रखने पडें। सच कहती हूँ, कभी-कभी तो एक-एक पैसे की तगी हो जाती है और इन भले आदमी को रुपये जैसे घर मे काटते है। जब तक रुपये के वारे-न्यारे न कर ले, इन्हे चैन नही। इनकी करतूत कहाँ तक गाऊँ। मेरी तो नाक मे दम आ गया। एक न एक मेहमान रोज यमराज की भाँति सिर पर सवार रहता है। न जाने कहाँ के बेफिक्रे इनके मित्र है। कोई कही से आकर मरता है, कोई कही से। घर क्या है, अपाहिजो का अड्डा है। जरा-सा तो घर, मुश्किल से दो पलग, ओढ़ना-विछौना भी फालतू नही, मगर आप है कि मित्रो को निमन्त्रण देने को तैयार! आप तो अतिथि के साथ लेटेंगे, इसलिए इन्हे चारपाई भी चाहिए, ओढना-विछौना भी चाहिये, नही तो घर का परदा खुल जाये। जाता है मेरे और बच्चो के सिर। गरमियो मे तो खैर कोई मुजायका नही, लेकिन जाडो मे तो ईश्वर ही याद आते है। गरमियो मे भी खुली छत पर तो मेहमानो का अधिकार हो जाता है, अब मैं बच्चो को लिये पिजडे मे पडी फडफडाया करूँ। इन्हे इतनी समझ भी नही कि जब घर की यह दशा है, तो क्यो ऐसे को मेहमान वनायें, जिनके पास कपडे-लत्ते तक नही।

ईश्वर की दया से इनके सभी मित्र इसी श्रेणी के है। एक भी ऐसा माई का लाल नही, जो समय पडने पर धेले से भी इनकी मदद कर सके। दो-एक वार महाशय को इसका अनुभव—अत्यन्त कटु अनुभव—हो चुका है, मगर इस जड भरत ने जैसे आँखे खोलने की कसम खा ली है। ऐसे ही दरिद्र भट्टाचार्यो से इनकी पटती है। शहर मे इतने लक्ष्मी के पुत्र है, पर आपका किसी से परिचय नही। उनके पास जाते इनकी आत्मा दुखती है। दोस्ती गाँठेगे ऐसो से, जिनके घर मे खाने का ठिकाना नही।

एक वार हमारा कहार छोडकर चला गया और कई दिन कोई दूसरा कहार न मिला। किसी चतुर और कुशल कहार की तलाश मे थी, किन्तु आपको जल्द से-जल्द कोई आदमी रख लेने की धुन सवार हो गई। घर के सारे काम पूर्ववत् चल रहे थे, पर आपको मालूम हो रहा था कि गाडी रुकी हुई है। मेरा जूटे बरतन माँजना और अपना साग-भाजी के लिए बाजार जाना इनके लिए असह्य हो उठा। एक दिन जाने कहाँ से एक बागड़ू को पकड लाए। उसकी सूरत कहे देती थी कि कोई जाँगलू है! मगर आपने उसका ऐसा बखान किया कि क्या कहूँ। वडा होशियार है, वडा आज्ञाकारी, परले-सिरे का मेहनती, गजब का सलीकेकार और बहुत ही ईमानदार। खैर, मैंने इसे रख लिया। मै वार-वार क्यो इनकी बातो मे आ जाती हूँ, इसका मुझे स्वय आश्चर्य है।

यह आदमी केवल रूप से आदमी था। आदमियत के और कोई लक्षण

उसमें न थे। किसी काम की तमीज नहीं। बेईमान न था, पर गधा अव्वल दरजे का। बेईमान होता, तो कम-से-कम इतनी तस्कीन तो होती कि खुद खा जाता है। अभागा दूकानदारों के हाथों लुट जाता था। दस तक की गिनती उसे न आती थी। एक रुपया देकर बाजार भेजूँ, तो सध्या तक हिसाब न समझा सके। क्रोध पी-पीकर रह जाती थी। रक्त खौलने लगता था कि दुष्ट के कान उखाड़ लूँ; मगर इन महाशय को उसे कभी कुछ कहते नहीं देखा, डाँटना तो दूर की बात है। आप नहा-धोकर धोती छाँट रहे है और वह दूर बैठा तमाशा देख रहा है। मैं तो बच्चा का खून पी जाती, लेकिन इन्हे जरा भी गम नहीं। जब मेरे डाँटने पर धोती छाँटने जाता भी, तो आप उसे समीप न आने देते। बस, उसके दोषों को गुण बनाकर दिखाया करते थे।

मूर्ख को झाड़ू लगाने की तमीज न थी। मरदाना कमरा ही तो सारे घर मे ढग का एक कमरा है। उसमे झाड़ू लगाता, तो इधर की चीज उधर, ऊपर की नीचे, मानो कमरे मे भूकम्प आ गया हो! और गर्द का यह हाल कि साँस लेना कठिन, पर आप शातिपूर्वक कमरे मे बैठे हैं, जैसे कोई बात ही नहीं। एक दिन मैंने उसे खूब डाँटा —कल मे ठीक-ठीक झाड़ू न लगाई, तो कान पकड़कर निकाल दूँगी। सवेरे सोकर उठी तो देखती हूँ, कमरे मे झाड़ू लगी हुई है और हरेक चीज करीने से रखी हुई है। गर्द-गुबार का नाम नहीं। मैं चकित होकर देखने लगी। आप हँसकर बोले —देखती क्या हो, आज घूरे ने बड़े सवेरे उठकर झाड़ू लगाई है। मैंने समझा दिया। तुम ढग तो बताती नहीं, उलटे डाँटने लगती हो।

मैंने समझा, खैर, दुष्ट ने कम-से-कम एक काम तो सलीके से किया। अब रोज कमरा साफ-सुथरा मिलता। घूरे मेरी दृष्टि मे विश्वासी बनने लगा। सयोग की बात! एक दिन जरा मालूम से सवेरे उठ बैठी और कमरे मे आयी, तो क्या देखती हूँ कि घूरे द्वार पर खड़ा है और आप तन-मन से कमरे मे झाड़ू लगा रहे हैं। मेरी आँखो मे खून उतर आया। उनके हाथ से झाड़ू छीनकर घूरे के सिर पर जमा दी। हरामखोर को उसी दम निकाल बाहर किया। आप फरमाने लगे—उसका महीना तो चुका दो! वाह री समझ! एक तो काम न करे, उस पर आँखें दिखाए। उस पर पूरी मजदूरी भी चुका दूँ। मैंने एक कौड़ी भी न दी। एक कुरता दिया था, वह भी छीन लिया। इस पर जड़ भरत महोदय मुझसे कई दिन रूठे रहे। घर छोड़कर भागे जाते थे। बड़ी मुश्किलों से रुके। ऐसे-ऐसे भोंदू भी संसार मे पड़े हुए हैं। मैं न होती, तो शायद अब तक इन्हें किसी ने बाजार मे बेच लिया होता।

एक दिन मेहतर ने उतारे कपड़ों का सवाल किया। इस बेकारी के जमाने मे फालतू कपड़े तो शायद पुलिसवालों या रईसों के घर मे हो, मेरे घर मे तो

जरूरी कपडे मे भी काफी नही। आपका वस्त्रालय एक बकची मे आ जाएगा जो डाक के पारसल से कही भेजा जा सकता है। फिर इस साल जाडो के कपडे बनवाने की नौबत न आई। पैसे नजर नही आते, कपडे कहाँ से बने ? मैंने मेहतर को साफ जवाब दे दिया। कडाके का जाडा पड रहा था, इसका अनुभव मुझे कम न था। गरीबो पर क्या बीत रही है, इसका भी मुझे ज्ञान था, लेकिन मेरे या आपके पास खेद के सिवा इसका और क्या इलाज है ? जब तक समाज का यह सगठन रहेगा, ऐसी शिकायतें पैदा होती रहेगी। जब एक-एक अमीर और रईस के पास एक-एक मालगाडी कपडो से भरी हुई है, तब फिर निर्धनों को क्यो नग्नता का कष्ट न उठाना पडे ?

खैर, मैंने तो मेहतर को जवाब दे दिया, आपने क्या किया कि अपना कोट उठाकर उसकी भेंट कर दिया। मेरी देह मे आग लग गई। मैं इतनी दानशील नही हूँ कि दूसरो को खिलाकर आप सो रहूँ। देवता के पास यही एक कोट था। आपको इसकी जरा भी चिंता न हुई कि पहनेंगे क्या ? यश के लोभ ने जैसे बुद्धि ही हर ली। मेहतर ने सलाम किया, दुआएँ दी और अपनी राह ली। आप कई दिन सर्दी से ठिठुरते रहे। प्रात काल घूमने जाया करते थे, वह बन्द हो गया। ईश्वर ने उन्हे हृदय भी एक विचित्र प्रकार का दिया है। फटे-पुराने कपडे पहनते आपको जरा भी सकोच नही होता। मैं तो मारे लाज के गड जाती हूँ, पर आपको जरा भी फिक्र नही। कोई हँसता है, तो हँसे, आपकी बला से। अन्त मे जब मुझसे न देखा गया, तो एक कोट बनवा दिया। जी तो जलता था कि खूब सर्दी खाने दू, पर डरी कि कही बीमार पड जाएँ, तो और बुरा हो। आखिर काम तो इन्ही को करना है।

महाशय अपने दिल मे समझते होंगे, मैं कितना विनीत, कितना परोपकारी हूँ। शायद इन्हे इन बातो का गर्व हो। मैं इन्हे परोपकारी नही समझती, न विनीत ही समझती हूँ। यह जडता है, सीधी-सादी निरीहता। जिस मेहतर को आपने अपना कोट दिया, उसे मैंने कई बार रात को शराब के नशे मे मस्त झूमते देखा है और आपको दिखा भी दिया है। तो फिर दूसरो की विवेकहीनता की पुरौती हम क्यो करे ? अगर आप विनीत और परोपकारी होते, तो घरवालो के प्रति भी तो आपके मन मे कुछ उदारता होती या सारी उदारता बाहरवालों ही के लिए सुरक्षित है ? घरवालो को उसका अल्पांश भी न मिलना चाहिए ?

मेरी इतनी अवस्था बीत गई, पर इस भले आदमी ने कभी अपने हाथो से मुझे एक उपहार भी न दिया। बेशक मैं जो चीज बाजार से मँगवाऊँ, उसे लाने मे इन्हे जरा भी आपत्ति नही, बिल्कुल उज्र नही, मगर रुपये मैं दे दू, यह शर्त है। इन्हे खुद कभी यह उमग नही होती। यह मैं मानती हूँ कि बेचारे अपने लिए भी कुछ नहीं लाते। मैं जो कुछ मँगवा दूँ, उसी पर सतुष्ट हो जाते हैं,

मगर आखिर आदमी कभी-कभी शौक की चीजें चाहता ही है। अन्य पुरुषों को देखती हूँ, स्त्री के लिए तरह-तरह के गहने, भाँति-भाँति के कपड़े, शौक-सिंगार की वस्तुएँ लाते रहते हैं। यहाँ सब व्यवहार का निषेध है। बच्चों के लिए भी मिठाइयाँ, खिलौने, बाजे शायद जीवन में एक बार भी न लाये हों। शपथ-सी खा ली है। इसलिए मैं इन्हें कृपण कहूँगी, अरसिक कहूँगी, हृदय-शून्य कहूँगी, उदार नहीं कह सकती।

दूसरों के साथ इनका जो सेवा भाव है, उसका कारण है, इनका यश-लोभ और व्यावहारिक अज्ञानता। आपके विनय का यह हाल है कि जिस दफ्तर में आप नौकर हैं, उसके किसी अधिकारी से आपका मेल-जोल नहीं। अफसरों को सलाम करना तो आपकी नीति के विरुद्ध है, नजर या डाली तो दूर की बात है। और तो और, कभी किसी अफसर के घर नहीं जाते। इसका खमियाजा आप न उठाएँ, तो कौन उठाए? औरों को रिआयती छुट्टियाँ मिलती हैं, आपका वेतन कटता है, औरों की तरक्कियाँ होती हैं, आपको कोई पूछता भी नहीं, हाजिरी में पाँच मिनट की देर हो जाए, तो जवाब पूछा जाता है। बेचारे जी तोड़कर काम करते हैं, कोई बड़ा कठिन काम आ जाता है, तो इन्हीं के सिर मढ़ा जाता है, इन्हें जरा भी आपत्ति नहीं। दफ्तर में इन्हें 'घिस्सू' 'पिस्सू' आदि उपाधियाँ मिली हैं, मगर पड़ाव कितना ही कड़ा मारें, इनके भाग्य में वही सूखी घास लिखी है। यह विनय नहीं है! स्वाधीन मनोवृत्ति भी नहीं है, मैं तो इसे समय-चातुरी का अभाव कहती हूँ, व्यावहारिक ज्ञान की क्षति कहती हूँ।

आखिर कोई अफसर आपसे क्यों प्रसन्न हो? इसलिए कि आप बड़े मेहनती हैं? दुनिया का काम मुरौवत और रवादारी से चलता है। अगर किसी से खिंचे रहें, तो कोई कारण नहीं कि वह हमसे खिंचा रहे। फिर जब मन में क्षोभ होता है, तो वह दफ्तरी व्यवहारों में भी प्रकट हो ही जाता है। जो मातहत अफसर को प्रसन्न रखने की चेष्टा करता है, जिसकी जात से अफसर को कोई व्यक्तिगत उपकार होता है, जिस पर वह विश्वास कर सकता है, उसका लिहाज वह स्वभावतः करता है। ऐसे सिरागियों से क्यों किसी को सहानुभूति होने लगी? अफसर भी तो मनुष्य हैं। उनके हृदय में जो सम्मान और विशिष्टता की कामना है, वह कहाँ पूरी हो? जब अधीनस्थ कर्मचारी ही उससे फिरंट रहें, तो क्या उसके अफसर उसे सलाम करने आएँगे? आपने जहाँ नौकरी की, वहाँ से निकाले गए या कार्याधिक्य के कारण छोड़ बैठे।

आपको कुटुम्ब-सेवा का दावा है। आपके कई भाई-भतीजे होते हैं, वह कभी इनकी बात भी नहीं पूछते हैं; आप बराबर उनका मुँह ताकते रहते हैं। इनके एक भाई साहब आजकल तहसीलदार हैं। घर की मिल्कियत उन्हीं की

निगरानी मे है। वह ठाठ से रहते हैं। मोटर रख ली है, कई नौकर-चाकर हैं, मगर यहाँ भूल से भी पत्र नही लिखते। एक बार हमे रुपये की बडी तंगी हुई। मैंने कहा, अपने भ्राताजी से क्यो नही माँग लेते? कहने लगे, उन्हे क्यों चिंता मे डालूं। उन्हे भी तो अपना खर्च है। कौन-सी ऐसी बचत हो जाती होगी। जब बहुत मजबूर किया, तो आपने पत्र लिखा। मालूम नही, पत्र मे क्या लिखा, पत्र लिखा या मुझे चकमा दे दिया, पर रुपये न आने थे, न आये।

कई दिनो के बाद मैंने पूछा—कुछ जवाब आया श्रीमान् के भाई साहब के दरबार से? आपने रुष्ट होकर कहा—अभी केवल एक सप्ताह तो खत पहुंचे हुए, क्या जवाब आ सकता है? एक सप्ताह और गुजरा, मगर जवाब नदारद। अब आपका यह हाल है कि मुझे कुछ बातचीत करने का अवसर ही नही देते। इतने प्रसन्न-चित्त नजर आते हैं कि क्या कहूँ। बाहर से आते है तो खुश-खुश! कोई-न-कोई शिगूफा लिये। मेरी खुशामद भी खूब हो रही है, मेरे मैकेवालो की प्रशंसा भी हो रही है, मेरे गृह-प्रबन्ध का बखान भी असाधारण रीति से किया जा रहा है। मैं इन महाशय की चाल समझ रही थी। यह सारी दिलजोई केवल इसलिए थी कि श्रीमान् के भाई साहब के विषय मे कुछ पूछ न बैठूं। सारे राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, आचारिक प्रश्नो की मुझसे व्याख्या की जाती थी, इतने विस्तार और गवेषणा के साथ कि विशेषज्ञ भी लोहा मान जाएँ। केवल इसलिए कि मुझे वह प्रसंग उठाने का अवसर न मिले! लेकिन मैं भला कब चूकनेवाली थी? जब पूरे दो सप्ताह गुजर गए और बीमे के रुपये भेजने की मिति मौत की तरह सिर पर सवार हो गई, तो मैंने पूछा—क्या हुआ, तुम्हारे भाई साहब ने श्रीमुख से कुछ फरमाया या अभी तक पत्र नही पहुँचा? आखिर घर की जायदाद मे हमारा भी कुछ हिस्सा है या नही या हम किसी लौंडी दासी की सन्तान है? पाँच सौ रुपये साल का नफा तो दस साल पहले था। अब तो एक हजार से कम न होगा, पर हमे कभी एक कानी कौडी भी न मिली। मोटे हिसाब से हमे दो हजार मिलना चाहिए। दो हजार न हो, एक हजार हो, पाँच सौ हो, ढाई सौ हो, कुछ न हो तो बीमा के प्रीमियम भर को तो हो। तहसीलदार साहब की आमदनी हमारी आमदनी की चौगुनी है, रिश्वते भी लेते है तो फिर हमारे रुपये क्यो नही देते? आप हे-हे, हाँ-हाँ करने लगे। वह बेचारे घर की मरम्मत करवाते हैं। बंधु-बाँधवो का स्वागत-सत्कार करते हैं, नातेदारियो मे भेंट-भाँट भेजते है। और कहाँ से लावें, जो हमारे पास भेजे?

वाह री बुद्धि! मानो जायदाद इसीलिए होती है कि उसकी कमाई उसी मे खर्च हो जाए। इस भले आदमी को बहाने गढने भी नही आते। मुझसे पूछते, मैं एक नही हजार बता देती, एक-से एक बढकर—कह देते, घर मे आग लग गई, सब कुछ स्वाहा हो गया, या चोरी हो गई, तिनका तक न बचा, या दस

हजार का अनाज भरा था, उसमे घाटा रहा, या किसी से फौजदारी हो गई, उनमे दिवाला पिट गया। आपको सूझी भी तो लचर-सी बात। तकदीर ठोककर बैठ रही। पडोस की एक महिला से रुपये कर्ज लिये, तब जाकर काम चला। फिर भी आप भाई-भतीजो की तारीफ के पुल बाँधते है, तो मेरे शरीर मे आग लग जाती है। ऐसे कौरवो से ईश्वर बचाए।

ईश्वर की दया से आपके दो बच्चे है, दो बच्चियाँ भी है। ईश्वर की दया कहूँ या कोप कहूँ? सब-के-सब इतने ऊधमी हो गए है कि खुदा की पनाह, मगर क्या मजाल है कि यह भोंदू किसी को कडी आँख से भी देखे! रात के आठ बज गए है, युवराज अभी घूमकर नही आये। मैं घबरा रही हूँ, आप निश्चित बैठे अखबार पढ रहे है। झल्लाई हुई जाती हूँ और अखबार छीनकर कहती हूँ, जाकर जरा देखते क्यो नही, लौडा कहाँ रह गया? न जाने तुम्हारा हृदय कितना कठोर है! ईश्वर ने तुम्हे सन्तान ही न जाने क्यो दे दी? पिता का पुत्र के साथ कुछ तो धर्म है। तब आप भी गर्म हो जाते हैं. अभी तक नही आया? बडा शैतान है। आज बचा आते है, तो कान उखाड लेता हूँ। मारे हटरो के खाल उधेडकर रख दूँगा। यो बिगडकर तैश के साथ आप उसे खोजने निकलते है। सयोग की बात आप उधर जाते है, इधर लडका आ जाता है। मैं पूछती हूँ—तू किधर से आ गया? वह तुझे ढूँढने गये हुए है। देखना, आज कैसी मरम्मत होती है। यह आदत छूट जाएगी। दाँत पीस रहे थे। आते ही होगे। छडी भी उनके हाथ मे है। तुम इतने अपने मन के हो गए हो कि बात नही सुनते! आज आटे-दाल का भाव मालूम होगा। लडका सहम जाता है और लैम्प जलाकर पढने बैठ जाता है। महाशयजी दो ढाई-घटे के बाद लौटते है, हैरान, परेशान और बदहवास होकर। घर मे पाँव रखते ही पूछते है—आया कि नहीं?

मैं उनका क्रोध उत्तेजित करने के विचार से कहती हूँ—आकर बैठा तो है, जाकर पूछते क्यो नही? पूछकर हार गई, कहाँ गया था, कुछ बोलता ही नही।

आप गरजकर कहते है—मन्नू, यहाँ आओ।

लडका थर-थर काँपता हुआ आकर आँगन मे खडा हो जाता है। दोनों बच्चियाँ घर मे छिप जाती है कि कोई बडा भयकर काड होनेवाला है। छोटा बच्चा खिडकी से चूहे की तरह झाँक रहा है। आप क्रोध से बौखलाए हुए है! हाथ मे छडी है ही मैं भी वह क्रोधोन्मत्त आकृति देखकर पछताने लगती हूँ कि कहाँ से उनसे शिकायत की। आप लडके के पास जाते है, मगर छडी जमाने के बदले आहिस्ते से उनके कधे पर हाथ रखकर बनावटी क्रोध से कहते है—तुम कहाँ गये थे जी? मना किया जाता है, मानते नही हो। खबरदार, जो अब कभी इतनी देर होगी? आदमी शाम को अपने घर चला आता है या मटरगश्ती करता है?

मैं समझ रही हू कि यह भूमिका है। विषय अब आएगा। भूमिका तो बुरी नही, लेकिन यहाँ तो भूमिका पर इति हो जाती है। बस, आपका क्रोध शात हो गया। बिल्कुल जैसे क्वार की घटा—घेर-घार हुआ, काले बादल आए, गड-गडाहट हुई और गिरी क्या, चार बूँदें। लडका अपने कमरे मे चला जाता है और शायद खुशी से नाचने लगता है।

मैं पराभूत होकर जाती हूँ—तुम तो जैसे डर गए। भला, दो-चार तमाचे तो लगाए होते! इसी तरह तो लडके शेर हो जाते हैं।

आप फरमाते है—तुमने सुना नही, मैंने कितने जोर से डाँटा! बचा की जान ही निकल गई होगी। देख लेना, जो फिर कभी देर मे आये।

'तुमने डाँटा तो नही, हाँ आँसू पोछ दिए।'

'तुमने मेरी डाँट सुनी नही?'

'क्या कहना है, आपकी डाँट का! लोगो के कान बहरे हो गए। लाओ, तुम्हारा गला सहला दूँ।'

आपने एक नया सिद्धात निकाला है कि दड देने से लडके खराब हो जाते हैं। आपके विचार से लडको को आजाद रहना चाहिए। उन पर किसी तरह का बंधन, शासन या दबाव न होना चाहिए। आपके मत से शासन बालको के मानसिक विकास मे बाधक होता है। इसी का यह फल है कि लडके बेनकेल के ऊँट बने हुए है। कोई एक मिनट भी किताब खोलकर नही बैठता। कभी गुल्ली-डंडा है, कभी गोलियाँ, कभी कनकौवे। श्रीमान् भी लडको के साथ खेलते हैं। चालीस साल की उम्र और लडकपन इतना। मेरे पिताजी के सामने मजाल थी कि कोई लडका कनकौआ उडा ले या गुल्ली-डडा खेल सके! खून पी जाते। प्रात काल से लडको को लेकर बैठ जाते थे। स्कूल से ज्यो ही लडके आते, फिर ले बैठते थे। बस, सध्या समय आध घटे की छुट्टी देते थे। रात को फिर जोत देते। यह नही कि आप तो अखबार पढा करें और लडके गली-गली भटकते फिरे।

कभी-कभी आप सीग कटाकर बछडे बन जाते है। लडको के साथ ताश खेलने बैठा करते हैं। ऐसे बाप का भला, लडको पर क्या रोब हो सकता है? पिताजी के सामने मेरे भाई सीधे ताक नही सकते थे। उनकी आवाज सुनते ही तहलका मच जाता था। उन्होने घर मे कदम रखा और शांति का साम्राज्य हुआ। उनके सम्मुख जाते लडको के प्राण सूखते थे। उसी शासन की यह बर-कत है कि सभी लडके अच्छे-अच्छे पदो पर पहुँच गए। हाँ, स्वास्थ्य किसी का अच्छा नही है। तो पिताजी ही का स्वास्थ्य कौन बडा अच्छा था! बेचारे हमेशा किसी-न-किसी औषधि का सेवन करते रहते थे। और क्या कहूँ, एक दिन तो हद ही हो गई! श्रीमान्जी लडको को कनकौआ उडाने की शिक्षा दे रहे

थे—यो घुमाओ, यो गोता दो, ये खीचो, यो ढोल दो । ऐसा तन-मन मे सिखा रहे थे, मानो गुरु-मत्र दे रहे हो । उस दिन मैंने इनकी ऐसी खबर ली कि याद करते होंगे—तुम कौन होते हो, मेरे बच्चो को बिगाड़नेवाले ! तुम्हे घर से कोई मतलब नही है, न हो, लेकिन मेरे बच्चो को खराब न कीजिए । बुरी-बुरी आदतें न सिखाइए । आप उन्हे सुधार नही सकते, तो कम-से-कम बिगाड़िए मत ।

लगे बगले झाँकने । मैं चाहती हूँ, एक बार यह भी गरज पडे, तो अपना चडी रूप दिखाऊँ, पर यह इतना जल्द दब जाते है कि मैं हार जाती हूँ । पिताजी किसी लडके को मेले-तमाशे न ले जाते थे । लडका सिर पीटकर मर जाए, मगर जरा भी न पसीजते थे और इन महात्माजी का यह हाल है कि एक-एक मे पूछकर मेले ले जाते है—चलो, चलो, वहाँ बडी बहार है, खूब आतश-बाजियाँ छूटेंगी, गुब्बारे उडेंगे, विलायती चर्खियाँ भी है । उन पर मजे से बैठना । और तो और, आप लडको को हाकी खेलने से भी नही रोकते । यह अँगरेजी खेल भी कितने जानलेवा होते हैं—क्रिकेट, फुटबाल, हाकी एक-से-एक घातक । गेद लग जाए तो जान लेकर ही छोड़े, पर आपको इन सभी खेलो से प्रेम है । कोई लडका मैच मे जीतकर आ जाता है, तो ऐसे फूल उठते है, मानो किला फतह कर आया हो । आपको इसकी जरा भी परवाह नही कि चोट-चपेट आ गई तो क्या होगा ! हाथ-पाँव टूट गए तो बेचारो की जिन्दगी कैसे पार लगेगी !

पिछले साल कन्या का विवाह था । आपकी जिद थी कि दहेज के नाम कानी कौडी भी न देंगे, चाहे कन्या आजीवन क्वाँरी रहे । यहाँ भी आपका आदर्शवाद आ कूदा । समाज के नेताओ का छल-प्रपंच आये-दिन देखते रहते हैं, फिर भी आपकी आँखे नही खुलती । जब तक समाज की यह व्यवस्था कायम है और युवती कन्या का अविवाहित रहना निन्दास्पद है, तब तक यह प्रथा मिटने की नहीं । दो-चार ऐसे व्यक्ति भले ही निकल आएँ, जो दहेज के लिए हाथ न फैलाएँ, लेकिन परिस्थिति पर कोई असर नही पडता और कुप्रथा ज्यो की त्यो बनी हुई है । पैसो की कमी नही, दहेज की बुराइयो पर लेक्चर दे सकते है, लेकिन मिलते हुए दहेज को छोड देनेवाला मैंने आज तक न देखा । जब लडको की तरह लडकियो को शिक्षा और जीविका की सुविधाएँ निकल आएँगी, तो यह प्रथा भी विदा हो जाएगी, उसके पहले सम्भव नही । मैंने जहाँ-जहाँ सदेशा भेजा, दहेज का प्रश्न उठ खडा हुआ और आपने प्रत्येक अवसर पर टाँग अडाई । जब इस तरह पूरा साल गुजर गया और कन्या का सत्रहवाँ लग गया, तो मैंने एक जगह बात पक्की कर ली । आपने भी स्वीकार कर

लिया, क्योकि वर पक्ष ने लेन-देन का प्रश्न उठाया ही नही, हालाँकि अन्त करण मे उन लोगो को विश्वास था कि अच्छी रकम मिलेगी और मैंने भी तय कर लिया था कि यथाशक्ति कोई वात उठा न रखूगी। विवाह के सकुशल होने मे कोई सन्देह नही था, लेकिन इन महाशय के आगे मेरी एक न चली—यह प्रथा निंद्य है, यह रस्म निरर्थक है, यहाँ रुपये की क्या जरूरत ? यहाँ गीतो का क्या काम ? नाक मे दम था। यह क्यो, वह क्यो, यह तो साफ दहेज है, तुमने मुँह मे कालिख लगा दी। मेरी आवरू मिटा दी।

जरा सोचिए, इस परिस्थिति को कि वरात द्वार पर पडी हुई है और यहाँ वात-वात पर शास्त्रार्थ हो रहा है। विवाह का मुहूर्त आधी रात के वाद था। प्रथानुसार मैंने व्रत रखा, किन्तु आपकी टेक थी कि व्रत की कोई जरूरत नही। जव लडके के माता-पिता व्रत नही रखते, जव लडका तक व्रत नही रखता, तो कन्या-पक्षावले ही व्रत क्यो रखें ! मैं और सारा खानदान मना करता रहा, लेकिन आपने नाश्ता किया, भोजन किया। खैर ! कन्यादान का मुहूर्त आया। आप सदैव से इस प्रथा के विरोधी है। आप इसे निपिद्ध समझते है। कन्या क्या दान की वस्तु है ? दान रुपये-पैसे, जगह-जमीन का हो सकता है। पशु-दान भी होता है, लेकिन लडकी का दान ! एक लचर-सी वात है। कितनी समझाती हूँ, पुरानी प्रथा है, वेद-काल से होती चली आई है, शास्त्रो मे इसकी व्यवस्था है। सम्वन्धी समझा रहे हैं, पडित समझा रहे है, पर आप है कि कान पर जूँ नही रेगती। हाथ जोडती हूँ, पैरो पडती हूँ, गिडगिडती हूँ, लेकिन आप मडप के नीचे न गये। और मजा यह है कि आपने ही तो वह अनर्थ किया और आप ही मुझसे रूठ गए। विवाह के पश्चात् महीनो वोलचाल न रही। झख मारकर मुझी को मनाना पडा।

किन्तु सवसे वडी विडम्वना यह है कि सारे दुर्गुणो के होते हुए भी मैं इनसे एक दिन भी पृथक् नही रह सकती – एक क्षण का वियोग नही सह सकती। इन सारे दोषो पर भी इनसे प्रगाढ प्रेम है। इनमे यह कौन सा गुण है जिस पर मैं मुग्ध हूँ, मैं खुद नही जानती, पर इनमे कोई वात ऐसी है, जो मुझे इनकी चेरी वनाए हुए है। यह जरा मामूली-सी देर मे घर आते हैं, तो प्राण नहो मे समा जाते है। आज यदि विधाता इनके वदले मुझे कोई विद्या और वुद्धि का पुतला, रूप और धन का देवता भी दे, तो मैं उसकी ओर आँखे उठाकर न देखू। यह धर्म की वेडी है, कदापि नही। प्रथागत पातिव्रत भी नही, वल्कि हम दोनो की प्रकृति मे कुछ ऐसी व्यवस्थाएँ, कुछ ऐसी क्षमताएँ उत्पन्न हो गई है, मानो किसी मशीन के कल-पुरजे घिस-घिसाकर फिट हो गए हो, और एक पुरजे की जगह दूसरा पुरजा काम न दे सके, चाहे वह पहले से कितना ही

सुडौल, नया और सुदृढ क्यो न हो। जाने हुए रास्ते से हम नि शक आँखे वन्द किए चले जाते है, उसके ऊँच-नीच, मोड और घुमाव सव हमारी आँखो मे समाए हुए है। अनजान रास्ते पर चलना कितना कष्टप्रद होगा। शायद आज मै इनके दोपो को गुणो से वदलने पर भी तैयार न हूँगी।

रसिक सम्पादक

'नवरस' के सम्पादक पं० चोखेलाल शर्मा की धर्मपत्नी का जब से देहान्त हुआ है, आपको स्त्रियो से विशेष अनुराग हो गया है और रसिकता की मात्रा भी कुछ बढ गई है। पुरुषो के अच्छे-अच्छे लेख रद्दी मे डाल दिए जाते हैं, पर देवियो के लेख कैसे भी हो, तुरत स्वीकार कर लिए जाते हैं और बहुधा लेख की रसीद के साथ लेख की प्रशसा कुछ इन शब्दो मे की जाती है—आपका लेख पढकर दिल थामकर रह गया, अतीत जीवन आँखो के सामने मूर्तिमान् हो गया, अथवा आपके भाव साहित्य-सागर के उज्ज्वल रत्न हैं, जिनकी चमक कभी कम न होगी। और कविताएँ तो हृदय की हिलोरें, विश्ववीणा की अमर तान, अनन्त की मधुर वेदना, निशा का नीरव गान होती थी। प्रशसा के साथ दर्शनो की उत्कट अभिलाषा भी प्रकट की जाती थी—यदि आप कभी इधर से गुजरें, तो मुझे न भूलिएगा। जिसने ऐसी कविता की सृष्टि की है, उनके दर्शनो का सौभाग्य मुझे मिला, तो अपने को धन्य मानूगा।

लेखिकाएँ अनुराग-मय प्रोत्साहन से भरे हुए पत्र पाकर फूली न समातीं। जो लेख अभागे भिक्षुक की भाँति कितनी ही पत्र-पत्रिकाओ के द्वार से निराश लौट आए थे, उनका यहाँ इतना आदर! पहली ही बार ऐसा सम्पादक जन्मा है, जो गुणो का पारखी है! और सभी सम्पादक अहम्मन्य हैं, अपने आगे किसी को समझते ही नही। जरा-सी सम्पादकी क्या मिल गई, मानो कोई राज्य मिल गया। इन सम्पादको को कही सरकारी पद मिल जाए तो अधेर मचा दें। वह तो कहो कि सरकार इन्हे पूछती नही, उसने बहुत अच्छा किया, जो आर्डिनेन्स पास कर दिए। और स्त्रियो से द्वेष करो! यह उसी का दड है! यह भी सम्पादक ही हैं, कोई घास नही छीलते और सम्पादक भी एक जगत् विख्यात पत्र के। 'नवरस' सब पत्रो मे राजा है।

चोखेलालजी के पत्र की ग्राहक-सख्या बडे वेग से बढने लगी। हर डाक से धन्यवादो की एक बाढ-सी आ जाती, और लेखिकाओ मे उनकी पूजा होने लगी। ब्याह, गौना, मूडन, छेदन, जन्म, मरण के समाचार आने लगे। कोई आशीर्वाद माँगती, कोई उनके मुख से साँत्वना के दो शब्द सुनने की अभिलाषा करती,

कोई उनसे घरेलू संकटो मे परामर्श पूछती। और महीने मे दस-पाँच महिलाएँ उन्हे दर्शन भी दे जाती। शर्माजी उनकी अवाई का तार या पत्र पाते ही स्टेशन पर जाकर उनका स्वागत करते, वडे आग्रह से उन्हे एकाध दिन ठहराते, उनकी खूब खातिर करते। सिनेमा के फ्री पास मिले हुए थे ही, खूब सिनेमा दिखाते। महिलाएँ उनके सद्भाव से मुग्ध होकर विदा होती।

मशहूर तो यहाँ तक है कि शर्माजी का कई लेखिकाओ से वहुत ही घनिष्ठ सम्वन्ध हो गया है, लेकिन इस विपय मे हम निश्चयपूर्वक कुछ नही कह सकते। हम तो इतना ही जानते है कि देवियाँ एक वार यहाँ आ जाती, वह शर्माजी की अनन्य भक्त हो जाती। वेचारा साहित्य की कुटिया का तपस्वी है। अपने विधुर जीवन की निराशाओ को अपने अतस्तल मे सचित रखकर मूक वेदना मे प्रेम-माधुर्य का रसपान कर रहा है।

सम्पादकजी के जीवन मे जो कमी आ गई थी, उसकी कुछ पूर्ति करना महिलाओ ने अपना धर्म मा मान लिया। उनके भरे हुए भण्डार मे से अगर एक क्षुधित प्राणी को थोडी-सी मिठाम दी जा सके, तो उससे भण्डार की शोभा है। कोई देवी पारसल से अचार भेज देती, कोई लड्डू। एक ने पूजा का ऊनी आसन अपने हाथो वनाकर भेज दिया। एक देवी महीने मे एक वार आकर उनके कपडो की मरम्मत कर देती थी। दूसरी देवी महीने मे दो-तीन वार आकर उन्हे अच्छी-अच्छी चीजे वनाकर खिला जाती थी। अव वह किसी एक के न होकर सवके हो गए थे। स्त्रियो के अधिकारो का उनसे कडा रक्षक शायद ही कोई मिले। पुरुपो से तो शर्माजी को हमेशा तीव्र आलोचना ही मिलती थी। श्रद्धामय सहानुभूति का आनन्द तो स्त्रियो मे ही पाया।

एक दिन सम्पादकजी को एक ऐसी कविता मिली, जिसमे लेखिका ने अपने उग्र प्रेम का रूप दिखाया था। अन्य सम्पादक उसे अश्लील कहते, लेकिन चोखेलाल इधर वहुत उदार हो गए थे। कविता इतने सुन्दर अक्षरो मे लिखी थी, लेखिका का नाम इतना मोहक था कि सम्पादकजी के सामने उसका एक कल्पना-चित्र सा आकर खड़ा हो गया। भावुक प्रकृति, कोमल गात, याचनाभरे नेत्र, विम्व-अधर, चपई रग, अग-अग मे चपलता भरी हुई, पहले गोद की तरह शुष्क और कठोर, आर्द्र होते ही चिपक जाने वाली। उन्होने कविता दो-तीन वार पढी और हर वार उनके मन मे सनसनी दौडी—

क्या तुम समझते हो, मुझे छोडकर भाग जाओगे?
भाग सकोगे?

मैं तुम्हारे गले मे हाथ डाल दूँगी,
मैं तुम्हारी कमर मे करपाश कस दूँगी,
मैं तुम्हारा पाँव पकड़कर रोक लूँगी,

तव उस पर सिर रख दूंगी ।
क्या तुम समझते हो, मुझे छोडकर भाग जाओगे ?
छोड सकोगे ?
मैं तुम्हारे अधरो पर अपने कपोल चिपका दूंगी,
उस प्याले मे जो मादक सुधा है,
उसे पीकर तुम मस्त हो जाओगे ।
और मेरे पैरो पर सिर रख दोगे ।
क्या तुम समझते हो, मुझे छोडकर भाग जाओगे ?

—'कामाक्षी'

शर्माजी को हर वार इस कविता मे एक नया रस मिलता था। उन्होंने उसी क्षण कामाक्षी देवी के नाम यह पत्र लिखा—

'आपकी कविता पढकर मैं नही कह सकता, मेरे चित्त की क्या दशा हुई। हृदय मे एक ऐसी तृष्णा जाग उठी है, जो मुझे भस्म किए डालती है। नही जानता, इसे कैसे शात करूँ ? वस, यही आशा है कि इसको शीतल करने वाली सुधा भी वही मिलेगी, जहाँ से यह तृष्णा मिली है। मन मतग की भाँति जजीर तुडाकर भाग जाना चाहता है। जिस हृदय से यह भाव निकले हैं उसमे प्रेम का कितना अक्षय भडार है, उस प्रेम का जो अपने को समर्पित कर देने मे ही आनन्द पाता है। मैं आपसे सत्य कहता हूँ, ऐसी कविता मैंने आज तक नही सुनी थी और इसने मेरे अदर जो तूफान उठा दिया है, वह मेरी विधुर शाँति को छिन्न-भिन्न किए डालता है। आपने एक गरीव की फूस की झोपडी मे आग दी है, लेकिन मन यह स्वीकार नही करता कि यह केवल विनोद-क्रीडा है। इन शब्दो मे मुझे एक ऐसा हृदय छिपा हुआ ज्ञात होता है, जिसने प्रेम की वेदना सही है, जो लालसा की आग मे तपा है। मैं इसे अपना परम सौभाग्य समझूगा यदि आपके दर्शनो का सौभाग्य पा सका। यह कुटिया अनुराग की भेंट लिये आपका स्वागत करने को तडप रही है।'

तीसरे ही दिन उत्तर आ गया। कामाक्षी ने वडे भावुकतापूर्ण शब्दो मे कृतज्ञता प्रकट की थी और अपने आने की तिथि वताई थी।

2

आज कामाक्षी का शुभागमन है।

शर्माजी ने प्रात काल हजामत वनवाई, सावुन और वेसन से स्नान किया, महीन खद्दर की धोती, कोकटी का ढीला चुन्नटदार कुरता, मलाई के रग की रेशमी चादर—इस ठाठ से आकर कार्यालय मे वैठे, तो सारा दफ्तर गमक उठा। दफ्तर की भी खूब सफाई कर दी गई थी। वरामदे मे गमले रखवा दिए

गए थे, मेज पर गुलदस्ते सजा दिए गए थे। गाडी नौ बजे आती है, अभी साढ़े आठ हैं, साढे नौ बजे तक यहाँ आ जाएगी। इस परेशानी मे कोई काम नही हो रहा है। बार-बार घडी की ओर ताकते हैं, फिर आइने मे अपनी सूरत देखकर कमरे मे टहलने लगते हैं। मूँछो मे दो-चार बाल पके हुए नजर आ रहे है, उन्हे उखाड़ फेंकने का इस समय कोई साधन नही है। कोई हरज नही। इससे रंग और ज्यादा जमेगा। प्रेम जब श्रद्धा के साथ आता है, तब वह ऐसा मेहमान हो जाता है, जो उपहार लेकर आया हो। युवको का प्रेम खर्चीली वस्तु है, लेकिन महात्माओ या महात्मापन के समीप पहुँचे हुए लोगो का प्रेम—उलटे और कुछ ले आता है। युवक जो रग बहुमूल्य उपहारो से जमाता है, ये महात्मा या अर्द्ध-महात्मा लोग केवल आशीर्वाद से जमा लेते हैं।

ठीक साढे नौ बजे चपरासी ने आकर एक कार्ड दिया। लिखा था—'कामाक्षी'

शर्माजी ने उसे देवीजी को लाने की अनुमति देकर एक बार फिर आइने मे अपनी सूरत देखी और एक मोटी-सी पुस्तक पढने लगे, मानो स्वाध्याय मे तन्मय हो गए है। एक क्षण मे देवीजी ने कमरे मे कदम रखा। शर्माजी को उनके आने की खबर न हुई।

देवीजी डरते-डरते समीप आ गयी, तब शर्माजी ने चौककर सिर उठाया, मानो समाधि से जाग पडे हो, और खडे होकर देवीजी का स्वागत किया, मगर यह वह मूर्ति न थी, जिसकी उन्होंने कल्पना कर रखी थी।

एक काली, मोटी, अधेड चचल औरत थी, जो शर्माजी को इस तरह घूर रही थी, मानो उन्हे पी जाएगी। शर्माजी का सारा उत्साह, सारा अनुराग ठंडा पड गया। वह सारी मन की मिठाइयाँ, जो वह महीनो से खा रहे थे, पेट मे शूल की भाँति चुभने लगी। कुछ कहते-सुनते न बना। केवल इतना बोले—सम्पादको का जीवन बिलकुल पशुओ का जीवन है। सिर उठाने का समय नही मिलता। उस पर कार्याधिक्य से इधर मेरा स्वास्थ्य भी बिगड रहा है। रात ही से सिर-दर्द से बेचैन हूँ। आपकी क्या खातिर करूँ?

कामाक्षी देवी के हाथ मे एक बडा-सा पुलिंदा था। उसे मेज पर पटककर, रुमाल से मुँह पोछकर मृदु-स्वर मे बोली—यह तो आपने बडी बुरी खबर सुनाई। मैं तो एक सहेली से मिलने जा रही थी। सोचा, रास्ते मे आपके दर्शन करती चलूँ, लेकिन जब आपका स्वास्थ्य ठीक नही है, तो मुझे यहाँ कुछ दिन रहकर आपका स्वास्थ्य सुधारना पडेगा। मैं आपके सम्पादन कार्य मे भी आपकी मदद करूँगी। आपका स्वास्थ्य स्त्री-जाति के लिए बडे महत्व की वस्तु है। आपको इस दशा मे छोडकर मैं अब जा ही नही सकती।

शर्माजी को ऐसा जान पडा, जैसे उनका रक्तप्रवाह रुक गया है, नाडी छूटी

जा रही है। उस चुड़ैल के साथ रहकर तो जीवन ही नरक हो जाएगा। चली है कविता करने, और कविता भी कैसी ? अश्लीलता मे डूबी हुई। अश्लील तो है ही। विलकुल सडी हुई, गदी। एक सुन्दरी युवती की कलम से वह कविता काम-वाण थी। इस डाइन की कलम से तो वह परनाले का कीचड है। मैं कहता हूँ, इसे ऐसी कविता लिखने का अधिकार ही क्या है ? वह क्यो ऐसी कविता लिखती है ? क्यो नही किसी कोने मे बैठकर राम-भजन करती ? आप पूछती है—मुझे छोडकर भाग सकोगे ? मैं कहता हूँ, आपके पास कोई आएगा ही क्यो ? दूर से ही देखकर न लम्बा हो जाएगा। कविता क्या है, जिसका न सिर न पैर मात्राओ तक का तो इसे ज्ञान नही है, और कविता करती है ? कविता अगर इस काया मे निवास कर सकती है, तो फिर गधा भी गा सकता है। ऊँट भी नाच सकता है। इस रॉड को इतना भी नही मालूम कि कविता करने के लिए रूप और यौवन चाहिए, नजाकत चाहिए। भूतनी-सी तो आपकी सूरत है, रात को कोई देख ले, तो डर जाए और आप उत्तेजक कविता लिखती हैं। कोई कितना ही क्षुधातुर हो, तो क्या गोवर खा लेगा ? और चुडैल इतना वडा पोथा लेती आई है। इसमे भी वह परनाले का गदा कीचड होगा।

उसी मोटी पुस्तक की ओर देखते हुए बोले—नही नही, मैं आपको कष्ट नहीं देना चाहता। वह ऐसी कोई बात नही है। दो-चार दिन के विश्राम से ठीक हो जाएगा। आपकी सहेली आपकी प्रतीक्षा करती होगी।

'आप तो महाशयजी सकोच कर रहे है। मैं दस-पाँच दिन के वाद भी चली जाऊँगी, तो कोई हानि न होगी।'

'इसकी कोई आवश्यकता नही है देवीजी।'

'आपके मुँह पर तो आपकी प्रशसा करना खुशामद होगी, पर जो सज्जनता मैंने आपकी देखी, वह कही नही पायी। आप पहले महानुभाव हैं, जिन्होने मेरी रचना का आदर किया, नही मैं तो निराश हो चुकी थी। आपके प्रोत्साहन का यह शुभ फल है कि मैंने इतनी कविताएँ रच डाली। आप इनमे से जो चाहे रख लें। मैंने एक ड्रामा भी लिखना शुरू कर दिया है। उसे भी शीघ्र ही आपकी सेवा मे भेजूंगी। कहिए तो दो-चार कविताएँ सुनाऊँ ? ऐसा अवसर मुझे कब मिलेगा ? यह तो नही जानती कि कविताएँ कैसी हैं, पर आप सुनकर प्रसन्न होगे। विलकुल उसी रग की हैं।'

उसने अनुमति की प्रतीक्षा न की। तुरन्त पोथा खोलकर एक कविता सुनाने लगी। शर्माजी को ऐसा मालूम होने लगा, जैसे कोई भिगो-भिगोकर जूते मार रहा है। कई वार उन्हें मतली आ गई, जैसे एक हजार गधे कानो के पास खड़े अपना स्वर अलाप रहे हो। कामाक्षी के स्वर मे कोयल का माधुर्य था। पर शर्माजी को इस समय वह भी अप्रिय लग रहा था। सिर मे सचमुच दर्द होने

लगा। यह गधी टलेगी भी, या यों बैठी सिर खाती रहेगी ? इसे मेरे चेहरे से भी मेरे मनोभावों का ज्ञान नहीं हो रहा है ! उस पर आप कविता करने चली हैं ? इस मुँह से महादेवी या सुभद्राकुमारी की कविताएँ भी घृणा ही उत्पन्न करेंगी।

आखिर न रहा गया। बोले—आपकी रचनाओं का क्या कहना, आप यह संग्रह यहीं छोड़ जायँ। मैं अवकाश में पढ़ूंगा। इस समय तो बहुत-सा काम है।

कामाक्षी ने दयार्द्र होकर कहा—आप इतना दुर्बल स्वास्थ्य होने पर भी इतने व्यस्त रहते हैं ? मुझे आप पर दया आती है।

'आपकी कृपा है।'

'आपको कल अवकाश रहेगा ? जरा मैं ड्रामा सुनाना चाहती थी ?'

'खेद है, कल मुझे जरा प्रयाग जाना है।'

'तो मैं भी आपके साथ चलूँ ? गाड़ी में सुनाती चलूंगी ?'

'कुछ निश्चय नहीं, किस गाड़ी से जाऊँ।'

'आप लौटेंगे कब तक ?'

'यह भी निश्चय नहीं।'

और टेलीफोन पर जाकर बोले—हल्लो, नं० 77

कामाक्षी ने आध घंटे तक उनका इन्तजार किया, मगर शर्माजी एक सज्जन से ऐसी महत्त्व की बातें कर रहे थे, जिसका अन्त ही होने न पाता था।

निराश होकर कामाक्षी देवी विदा हुईं और शीघ्र ही फिर आने का वादा कर गईं। शर्माजी ने आराम की साँस ली और उस पोथे को उठाकर रद्दी में डाल दिया और जले हुए दिल से आप-ही-आप कहा—ईश्वर न करे कि फिर तुम्हारे दर्शन हों। कितनी बेशर्म है, कुलटा कहीं की ! आज इसने सारा मजा किरकिरा कर दिया।

फिर मैनेजर को बुलाकर कहा—कामाक्षी की कविता नहीं जाएगी।

मैनेजर ने स्तम्भित होकर कहा—फार्म तो मशीन पर है !

'कोई हरज नहीं। फार्म उतार लीजिए।'

'बड़ी देर होगी।'

'होने दीजिए। वह कविता नहीं जाएगी।'

मनोवृत्ति

एक सुन्दर युवती, प्रात काल गाधी-पार्क मे बिल्लौर के बेंच पर गहरी नीद मे सोयी पाई जाए, यह चौका देनेवाली बात है। सुन्दरियाँ पार्कों मे हवा खाने आती है, हँसती हैं, दौडती हैं, फूल-पौधो से खेलती है, किसी का इधर ध्यान नही जाता, लेकिन कोई युवती रविश के किनारे वाले बेंच पर बेखबर सोये, यह बिलकुल गैरमामूली बात है, अपनी ओर बलपूर्वक आकर्षित करने वाली। रविश पर कितने आदमी चहलकदमी कर रहे हैं, बूढे भी, जवान भी, सभी एक क्षण के लिए वही ठिठक जाते हैं, एक नजर वह दृश्य देखते हैं और तब चले जाते हैं। युवक-वृन्द रहस्य-भाव से मुस्कराते हुए, वृद्ध-जन चिताभाव से सिर हिलाते हुए और युवतियाँ लज्जा से आँखे नीची किए हुए।

2

बसत और हाशिम निकर और बनियाइन पहने नगे पाँव दौड़ कर रहे है।' बडे दिन की छुट्टियो मे ओलिम्पियन रेस होने वाला है, दोनो उसी की तैयारी कर रहे हैं। दोनो इस स्थल पर पहुँचकर रुक जाते है और दबी आँखो से युवती को देखकर आपस मे ख्याल दौडाने लगते है।

बसत ने कहा—इसे और कही सोने की जगह न मिली।

हाशिम ने जवाब दिया—कोई वेश्या है।

'लेकिन वेश्याएँ भी तो इस तरह बेशर्मी नही करती।'

'वेश्या अगर बेशर्म न हो, तो वह वेश्या नही।'

'बहुत-सी ऐसी बातें हैं, जिनमे कुलवधू और वेश्या दोनो एक व्यवहार करती हैं। कोई वेश्या मामूली तौर पर सडक पर सोना नही चाहती।'

'रूप-छवि दिखाने का नया आर्ट है।'

'आर्ट का सबसे सुन्दर रूप छिपाव है, दिखाव नही। वेश्या इस रहस्य को खूब समझती है।'

'उसका छिपाव केवल आकर्षण बढ़ाने के लिए है।'

'हो सकता है, मगर केवल यहाँ सो जाना, यह प्रमाणित नही करता कि यह वेश्या है। इसकी माँग मे सेंदुर है।'

'वेश्याएँ अवसर पड़ने पर सौभाग्यवती बन जाती हैं। रात भर प्याले के दौर चले होंगे। काम-क्रीडाएँ हुई होंगी। अवसाद के कारण, ठंडक पाकर सो गई होगी।'

'मुझे तो कुल-वधू सी लगती है।'

'कुल-वधू पार्क मे सोने आएगी ?'

'हो सकता है घर से रूठकर आयी हो।'

'चलकर पूछ ही क्यो न चलें।

'निरे अहमक हो ! बगैर परिचय के आप किसी को जगा कैसे सकते है ?'

'अजी, चलकर परिचय कर लेंगे। उलटे और एहसान जनाएँगे।'

'और जो कही झिडक दे ?'

'झिडकने की कोई बात भी हो। उससे सौजन्य और सहृदयता मे डूबी हुई बातें करेंगे। कोई युवती ऐसी बातें सुनकर चिढ नही सकती। अजी, गतयौवनाएँ तक तो रस-भरी बाते सुनकर फूल उठती हैं। यह तो नवयौवना है। मैंने रूप और यौवन का ऐसा सुन्दर सयोग नही देखा था।'

'मेरे हृदय पर तो यह रूप जीवन-पर्यन्त के लिए अकित हो गया ! शायद कभी न भूल सकू।'

'मैं तो फिर भी यही कहता हूँ कि कोई वेश्या है।'

'रूप की देवी वेश्या भी हो, तो उपास्य है।'

'यही खडे-खडे कवियो की-सी बातें करोगे, जरा वहाँ तक चलते क्यो नही ? तुम केवल खडे रहना, पाश तो मैं डालूगा।

'कोई कुल-वधू है।'

'कुल-वधू पार्क मे आकर सोए, तो इसके सिवा कोई अर्थ नही कि वह आकर्षित करना चाहती है और यह वेश्या मनोवृत्ति है।'

'आजकल की युवतियाँ भी तो फार्वर्ड होने लगी है।'

'फार्वर्ड युवतियाँ युवको मे आँखें नही चुराती।'

'हाँ, लेकिन है कुल-वधू। कुल-वधू से किसी तरह की बातचीत करना मैं बेहूदगी समझता हूँ।'

'तो चलो, फिर दौड लगाएँ।'

'लेकिन दिल मे वह मूर्ति दौड रही है।'

'तो आओ बैठे। जब वह उठकर जाने लगे, तो उसके पीछे चले। मैं कहता हूँ वेश्या है।'

'और मैं कहता हूँ कुल-वधू है।'

'तो दस-दस की बाजी रही।'

3

दो वृद्ध पुरुष धीरे-धीरे जमीन की ओर ताकते आ रहे है। मानो खोई जवानी ढूढ रहे हो। एक की कमर झुकी, बाल काले, शरीर स्थूल, दूसरे के बाल पके हुए, पर कमर सीधी, इकहरा शरीर। दोनो के दांत टूटे, पर नकली लगाए, दोनो की आँखो पर ऐनक। मोटे महाशय वकील हैं, छरहरे महोदय डाक्टर।

वकील—देखा, यह बीसवी सदी की करामात!

डाक्टर—जी हा देखा, हिन्दुस्तान दुनिया से अलग तो नही है?

'लेकिन आप इसे शिष्टता तो नही कह सकते?'

'शिष्टता की दुहाई देने का अब समय नही।'

'है किसी भले घर की लडकी।'

'वेश्या है साहब, आप इतना भी नही समझते।'

'वेश्या इतनी फूहड नही होती।'

'और भले घर की लडकियाँ फूहड होती हैं?'

'नयी आजादी है, नया नशा है।'

'हम लोगो की तो बुरी-भली कट गई। जिनके सिर आएगी, वह झेलेंगे।

'जिन्दगी जहन्नुम से बदतर हो गई।'

'अफसोस जवानी रुखसत हो गई।'

'मगर आँख तो नही रुखसत हो गई, वह दिल तो नही रुखसत हो गया।'

'बस, आँख से देखा करो, दिल जलाया करो।'

'मेरा तो फिर जवान होने को जी चाहता है! सच पूछो तो आजकल के जीवन मे ही जिंदगी की बहार है। हमारे वक्तो मे तो कही कोई सूरत ही नजर न आती थी। आज तो जिधर जाओ, हुस्न-ही-हुस्न के जलवे है।'

'सुना, युवतियो को दुनिया मे जिस चीज से सबसे ज्यादा नफरत है, वह बूढे मर्द हैं।

'मैं इसका कायल नही। पुरुष का जौहर उसकी जवानी नही, उसका शक्ति-सम्पन्न होना है। कितने ही बूढे जवानो से ज्यादा कड़ियल होते हैं। मुझे तो आए दिन इनके तजरबे होते है। मैं ही अपने को किसी जवान से कम नहीं समझता!'

'यह सब सही है, पर बूढो का दिल कमजोर हो जाता है। अगर यह बात न होती, तो इस रमणी को इस तरह देखकर हम लोग यो न चले जाते। मैं तो

आंखो भर देख भी न सका। डर लग रहा था कि कही उसकी आँखे खुल जाएँ और वह मुझे ताकने देख ले, तो दिल मे क्या समझे।'

'खुश होती कि बूढे पर भी उसका जादू चल गया।'

'अजी रहने भी दो।'

'आप कुछ दिनो 'ओकासा' का सेवन कीजिए।'

'चन्द्रोदय खाकर देख चुका। सब लूटने की बाते हैं।'

'मकी ग्लैण्ड लगवा लीजिए न?'

'आप इस युवती से मेरी बातें पक्की करा दें। मैं तैयार हूँ।'

'हाँ यह मेरा जिम्मा, मगर भाई हिस्सा भी रहेगा।'

'अर्थात्?'

'अर्थात्, यह कि कभी-कभी मैं भी आपके घर आकर अपनी आँखें ठडी कर लिया करूँगा।'

'अगर आप इस इरादे से आए, तो आपका दुश्मन हो जाऊँगा।'

'ओ हो, आप तो मकी ग्लैण्ड का नाम सुनते ही जवान हो गए।'

'मैं तो समझता हूँ, यह भी डाक्टरो ने लूटने का एक लटका निकाला है। सच!'

'अरे साहब, इस रमणी के स्पर्श मे जवानी है, आप है किस फेर मे। उसके एक-एक अग मे, एक-एक चितवन मे, एक-एक मुस्कान मे, एक-एक विलास में जवानी भरी हुई है। न सौ मकी ग्लैड, न एक रमणी का बाहुपाश।'

'अच्छा कदम बढाइए, मुवक्किल आकर बैठे होगे।'

'यह सूरत याद रहेगी।'

'फिर आपने याद दिला दी।'

'वह इस तरह सोई है, इसलिए कि लोग उसके रूप को, उसके अग विन्यास को, उसके बिखरे हुए केशो को, उसकी खुली हुई गर्दन को देखे और अपनी छाती पीटे। इस तरह चले जाना, उसके साथ अन्याय है। वह बुला रही है और आप भागे जा रहे है।'

'हम जिस तरह दिल से प्रेम कर सकते हैं, जवान कभी कर सकता है?'

'बिलकुल ठीक! मुझे तो ऐसी औरतो से साबिका पड चुका है, जो रसिक वृद्धो को खोजा करती हैं। जवान तो छिछोरे, उच्छृंखल, अस्थिर और गर्वीले होते है। वे प्रेम के बदले मे कुछ चाहते हैं। यहाँ निःस्वार्थ भाव से आत्म-समर्पण करते हैं।'

'आपकी बातो से दिल मे गुदगुदी हो गई।'

'मगर एक बात याद रखिए कहीं उसका कोई जवान प्रेमी मिल गया, तो?'

'तो मिला करे, यहाँ ऐसो से नही डरते ।'

'आपकी शादी की कुछ वातचीत थी तो ?'

'हाँ, थी, मगर जब अपने ही लडके दुश्मनी पर कमर बाँधें, तो क्या हो ? मेरा लड़का यशवत तो वन्दूक दिखाने लगा । यह जमाने की खूवी है ।'

अक्तूवर की धूप तेज हो चली थी । दोनो मित्र निकल गए ।

4

दो देवियाँ—एक वृद्धा, दूसरी नवयौवना, पार्क के फाटक पर मोटर से उतरी और पार्क मे हवा खाने आयी । उनकी निगाह भी उस नीद की माती युवती पर पडी ।

वृद्धा ने कहा—वडी वेशर्म है !

नवयौवना ने तिरस्कार-भाव से उसकी ओर देखकर कहा—ठाठ तो भले घर की देवियो के है ?

'वस, ठाठ ही देख लो । इसी से मर्द कहते है, स्त्रियो को आजादी न मिलनी चाहिए ।'

'मुझे तो कोई वेश्या मालूम होती है ।'

'वेश्या ही सही, पर उसे इतनी वेशर्मी करके स्त्री-समाज को लज्जित करने का क्या अधिकार है ?'

'कैसे मजे से सो रही है, मानो अपने घर मे है ।'

'वेहयाई है। मैं परदा नही चाहती, पुरुषो की गुलामी नही चाहती, लेकिन औरतो मे जो गौरवशीलता और सलज्जता है, उसे नही छोडना चाहती । मैं किसी युवती को सडक पर सिगरेट पीते देखती हूँ, तो मेरे वदन मे आग लग जाती है । उसी तरह आधी छाती का जम्पर भी मुझे नही मोहाता । क्या अपने धर्म की लाज छोड देने ही से सावित होगा कि हम वहुत फार्वर्ड हैं ? पुरुष अपनी छाती या पीठ खोले तो नही घूमते ?'

'इसी वात पर वाईजी, जव मैं आपको आडे हाथो लेती हूँ, तो आप विगडने लगती हैं । पुरुष स्वाधीन है । वह दिल मे समझता है कि मैं स्वाधीन हूँ । वह स्वाधीनता का स्वाँग नही भरता । स्त्री अपने दिल मे समझती रहती है कि वह स्वाधीन नही है, इसलिए वह अपनी स्वाधीनता का ढोग करती है । जो वलवान है, वह अकडता नही । जो दुर्वल है, वही अकड दिखाते हैं । क्या आप उन्हे अपने आँसू पोछने के लिए इतना अधिकार भी नही देना चाहती ?

'मैं तो कहती हूँ, स्त्री अपने को छुपाकर पुरुष को जितना नचा सकती है अपने को खोलकर नही नचा सकती ।'

'स्त्री ही पुरुष के आकर्षण की फिक्र क्यो करे? पुरुष क्यो स्त्री से पर्दा नही करता ?'

'अब मुँह न खुलवाओ मीनू ! इस छोकरी को जगाकर कह दो—जाकर घर मे सोये । इतने आदमी आ जा रहे है और यह निर्लज्जा टाँग फैलाए पडी है । यहाँ इसे नीद कैसे आ गई ?'

'रात कितनी गर्मी थी बाईजी ! ठंडक पाकर बेचारी की आँख लग गई है ।'

'रात-भर यही रही है, कुछ-कुछ बदती हूँ ।'